CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारा आधुनिक संगीत

आम्नाय-ग्रन्थागार,
भदैनी, काशी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

K.C. Gangrade

हमारा आधुनिक संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उ० प्र० हिंदी ग्रंथ अकादमी प्रकाशन-87

हमारा आधुनिक संगीत

आम्नाय–ग्रन्थालय,
परमनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखक :
डा० सुशील कुमार चौबे, डी-लिट्०

उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
लखनऊ
1975

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक :
ब्रह्मदत्त दीक्षित
निदेशक,
उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
लखनऊ

श्री ... ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रंथ योजना के अंतर्गत
उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित

© उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी

प्रथम संस्करण : 1975

मूल्य : 11.00

पुनरीक्षक :
प्रो० (श्रीमती) एस० मुठाटकर
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी संगीत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मुद्रक :
विश्व मोहन
पूनार मुद्रक
117, नजीराबाद
लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय—ग्रन्थालय,
नरसिंहपुर, करौंदी
वाराणसी-5

प्रस्तावना

शिक्षा आयोग (1964–66) की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा संबंधी अपनी राष्ट्रीय नीति घोषित की और 18 जनवरी, 1968 को संसद के दोनों सदनों द्वारा इस संबंध में एक संकल्प पारित किया गया। उस संकल्प के अनुपालन में भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण का एक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चय किया। उस कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार की शत-प्रतिशत सहायता से प्रत्येक राज्य में एक ग्रंथ अकादमी की स्थापना की गई। इस राज्य में भी विश्वविद्यालय स्तर की प्रामाणिक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना 7 जनवरी, 1970 को की गई।

प्रामाणिक ग्रंथ निर्माण की योजना के अंतर्गत यह अकादमी विश्वविद्यालय स्तरीय विदेशी भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकों को हिंदी में अनूदित करा रही है और अनेक विषयों में मौलिक पुस्तकों की भी रचना करा रही है। प्रकाश्य ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत वे पांडुलिपियाँ भी अकादमी द्वारा मुद्रित कराई जा रही हैं जो भारत सरकार की मानक ग्रंथ योजना के अंतर्गत इस राज्य में स्थापित विभिन्न अधिकरणों द्वारा तैयार की गई थीं।

प्रस्तुत पुस्तक इस योजना के अंतर्गत मुद्रित एवं प्रकाशित कराई गई है। इसके लेखक डा० सुशील कुमार चौबे हैं। इसका विषय संपादन प्रो० (श्रीमती) एस० मुटाटकर ने किया है। इन विद्वानों के इस बहुमूल्य सहयोग के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी उनके प्रति आभारी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छः

मुझे आशा है कि यह पुस्तक विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी और इस विषय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों द्वारा इसका स्वागत अखिल भारतीय स्तर पर किया जाएगा। उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हिंदी में मानक ग्रंथों के अभाव की बात कही जाती रही है। आशा है कि इस योजना से इस अभाव की पूर्ति होगी और शिक्षा का माध्यम हिंदी में परिवर्तित हो सकेगा।

- हजारी प्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष, शासी मंडल
उ० प्र० हिंदी ग्रंथ अकादमी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

इस पुस्तक में संक्षेप में आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की रूपरेखा ही दी गई है। न तो इसमें संगीत के शास्त्रों की टीका है और न उनकी समीक्षा अथवा व्याख्या। इसमें केवल आधुनिक संगीत के मूल सिद्धान्तों का संकेत है और उसकी ऐतिहासिक, परम्परागत पृष्ठभूमि का आवश्यक वर्णन। इसमें जो कुछ विचार पाठकों के सामने रखे गये हैं उनका विशेष सम्बन्ध व्यावहारिक संगीत ही से है। इसी प्रसंग में संगीत के विविध पक्षों की थोड़ी बहुत समीक्षा भी इसमें मिलेगी। आधुनिक संगीत की कुछ विशेष समस्याओं और उसके कुछ मुख्य प्रश्नों पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। जो कुछ कहा गया है वह संगीत के आधुनिक वातावरण को ध्यान में रखकर ही कहा गया है। व्यावहारिक संगीत का सम्बन्ध संगीतज्ञ, समाज, परम्परा, इतिहास, शैली, रुचि और संस्कृति से क्या है और क्या रहा है इसके बारे में भी यहां कुछ लिखा गया है। जो कुछ विचार यहां प्रकट किये गये हैं उनका ज़ोर व्यावहारिक संगीत के मुख्य-मुख्य पक्षों पर ही है। इस प्रकार के वर्णन में जो विशेष प्रश्न उठते हैं उनको भी सुलझाने का यहां प्रयत्न किया गया है। विशेष रूप से समाज में संगीतज्ञ का स्थान, आधुनिक संगीत-शिक्षा और संगीत-प्रचार, संगीत-प्रसारण के नये साधन, संगीत की नई-नई शैलियां, संगीत की रुचि, संगीत-प्रदर्शन, तानसेन परम्परा का आधुनिक महत्व, मुख्य सम्मानित घराने, गायकी, बाज, संगीत, शिक्षा के उत्तम आदर्श, संगीत की व्यापक परम्परा, लोकप्रिय संगीत की महानता और संगीत की शैलियों का भविष्य और परम्परागत संगीत की जागृति और उसकी उन्नति-ऐसे विषयों पर अधिक बल दिया गया है।

संगीत विशेषज्ञों की भाषा का परित्याग करके, सरल, बोल-चाल की भाषा ही का प्रयोग इस पुस्तक में किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आशा है कि शिक्षित समाज के लोग विशेषरूप से विश्वविद्यालयों और कालेज के तरुण छात्र इस पुस्तक का आनन्द लेंगे और इससे फ़ायदा भी उठायेंगे। इसी में इस पुस्तक की सफलता है।

डा० सुशील कुमार चौबे

3, चौधरी स्क्वायर,
फैज़ाबाद रोड,
लखनऊ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय सूची

अध्याय-एक (संगीत, संगीतज्ञ और समाज) 1–33

संगीत एक कला है–उसकी ऐतिहासिक व्याख्या–उसकी परम्परा–उसका प्राचीन वातावरण–वैदिक युग और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि–संगीत के प्राचीन शास्त्र और व्यावहारिक संगीत–प्राचीन संगीत और आधुनिक संगीत–सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण–कला की परिवर्तनशीलता–समाज और संगीत–समाज में संगीतज्ञ का स्थान–पहले और अब–प्राचीन काल में संगीतज्ञों का सम्मान–ग्वालियर राज्य का उदाहरण–देशी रियासतें और संगीतज्ञों का सम्मान और उनकी सुरक्षा–संगीत का पहला वातावरण और आज का वातावरण–संगीतज्ञ की पहली प्रतिष्ठा और उसका . आजकल का जीविका–निर्वाह–प्रचीन 'तालीम' की शिक्षा–पद्धति और आधुनिक संगीत–शिक्षा–आधुनिक प्रयोगवाद का युग–नई-नई संगीत की शैलियां–भावुक, बाजारू और सस्ता संगीत–उत्तम संगीत की ओर उदासीनता–रुचि का नीचा स्तर–आजकल का बेतुका, मिश्रित और तरह तरह का सस्ता और बाजारू संगीत–पहले का सच्चा संगीत–प्रेम और आजकल की रुचि की अव्यवस्था–पहले की एकान्त की महफिल अथवा संगीत-गोष्ठी और आजकल का कर्कश, अभारतीय संगीत–शास्त्रीय संगीत की ओर जनता की उदासीनता–रुचि का भ्रष्ट हो जाना–आजकल के समाज में संगीतज्ञ का गिरा हुआ स्थान–तुलनात्मक निरीक्षण–संगीत प्रेम के विषय में समाज का कई वर्गों में विभाजन–राजे-महाराजे, रईस और पूंजीपति, मध्यश्रेणी का व्यक्ति और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निम्नश्रेणी का अशिक्षित गरीब्–इनकी अलग-अलग संगीतरुचि–संगीतज्ञों के मान-सम्मान के कुछ उदाहरण–देशी रियासतें और हिन्दुस्तानी संगीत- ग्वालियर, बड़ौदा, लखनऊ, जयपुर इत्यादि–संगीत मनोरंजन और फ़ैशन के रूप में–छात्रों का संगीत–प्रेम, उनकी उदासीनता–आधुनिक संगीत-शिक्षक–अनपढ़े संगीतज्ञ और पढ़े-लिखे संगीतज्ञ–'तालीम' और ट्यूशन-संगीत का आनन्द–संगीतज्ञ का कर्तव्य–परिश्रम, रियाज़, साधना–संगीत की भावात्मक अथवा रसात्मक व्याख्या–भावुक संगीतज्ञ और भावुक श्रोता–दोनों का सहयोग–राग का भावात्मक प्रभाव–भौतिक सिद्धान्त–संगीत का भद्दा प्रदर्शन–उदाहरण–संगीत का उत्तम प्रदर्शन–उदाहरण–मधुर वर्णन और मधुर संगीत की तुलना-परम्परागत संगीत और रागों के प्रहर और उनके भाव–संगीत की जागृति और नये मनमाने आविष्कार–वैज्ञानिक दृष्टिकोण–संगीत प्रचार–संगीत की उत्तम रुचि और उसके आनन्द का एक उदाहरण–उत्तम श्रोता–संगीत की प्रमुख शैलियों में जात–पांत की भावना–भेद-भाव का बहिष्कार–और संगीत की जागृति और उन्नति ।

अध्याय दो (हिन्दुस्तानी संगीत, ध्रुपद की परम्परा और तानसेन) 34–60

प्राचीन संगीत–वैदिक संगीत और गंधर्वों का संगीत–राजे–महाराजे–राज दरबार और संगीत का मान–प्राचीन हिन्दू राज्य संगीत के संरक्षक और पोषक–पठान शासकों ने हिन्दू शासकों की प्रथा का पालन किया–अलाउद्दीन खिलजी, गोपाल नायक, अमीर खुसरू और क़व्वाली संगीत–ग्वालियर के राजा मानसिंह–चार प्रमुख नायक–अकबर का युग–तानसेन के ध्रुपद–गायन का सुनहरा युग–ध्रुपद की चार बानियां–गौड़हार–डागुर, खंडार, नौहार–तानसेन का एक प्रसिद्ध ध्रुपद–चार बानियों में शब्दों का महत्व–मुग़ल साम्राज्य का अंत और ध्रुपद के नये घराने,–अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में तानसेन परम्परा के तीन विशेष घराने–लखनऊ, जयपुर, बनारस और रामपुर सेनिया घरानों के प्रमुख केन्द्र, तानसेन की परम्परा–उसका प्राचीन संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध–तानसेन और ईरानी संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रवेश–तानसेन और शिव मत और हनुमान मत–विदेशी संगीत का प्रभाव–अरब और ईरान का संगीत–यूनानी संगीत-फ़ारस का संगीत–कुछ विशेष नाम–तानसेन और ग्वालियर के पीर मुहम्मद गौस और सूफ़ी मत–तुर्की संगीत का प्रभाव–ध्रुपद संगीत और वैजू बावरा–तानसेन और वृन्दावन के स्वामी हरिदास डागुर–अकबर और भारतीय संस्कृति का संश्लेपण–तानसेन की ध्रुपद-शैली की विशेषता–विदेशी संगीत का प्रभाव और परिवर्तनशीलता–तानसेन संगीत का सैद्धान्तिक आधार–तानसेन का ध्रुपद संगीत और प्राचीन सिद्धान्त–संगीत के कुछ प्राचीन शास्त्र–तानसेन परम्परा की उपेक्षा अनुचित और हानिकारक–वाराणसी की तानसेन परम्परा–तानसेन के सबसे छोटे पुत्र विलास खां की शिष्य परम्परा–प्यार खां, जाफर खां, बासत खां–ध्रुपद, वीणा–सुरसिंगार और रबाब की संगीत पद्धति–बासत खां के लड़के अली मुहम्मद खां सुरसिंगार–वादक और मुहम्मद अली खां–रबाबिये और ध्रुपद-गायक–सादिक अली खां–बंगाली शिष्यों की परम्परा–बनारस के शिष्य–सेनिया घराने का विस्तार–नये घराने और नई आधुनिक शैलियां–तबला, शहनाई, सारंगी, क़व्वाली शैली, सितार–तानसेन परम्परा और तानसेन के दूसरे लड़के सुरतसेन का घराना–अकबर के युग के हाजी सुजान खां–अठारहवीं सदी–सदारंग–कुछ विशेष घराने–रामपुर दरबार का सेनिया घराना–बहादुर हुसैन खां अमीर खां, मुहम्मद अली खां, वज़ीर खां–दबीर खां–शिष्य–परम्परा के प्रमुख गायक और वादक–नवाब हैदर अली खां छम्मन साहब, पंडित भातखण्डे इत्यादि–ध्रुपद के और प्रमुख केन्द्र–बीजापुर और सुल्तान इब्राहीम आदिल शाह–विशुनपुर और बहादुर खां सेनिये–ध्रुपद का आदिकाल इत्यादि।

अध्याय तीन (शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत क्या है ?) 61–104

हिन्दुस्तानी संगीत की सही परिभाषा–भारतीय संगीत के दो भाग–हिन्दुस्तानी संगीत और करनाटक संगीत–दोनों की समानता और दोनों का अन्तर–दोनों भारतीय संगीत के अन्तर्गत–शास्त्रों का सैद्धान्तिक संगीत और असली व्यावहारिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत, उसका ज्ञान और उसका व्यक्तिगत अनुभव—हिन्दुस्तानी संगीत में हिन्दू-मुसलिम एकता की भावना और सुन्दर सांस्कृतिक संश्लेषण—भावुक और सहृदय श्रोता—संगीत की परख और उसका आनन्द—संगीत और स्वरों का आधार—बारह शुद्ध और विकृत स्वर और बाईस श्रुतियां—श्रुतियों से उत्पन्न तीन सप्तक—मंद्र मध्य, तार—तीनों सप्तकों पर गले का अभ्यास—आवाज़ की शक्ति और उसकी पहुंच—रागों के तीन प्रकार सम्पूर्ण, षाडव, औडव—दस ठाट इमन, विलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी—आसावरी भैरवी और टोड़ी—प्राचीन छः राग, छत्तीस रागिनियां—पत्नीराग, पुत्र राग, वधू राग, इत्यादि—आधुनिक संगीत इनका समर्थन नहीं करता—परन्तु रागों का पुरुषत्व और नारीत्व सारगर्भित तत्व हैं—दरबारी और आसावरी के उदाहरण—दस ठाटों की तरह तीन ग्रामों का आधार—स्वरों के चार प्रकार, वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी—सात मूर्छना, सूक्ष्म स्वरों के उच्चारण का अभ्यास—व्यावहारिक संगीत का ज्ञान अनिवार्य—गायन शास्त्र का अनुवाद है—प्रतिभा और भावुकता, दो मुख्य गुण—राग और उनके भाव और रस—उनका प्रभाव—आलाप और बंदिश गायन के दो माध्यम—स्वर, शब्द और भाषा—शब्दों का कलात्मक उच्चारण—नीरस, बेजान उच्चारण—हिन्दी अथवा ब्रजभाषा हिन्दुस्तानी संगीत के माध्यम—ब्रजभाषा का महत्व तानसेन के युग से लेकर अब तक—ब्रजभाषा के गुण—कुछ उदाहरण—आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की प्रमुख शैलियां—ध्रुपद, तानसेन युग से लेकर अब तक—गम्भीर, सैद्धान्तिक शैली—ध्रुपद और वीणा का प्राचीन सहयोग—ध्रुपद परम्परा—ध्रुपद की विशेषतायें—ध्रुपद शैली का चरित्र—इस शैली की आधुनिक अवनति—होरी—धमार, उसकी विशेषतायें—ख्याल—सदारंग, अदारंग ख्याल और ध्रुपद परम्परा—ख्याल शैली की विशेषता और उसके गुण—स्थाई, अंतरा, बंदिश, राग व्याख्या, प्रभाव—शैली के आभूषण और कुशल गायक—ख्याल का भविष्य—कुछ प्रमुख ख्याल गायक—सादरा—गम्भीर चरित्र, ताल का आनन्द, मुरादाबाद के नज़ीर खां, लखनऊ के दूल्हे खां इत्यादि—तराना—उसके गायन के अवगुण, तराने का उत्तम गायन—लक्षण गीत स्व०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डे जी के कुछ सुन्दर और उत्तम लक्षण गीत–राग की परिभाषा–संगीत के विद्यार्थियों के लिए लाभदायक–लक्षण गीत का रचनात्मक चमत्कार–इत्यादि।

अध्याय चार (लोकप्रिय संगीत) 105–126

लोकप्रिय संगीत के बारे में ग़लत विचार–संगीत के कट्टर पंडितों का विरोध–आम जनता में इस संगीत की लोकप्रियता और शास्त्रीय संगीत की ओर उदासीनता–लोकप्रिय संगीत में शास्त्रीय संगीत के कड़े अनुशासन का विरोध–स्वाभाविक प्रतिक्रिया साहित्य और संगीत के क्षेत्रों में–लोकप्रिय संगीत हिन्दुस्तानी संगीत की व्यापक परम्परा ही के अन्तर्गत–लोकप्रिय संगीत की कुछ विशेष शैलियां–ठुमरी–शास्त्रीय संगीत के गायकों का विरोध–निर्मूल द्वेष–ठुमरी की कठिन शैली–ठुमरी गाना आसान नहीं–ठुमरी का जन्मस्थान लखनऊ–बनारस और लखनऊ की दो ठुमरी शैलियां–उनकी तुलना–पूरब की ठुमरी का निराला ढंग–ठुमरी के अन्वेषक लखनऊ के नवाब सादिक अली खां–ठुमरी के प्रमुख आधुनिक प्रचारक भैया साहब गनपत राव और उनके शिष्य मौजुद्दीन खां–पूरब की ठुमरी की विशेषता–पंजाब की ठुमरी–बड़े गुलाम अली खां ठुमरी का मुश्किल बोल–बनाव–दादरा–ठुमरी की तरह मुश्किल शैली–बनारस का दादरा और उसका लालित्य–कुछ उदाहरण–गज़ल–पुरानी रागों में गाई गई गज़लें–ग़ालिब, मीर, जफ़र, दाग़ इत्यादि की रोचक और गेय कविता–ग़ज़ल की शैली हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के अन्तर्गत–पुरानी ग़जल और शास्त्रीय संगीत–नई फ़िल्मी गजल–सस्ती, बाजारू भावुकता–चलती–फिरती तर्जें–पुरानी और नई गजलों के संगीत में अन्तर–फ़िल्मी गीत और गाने–बेतुका मिश्रण–संगीत की अशुद्धता, विदेशी संगीत के स्वर–सस्ती भावुकता–फिल्म के संगीत में हिन्दुस्तानी संगीत का विरोध, उसकी प्रबल प्रतिक्रिया–भारतीय फिल्मी संगीत–अराजकता–मनमाना प्रयोगवाद–रागों की मर्यादा का भंग और उसका तिरस्कार–फ़िल्मी संगीत का मौसमी रंग–उसकी चलायमान अस्थिरता–भजन और कीर्तन की प्राचीन परम्परा–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीरा, कबीर, सूरदास, तुलसीदास का काव्य—धार्मिक भावना—भक्ति, तन्मयता—संत, कवि और भक्त—मन्दिरों में भजनों का समूह गान—बंगाल का कीर्तन—भजन और कीर्तन संगीत—परम्परा के अनिवार्य अंग—क़व्वाली और नात—क़व्वाली और मज़ार—मुस्लिम साधना—आधुनिक क़व्वाली मज़ार के बाहर—रेडियो, संगीत-समारोहों में कव्वाली—प्रसारण—नातों की धार्मिक भावना—कव्वाल और नात की आमफ़हम शैली—होटलों में क़व्वाली गायन—क़व्वाली की आम लोकप्रियता और उसका व्यापक प्रसारण—भक्ति रस का संगीत—नात की लोकप्रियता—नात की शैली इत्यादि ।

अध्याय—पांच (वाद्य और नृत्य) 127–158

वीणा सबसे-प्राचीन वाद्य—वीणा—संगीत का ध्रुपद शैली से विशेष सम्बन्ध—तानसेन के दामाद मिश्री सिंह बीनकार-वीणा और ध्रुपद—सेनिया घराने के बीनकार, सुरसिंगार—वादक और रबाब—वादक—बहादुर हुसैन खां, अमीर खां, मुहम्मद अली खां—जयपुर के रजब अली खां और बंदे अली खां बीनकार, अलवर के मुशर्रफ खां और रामपुर के वज़ीर खां—अलवर के सादिक अली खां—कलकत्ते के दबीर खां—भावनगर के मुहम्मद खां—लखनऊ के मुहम्मद हुसैन—वीणा—वादन की अब बहुत कम शिक्षा—भविष्य अनिश्चित—सुरसिंगार और रबाब—बहादुर हुसैन खां, नवाब हैदर अली खां—छम्मन साहब बहादुर-मुहम्मद अली खां रबाबिये—आधुनिक युग में दोनों वाद्यों का लोप—सरोद—काबुल के गुलाम अली खां सरोद—वादन के अन्वेषक—नन्हें खां—हाफ़िज़ अली खां—कलकत्ते के करामतुल्ला खां—सखावत खां—मैहर के अलाउद्दीन खां—अली अकबर और अमजद अली खां, राधिका मोहन मोयत्रा और शरन रानी—प्राचीन युग के लखनऊ के प्रतिभाशील, भावुक सरोदवादक चुन्नू खां—सितार—रहीम सेन, निहाल सेन, अमृत सेन, निर्मल शाह—ग्वालियर के अमीर खां—उनके सुपुत्र फज़ल हुसैन, फ़िदा हुसैन—मैसूर के बरकतुल्ला खां—इटावे के इमदाद खां, इनायत खां, हामिद हुसैन, विलायत खां, रविशंकर इत्यादि—लखनऊ के युसुफ़ अली—तरुण सितार वादक—विचित्र बीन—अब्दुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अज़ीज खां–अहमद रज़ा–सारंगी–श्रेष्ठ सारंगी वादक–आजकल के प्रमुख वादक–वाइलिन–कुछ वाइलिन वादक–पखावज–कुदऊ सिंह–कुछ विशेष वादक–तबला–श्रेष्ठ तबला वादक थिरकुवा खां, उनके नाम–हारमोनियम–भैया जी और कुछ श्रेष्ठ वादक–कथक नाच–लखनऊ का कथक घराना–ठाकुर प्रसाद, बिन्दादीन और कालका प्रसाद–वंशज अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज, बिरजू महाराज–शिष्य परंपरा–सितारा देवी–लखनऊ कथक घराना कथक नाच का स्रोत–जयपुर घराना लखनऊ घराने का अनुयायी–जयपुर कथक नाच की प्रबन्ध शैली–जयपुर के सुन्दर प्रसाद जयलाल, कार्तिक राम इत्यादि–आम जनता में कथक नाच की अधूरी शिक्षा–कथक नाच की सुरक्षा का सुझाव–उपाय और साधन–लच्छू महाराज का लखनऊ में दायित्व–देहली और लखनऊ के कथक केन्द्र और उनकी सेवा–कथक नाच का भविष्य–उसकी निर्दोष शैली–कथक नाच का उत्तम प्रचार और प्रदर्शन–घरानेदार नाच की सुरक्षा इत्यादि।

अध्याय–छः (संगीत-शिक्षा और संगीत का व्यापक प्रचार) 159–202

आधुनिक संगीत शिक्षा–आधुनिक संगीत प्रचार का अनिवार्य अंग–प्रचार और शिक्षा का सहयोग–प्राचीन 'तालीम' अथवा संगीत-शिक्षा का विरोध–प्रतिक्रिया के लक्षण–संगीत-शिक्षा के साधन–संगीत विद्यालय–संगीत की पुस्तकें, स्वर-लिपि–संगीत सरकारी परीक्षा के रूप में–दो महान् संगीत-प्रचारक और शिक्षक–पण्डित विष्णु दिगम्बर और पण्डित भातखण्डे–विष्णु दिगम्बर बालकृष्ण बुआ के शिष्य–ग्वालियर घराना–ग्वालियर गायकी–गायक नहीं परन्तु संगीत प्रचारक और संगीत शिक्षक–विष्णु दिगम्बर के संगीत विद्यालय–शिष्यों को शिक्षा–शिक्षक और प्रचारक–स्वर-लिपि का आविष्कार–संगीत की सरल किताबें–जनता में आम प्रचार–शिष्यों का शिक्षक बनना–प्रमुख शिष्य–ओंकारनाथ ठाकुर और शिष्यों का सबसे प्रथम वर्ग–ओंकारनाथ के गायन में ग्वालियर घराना की गायकी का विरोध–तीव्र प्रतिक्रिया की भावना–अपनी अलग स्वतन्त्र शैली–सुरीली आवाज़–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु प्रयोगवाद की भावना और प्रवृत्ति—दूसरे गायकों की नक़ल—अब्दुल करीम खां आवाज़ की नक़ल और फ़ैयाज़ खां की तानों की नक़ल—दोनों अधूरी—मनमानी भावुक गायकी—परन्तु गंभीर, मननशील संगीतज्ञ—रोबीला व्यक्तित्व—नाटकीय अभिनय—खोज-बीन में रुचि—विद्वानों का सा मनन—बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत विभाग के अध्यक्ष—सुरीला गान—भजन गान—संगीत की प्रयोगशाला—संगीत के स्वरों का मनुष्य और पत्तों और पौधों का प्रभाव—अधूरी शैली—गायन में नियमबद्धता का अभाव—गाने का प्रभावशाली व्यक्तित्व—ख्याति और सम्मान—विनायक राव पटवर्धन—सफल गायक—कुशल कलाकार "जोगी मत जा" वाला भजन और उनका तराना—विष्णु दिगम्बर के श्रेष्ठ शिष्यों में—उत्तम शिक्षक—ख्याति—पूना गंधर्व महाविद्यालय—डी० बी० पलुस्कर के गुरु—परिश्रमी शिक्षक—उनकी शिक्षा की ख्याति—नारायण राव व्यास—लोकप्रियता आम जनता के इस विशेष मत के मशहूर गायक—उनके ग्रामोफोन के रेकार्ड-आम जनता में लोकप्रिय गायक—संगीत विद्यालय के अध्यक्ष—सफल प्रचारक और शिक्षक—बी० आर० देवधर—विष्णु दिगम्बर के प्रतिभाशील, क्रियाशील, उत्साही शिष्य—संगीत-सम्बन्धी संस्थाओं के सदस्य—सफल प्रचारक और शिक्षक—शिक्षित संगीतज्ञों में गणना—कुमार गंधर्व के गुरु—बम्बई में नाम—"कला विहार" के संपादक—भावुक श्रोता और गुण-ग्राहक—पण्डित विष्णु दिगम्बर की संगीत सेवा—रामधुन के "रघुपति राघव राजाराम" के अन्वेषक—प्रयाग के कुंभ मेले में उनका धार्मिक गायन—संगीत के विद्वान् प्रचारक और पण्डित—देश भर में उनके संगीत विद्यालय इत्यादि।

पण्डित भातखण्डे दूसरे महारथी—प्रचारक, शिक्षक, विद्वान्—अद्वितीय विद्वत्ता और छान-बीन—शास्त्रों का अध्ययन—संगीत पद्धति—संगीत शिक्षा की नई व्याख्या—संगीत शास्त्री और व्यावहारिक संगीत के पारखी—प्रमुख घरानेदार संगीतज्ञों में घनिष्ठ परिचय—व्यावहारिक संगीत का व्यक्तिगत अनुभव—जयपुर के मुहम्मद अली खां के शिष्य—विद्वान् लेखक—"लक्ष्य-संगीत", "अभिनव राग मंजरी", "क्रमिक पुस्तक माला" इत्यादि—भावुक रसिक—आधुनिक संगीत में इनका महान् कार्य-सर्वश्रेष्ठ शिष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण नारायन रतनजनकर, विद्वान् गायक–भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, और अन्य भातखण्डे शिक्षा-पद्धति के संगीत विद्यालय देश भर में।

आधुनिक संगीत के व्यापक प्रचार और संगीत–प्रसारण के तीन विशेष माध्यम–रेडियो, फिल्म और संगीत-सम्मेलन–रेडियो की तटस्थ भावना–संगीत-प्रसारण मुख्य उद्देश्य–रेडियो संगीत का प्रकाशक है, लेखक नहीं है–सब तरह के संगीत का प्रसारण–फिल्मी संगीत सैद्धान्तिक तत्वों की ओर उसकी उदासीनता–रेडियो–सरकारी मुहकमा–उसके दोष–फिल्मी संगीत शास्त्रीय संगीत की तीव्र प्रतिक्रिया–फिल्मी संगीत में शास्त्रीय संगीत का विरोध-उसको विगाड़ने की चेष्टा–फिल्म का सस्ता, भावुक और बाज़ारू संगीत–उसके अभारतीय लक्षण–संगीत-सम्मेलन केवल संगीत प्रसारण के माध्यम–गुण–चर्चा और शास्त्रीय विचार–विनिमय का प्रभाव–भाषण और तलाऊपर प्रोग्राम–संगीत सम्मेलनों का रोजगार–संगीत–सेवा का बाज़ारू भाव इत्यादि।

अध्याय–सात (हिन्दुस्तानी संगीत के कुछ विशेष घराने) 203–247

संगीत और परंपरा–परंपरागत संगीत ही अपनी संगीत–परंपरा–परंपरा-रहित संगीत की कल्पना असम्भव–परंपरा का क्रम, सिलसिला–व्यावहारिक संगीत का परंपरागत अध्ययन अथवा निरीक्षण–परंपरा ही संगीत की रक्षक तथा पोषक–घराने परंपरा के प्रतीक और स्तम्भ–घरानेदार संगीत परंपरागत संगीत–पुरानी 'तालीम' और 'रियाज़' का महत्व–घरानों में रोचक शैलियों का जन्म और उनका बढ़ना–शैलियां घरानेदार संगीत की प्रभावशाली माध्यम–गायकी और बाज घरानेदार संगीत के प्रतीक–असली संगीत की जागृति–घरानेदार, परंपरागत संगीत की जागृति–संगीत-प्रचार और पुरानी संगीत-शिक्षा और संगीत-प्रदर्शन में अन्तर–प्रतिष्ठित घराने परंपरागत संगीत के माध्यम–घरानेदार संगीत की उपेक्षा अनुचित और हानिकारक–घराने प्राचीन संगीत और आधुनिक संगीत को जोड़ने और मिलाने वाले–घराने प्राचीन परंपरागत संगीत के बहुमूल्य खज़ाने–उनके प्रति आधुनिक संगीत की उदासीनता हानिकारक और घातक–घरानों के प्रति द्वेष और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरस्कार की भावना अनुचित और घातक–कुछ मुख्य घराने–ग्वालियर का सर्वश्रेष्ठ ख्याल घराना–नत्थन पीरबख्श इस घराने के अन्वेषक–इस घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक उनके शिष्य–हद्दू खां, हस्सू खां, नत्थू खां–तीनों बड़े मुहम्मद खां के भी शिष्य–हद्दू-हस्सू खां की शिष्य-परंपरा–निसार हुसैन खां, रहमत खां, बाबा दीक्षित, शंकर पण्डित, एकनाथ राव, बालकृष्ण बुआ इत्यादि।

आगरा घराना–इस घराने के आदि पुरुष अकबर युग के हाजी सुजान खां–ध्रुपद-धमार शैली के गायक और धुरन्धर विद्वान्–इस घराने के आधुनिक अन्वेषक–घग्घे खुदाबख्श–नत्थन पीरबख्श के परम शिष्य–आगरा गायकी के अन्वेषक–आगरा गायकी की रोचकता–ग्वालियर गायकी और आगरा गायकी में अन्तर–आगरा घराने की शिष्य-परंपरा के प्रमुख गायक–गुलाम अब्बास खां, कल्लन खां, नत्थन खां, फैय्याज खां, भास्कर राव बखले, मुहम्मद खां, अब्दुल्ला खां, विलायत हुसैन इत्यादि–इनकी शिष्य-परंपरा–एस०एन० रतनजनकर, बशीर खां, अता हुसैन, दिलीप चन्द्र वेदी इत्यादि।

देहली घराना–आदि पुरुष मियां अचपल–अन्वेषक तानरस खां (कुतुब बख्श)–दरबारी गायक–हैदराबाद में निवास–उनके सुपुत्र उमराव खां–भतीजे शब्बू खां–उमराव खां के सुपुत्र सरदार खां–और प्रमुख शिष्य–चहूर खां, अब्दुल करीम खां, अलताफ हुसैन खां, नसीर अहमद खां इत्यादि।

पटियाला घराना देहली घराने की शाखा–अन्वेषक तानरस खां के शिष्य फतेह अली खां और अली बख्श (अलिया-फत्तू अथवा जरनैल-करनैल)–इनके वंशज–आशिक़ अली और अख्तर हुसैन–शिष्य परंपरा–कुसूर के अलीबख्श (बड़े गुलाम अली खां के पिता), मियां जान खां, काले खां, मेहरदान खां, सरदार बाई इत्यादि। इनकी शिष्य परंपरा–बड़े गुलाम अली खां, बरकत अली इत्यादि।

संक्षेप में और घराने–किराना घराना। अलादिया खां घराना इत्यादि।

घरानों का भविष्य इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय एक

संगीत, संगीतज्ञ और समाज

भारतीय साहित्य और भारतीय कला के समान भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत भी शताब्दियों की अमूल्य देन है। एक प्रकार से इसकी ऐतिहासिक व्याख्या भी आवश्यक हो जाती है। कोई भी कला क्यों न हो उसे हम परम्परा के वातावरण ही में देख सकते हैं। यदि वह परम्परा से अलग कर दी जाये तो फिर वह अजायबघर की वस्तु बन कर रह जाती है। उसे फिर हम जीवित कला नहीं कह सकते। संगीत पर यह चीज विशेष रूप से लागू है। भारतीय संगीत का इतिहास बहुत प्राचीन है। रही उसकी परम्परा की बात, वह भी बहुत पुरानी है। यही कारण है कि प्राचीन समय से अब तक हिन्दुस्तानी संगीत हमारे आध्यात्मिक और भावात्मक जीवन का अनिवार्य अंग हो कर रहा है। हमारी कलात्मक अनुभूतियों को भी इस कला से बहुत प्रोत्साहन मिला है। यदि कला सौंदर्य-उपासना का सजीव प्रतीक और उसका अमर माध्यम है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दुस्तानी संगीत की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन कला जिसका जन्म वैदिक युग में हुआ था, हमारी अध्यात्मिक और रसात्मक भावनाओं से पूरी तरह सम्बन्धित है। इसलिए जब हम उसके प्राचीन इतिहास का अध्ययन करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसके ऐतिहासिक वातावरण और उसकी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी कला के दृष्टिकोण से पूरा निरीक्षण अथवा अध्ययन करें। प्रत्येक जीवित अथवा जीती-जागती कला का ठीक-ठीक अध्ययन इसी प्रकार किया जाता है। किसी कला के गौरवशाली अतीत काल का केवल स्तुतिगान करना ही काफी नहीं है। उसके गुणों और उसकी विशेषताओं का कलात्मक विश्लेषण करना भी परम आवश्यक है। उसके व्यावहारिक पक्ष पर भी दृष्टि डालना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। यही बात न्यायसंगत है और तभी हम किसी कला की सच्ची ऐतिहासिक समालोचना कर सकते हैं। प्राचीन संगीत को प्राचीन शास्त्रों के दीमक लगे हुए पन्नों से बाहर निकाल लाना ही काफी नहीं है। उसके व्यावहारिक पक्ष का सजीव ढांचा बगैर जाने हुए हमें उसकी प्रगतिशील शक्तियों का कोई भी ज्ञान नहीं हो सकता। प्राचीन संगीत का अध्ययन इस लिए आवश्यक हो जाता है कि हमें उसकी अमर आत्मा का थोड़ा बहुत ज्ञान हो और हम उसकी जीती-जागती तस्वीर की एक झलक देख सकें। किसी जीवित, प्रगतिशील कला का अध्ययन करते समय हमें उसकी परिवर्तनशीलता का भी पता चलता है। यदि हम यह समझ लें कि हमारा प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत सदैव एक अचल स्वर के समान शांत और स्थिर रहा है तो यह हमारी बड़ी भारी भूल है। हम यहां ऐसे संगीत की चर्चा नहीं कर रहे हैं। संगीत की ऐसी व्याख्या करना तो उसके साथ सरासर अन्याय होगा। हमारा संगीत सदियों की यात्रा करके अब आधुनिक युग में पहुंचा है बड़े-बड़े परिवर्तनों के बीच में से गुज़र कर वह आया है। संगीत के इतिहास लिखने वाले जब संगीत को मिश्र की एक 'ममी' के समान समझते हैं तो उसे वह जीवित कला के रूप में नहीं देख पाते। हिन्दुस्तानी संगीत ऐसी कला को तो हम तभी समझ सकते हैं जब हम उसका अध्ययन सामाजिक, आर्थिक, साँस्कृतिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक अथवा ऐतिहासिक परिस्थितियों में सही-सही कर सकें।

हमारे संगीत ने मन्दिर में जन्म पाकर बाद में एक परिमार्जित कला का रूप धारण किया। यह सच है कि उसकी आत्मा में अपूर्व शांति थी परन्तु उसके चरित्र में परिवर्तनशीलता भी मौजूद थी। उसकी अलौकिक प्रतिभा में प्रगतिशीलता का विशेष गुण था। ऐसा न होता तो हमारे प्राचीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दुस्तानी संगीत की इतनी उन्नति नहीं होती। परिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार करके ही प्रत्येक कला उन्नति करती है। परन्तु यह सच है कि प्राचीन संगीत की परिस्थितियां कुछ और थीं और आधुनिक संगीत की कुछ और हैं। प्राचीन सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण की रूपरेखा कुछ दूसरी ही थी। हमारे प्राचीन संगीत ने परिवर्तन से मुंह कभी नहीं मोड़ा। इतिहास हमें यह बताता है। परन्तु इतिहास से हमें यह भी पता चलता है कि प्राचीन संगीत और आधुनिक संगीत के बीच में एक बड़ी खाई भी है जो आसानी से भरी नहीं जा सकती। हमारे संगीत का दृष्टिकोण भी अब बिल्कुल बदल गया है। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल के संगीतज्ञों और आधुनिक युग के संगीतज्ञों में बहुत बड़ा अन्तर है। अथवा यह कहा जाये कि पिछले दो सौ वर्ष पहले के संगीतज्ञों और आजकल के संगीतज्ञों में बड़ा अन्तर है तो और भी उपयुक्त होगा। पुराने ज़माने में एक संगीतज्ञ का समाज में बहुत ऊंचा स्थान था और उसकी अपनी विशेष व्यक्तिगत मर्यादा भी थी। वह संगीत ऐसी महान् और पवित्र कला का परम भक्त और पुजारी माना जाता था जो उसकी कला का पारंगत भी था। बहुत से संगीतज्ञों का बड़े-बड़े राज दरबारों में बड़ा मान था और उनका वहां बहुत आदर-सत्कार भी होता था। इतिहास से पता चलता है कि तानसेन बादशाह अकबर के नवरत्नों में था और बादशाह के हृदय में उसके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। यहां तक सुना जाता है कि एक दिन भेष बदल कर बादशाह अकबर तानसेन के साथ उसके गुरु हरिदास स्वामी डागुर का गाना सुनने भी गये और उनकी संगीत कला को देखकर बहुत चकित हो गये। इसके पहले जब तानसेन रींवा महाराज के यहां नौकर थे तो वह उनका अपने गुरु के समान आदर करते थे। जब राजा अकबर ने महराज रींवा से तानसेन को मांगा तो तानसेन के रवाना होते समय, सुना जाता है कि महाराजा रींवा ने उनकी पालकी में कुछ दूर तक अपना कांधा भी लगाया था राजा अपने गुरू का ऐसा ऊंचा सम्मान करे यह कोई मामूली बात न थी। अभी सौ वर्ष हुए एक ग्वालियर-नरेश ने अपने महल में एक पूज्य संगीतज्ञ को रहने का स्थान दियो। वर्षा का मौसम था और उस संगीतज्ञ ने अपने कमरे में कढ़ाई चढ़ा कर बेसन की पकौड़ियां बनाना शुरू की और राग मल्हार को उस एकान्त में गुनगुनाने और फिर अलापने भी लगा। उसका कण्ठ बहुत मधुर था और इसलिए उसके गाने पर राजा को कोई आपत्ति हो नहीं सकती थी। परन्तु जब धुंआ रानियों के महल में पहुंचने लगा तो सुनते हैं कि ग्वालियर-नरेश स्वयं इन संगीतज्ञ के कमरे में पहुंच कर उनसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदरपूर्वक बड़े विनीत भाव से बोले 'अब रात अधिक हो गई है और यदि आपको कष्ट न हो तो आग बुझा कर आप भी विश्राम करें।' संगीतज्ञ ने उस समय तो उनकी बात मान ली मगर मन में सोचा कि राजा ने मल्हार के सुरों की कोई प्रशंसा न करके धुंए की बात क्यों छेड़ दी। सुबह होते ही वह महल छोड़ कर चले गये और फिर कई वर्षों के पश्चात् राजा की बहुत बिनती करने पर और उनके बड़े आग्रह पर ही वह ग्वालियर बड़ी मुश्किल से लौटे। न तो एक संगीतज्ञ का इतना बड़ा आदर अब हो सकता है और न कोई संगीतज्ञ इतने व्यक्तिगत रूप से अपने आत्मसम्मान को इस स्वतन्त्रता से दिखा सकता है। पिछले सत्तर अस्सी वर्षों में कुछ संगीतज्ञ आधुनिक काल में भी इस तरह के हुए हैं जिनका बड़े-बड़े राजे महाराजों ने बड़ा अद्भुत और शानदार आदर किया था। उदाहरण के लिए हमें जानना चाहिए कि मैसूर और बड़ौदा ऐसी बड़ी-बड़ी रियासतों में स्वर्गीय उस्ताद फैयाज़ खाँ का कैसा बड़ा आदर होता था। यह बात बहुत से लोग जानते हैं।

पुराने युग का संगीतज्ञ अपने को एक बिल्कुल दूसरे सांस्कृतिक वातावरण में पाता था जिसमें कला और ज्ञान और विद्या का स्थान बहुत ऊंचा था और उस समय गुण के सच्चे पारखी भी अधिक संख्या में पाये जाते थे। यदि यह कहा जाये कि संगीत अब इस दृष्टि से नहीं देखा जाता और न सुनने वाले उसे उस कसौटी पर कसते हैं तो ग़लत न होगा। आधुनिक युग में संगीत का मान उस ऊंचे स्तर पर नहीं है जैसा पहले था। उसके कई कारण अवश्य हो सकते हैं, मगर यह मानना ही पड़ेगा कि संगीत का पहला सा मूल्य अब नहीं है और न अब संगीत-प्रेम में पहली सी तन्मयता है। किसी संगीतज्ञ ने इस युग की तुलना कलयुग से करते हुए और संगीत-प्रेम की अवनति देखकर ठीक कहा था 'गुण नहीं हिरानों गुणा ग्राहक हिरानो है।'

पहले का संगीतज्ञ किसी कुशल गुरू से व्यक्तिगत रूप से संगीत शिक्षा प्राप्त करता था और उसमें एक शिष्य का सच्चा सेवा-भाव था। इसके अलावा उसे अपने गुरू से संगीत के गहरे तत्वों का ज्ञान भी प्राप्त होता था और वह संगीत-कला के उन रहस्यों की जानकारी भी प्राप्त करता था जो किसी विद्वान गुरू से ही उसे मिल सकती थी। संगीत के ऐसे गुरू के दो तीन से अधिक शिष्य नहीं होते थे। आजकल की तरह वह शिष्य बीस पच्चीस छात्रों के साथ एक ही कक्षा में संगीत के चालीस मिनिट वाले घण्टे में संगीत नहीं सीखता था। इसके अलावा उसे जिस संगीत की शिक्षा मिलती थी वह प्राचीन परम्परागत संगीत था और आजकल का किताबी संगीत नहीं था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भी जानना चाहिए कि पहले लोग किसी विद्वान पण्डित या किसी निपुण उस्ताद से ही संगीत की शिक्षा अथवा 'तालीम' पाते थे। पिछले दो सौ से अधिक वर्षों में मुसलमान कलाकारों ने उत्तम घराने दार तालीम की प्रथा स्थापित की थी जो आजकल की संगीत-शिक्षा से बिल्कुल अलग थी। और फिर संगीत केवल गुण-ग्राहक को ही सुनाया जाता था। आजकल तो हर व्यक्ति संगीत का श्रोता होने का दावा करता है। पुराने जमाने में आम जनता एक बड़ी भीड़ के साथ शास्त्रीय संगीत क.. नहीं सुन पाती थी। संगीत, याने ऊँचे दरजे का हिन्दुस्तानी संगीत, केवल संगीत-प्रेमी ही सुनते थे। आजकल के माध्यम जैसे रेडियो, फिल्म, संगीत-सम्मेलन, टेलीविजन, ग्रामोफोन रेकार्ड और टेप उस युग में कहाँ थे। खास-खास महफिलों, बैठकों, नाशिस्तों और शाही महफिलों में ही या रईसों की एकान्त की संगीत सभाओं में ही उत्तम संगीत का आयोजन होता था। आजकल के संगीत कलाकारों की तरह उस समय के कलाकार को किसी बड़े आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ता था। कुछ गुण-ग्राहक ही संगीत की मधुर कला का आनन्द लेते थे और एक कुशल गायक या वादक जीविका-निर्वाह की मुसीबतों का सामना नहीं करता था। इसके साथ-साथ उस समय का संगीतज्ञ परम्परागत संगीत ही की आराधना और सेवा करता था। वह और कोई संगीत नहीं जानता था। आजकल का संगीतज्ञ इस प्रयोगवाद के युग में संगीत के तरह-तरह के प्रकारों और रूपों को देखता है और उनका सामना करता है। और संगीत सुनाते समय उसके श्रोता उससे किसी गज़ल, फिल्मी तर्ज अथवा "चलती-फिरती चीज" की भी फरमाइश करते हैं। आम जनता एक फिल्मी गायक के सामने शास्त्रीय संगीत के एक अच्छे गायक को सुनना पसन्द नहीं करती। बाजारू, सस्ती भावुकता से भरे हुए फिल्मी गीत ही को आज की आम जनता पसन्द करती है। नई-नई तर्जें जिनमें देशी और विदेशी तर्जों का बेतुका, कर्कश और भावुक मिश्रण होता है लोगों को पसन्द आती हैं। और इन लोगों में पढ़े-लिखे श्रोता भी हजारों की संख्या में होते हैं। राग रागनियों को कौन सुनता है।

इसके अलावा आजकल के संगीतज्ञ का समाज में क्या विशेष स्थान है? वैज्ञानिक, तकनीकी विशेषज्ञ, डाक्टर, राजनीतिज्ञ के समान उसका समाज में कोई विशेष स्थान नहीं है। उसकी गिनती समाज के पिछड़े हुए लोगों में है। संगीत का व्यवसाय कुछ लोगों के लिए शरीफ और सभ्य जरूर हो गया है। मगर पेशेवर संगीतज्ञों को लोग अभी भी तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। वह प्राचीन समय अब कहाँ है जब संगीत अपनी मर्यादा की उच्च शिखर पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विराजमान था और जब लोग एक कुशल संगीतज्ञ को आदर की दृष्टि से देखते थे, अब तो संगीत का वह सम्मान नहीं है और न प्राचीन संगीत का अब वह मूल्य है। भारत-विख्यात संगीत शास्त्र के विद्वान स्वर्गीय भातखण्डे जी से एक बार एक कुशल और मशहूर मुसलमान संगीतज्ञ ने एक बड़ी ऊँची और पते की बात कही। उसने आधुनिक युग में आजकल, के संगीत-प्रेम पर टिप्पणी करते हुए कहा "पहले कद्रदान हमारे गुलाम हुआ करते थे और अब हम नाकद्रों के गुलाम हैं।" यह तीव्र समालोचना-अवश्य है मगर, इस व्यंगात्मक वाक्य में एक गहरा सत्य भी छिपा है। आजकल की संगीतरुचि से पता चलता है कि इस देश का परम्परागत, प्राचीन संगीत अब किसी हद तक बहुत तरह के नाकद्रों, का गुलाम बन गया है। संगीत के संसार में तरह-तरह के इतने कर्कश और अभारतीय स्वर गूँज गये हैं कि संगीत की मधुर, अमर, वाणी अब नहीं सुनाई पड़ती। चारों ओर से आवाजें सुनाई पड़ती हैं कि प्राचीन भारतीय संगीत का प्रचार हो रहा है और हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति हो रही है। परन्तु उसके साथ-साथ हमें प्रतिक्रिया के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। लोगों की संगीत रुचि का स्तर बहुत कुछ गिर सा गया है, विशेषकर जहाँ तक प्राचीन राग रागनियों के संगीत का सम्बन्ध है। यह बात इतनी प्रत्यक्ष है कि इस पर परदा नहीं डाला जा सकता। और जहाँ तक संगीतज्ञ के सामाजिक स्तर की बात है इसे कहने पर हम वाध्य हैं कि कुछ विशेष ऊँचे कलाकारों को छोड़ कर जिन्हें यश और धन दोनों प्राप्त हैं, सैकड़ों ऐसे भी हैं जिनका संगीत का पेशा है और जिनका समाज में कोई निश्चित स्थान नहीं है। ऐसे कलाकारों का दोष केवल यही है कि उन्होंने बाजारू, भावुक संगीत का तिरस्कार करके प्राचीन संगीत ही को अपनाया और उसे सीखा।

जहाँ तक संगीत से प्रेम करने वालों और उसका आनन्द उठाने वालों का प्रश्न उठता है हम आधुनिक समाज को कई वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। सबसे पहले हम देश के राज्यों और राजों-महाराजों की बात छेड़ते हैं। इसमें तो कोई शक नहीं कि भारत की बहुत सी ऐसी बड़ी और छोटी रियासतें हैं जो अपने संगीत-प्रेम के लिए काफ़ी मशहूर हो चुकी हैं। बहुत से ऐसे राजा महाराजा भी हुए हैं जो संगीत जानते थे और जिनका संगीत-प्रेम अथाह था। अकबर के विषय में यह बात मशहूर है कि वह संगीत का पारखी था और उसने तानसेन ऐसे अद्वितीय गायक को अपने नव-रत्नों में से एक माना था। यदि अकबर गुण-ग्राहक न होता और संगीत का पारखी न होता तो तानसेन ऐसा बेजोड़ प्रतिभाशील संगीतज्ञ रागदरबारी कान्हरा का आविष्कार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न करता और न अकबर के नाम से उसी राग में एक विशेष ध्रुपद की रचना भी करता। यह वही तानसेन थे जिनका गाना राजा अकबर के दरबार में सुनकर चाँद खाँ और सूरज खाँ जो रात और दिन की सारी रागें मिलकर गाते थे और अपने समय के धुरन्धर गायक भी माने जाते थे, उनसे हार मान गयें। अकबर के दरबार से प्रोत्साहित होकर ही तानसेन इतने बड़े गायक बाद में हुए और अपने नाम की बहुत सी रागों की रचना थी जिनमें कुछ के नाम हैं मियाँ की टोड़ी, मियाँ का सारंग, मियां मल्हार इत्यादि। अकबर के दरबार के संपर्क ही से तानसेन का सारे संसार में नाम हुआ।

ग्वालियर हिन्दुस्तानी संगीत का प्रमुख केन्द्र रहा है। बहुत पहले ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर संगीत के बहुत बड़े विद्वान हुए हैं जिन्होंने 'संगीत कुतूहल' ऐसे संगीत के शास्त्र की रचना थी। आधुनिक काल में पिछले सौ वर्षों में ग्वालियर में बड़े-बड़े संगीतज्ञ हो चुके हैं जिनमें से कुछ के नाम हैं नत्थन पीरबख्श, बड़े मुहम्मद खाँ, हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, रहमत खाँ, निसारहुसेन खां, बाबादीक्षित, शंकर पण्डित, बालकृष्ण बुआ इत्यादि। पिछले दिनों में लोगों ने ग्वालियर के सरोदिये उस्ताद हाफिज अली खाँ और वहाँ के परवत सिंह पखाजिये का बहुत नाम सुना था और उनके बेजोड़ वादन को भी सुना था।

बड़ोदा रियासत के स्वर्गीय उस्ताद फैयाज खाँ के नाम से कौन परिचित नहीं है। उनको मैसूर से 'आफ़तावे मूसूकी' की पदवी मिली थी।

जयपुर में भी बड़े-बड़े मार्के के संगीतज्ञ हुए हैं जिनमें कुछ के नाम हैं वीणा-वादक उस्ताद बंदेअली खां और रजब अली खाँ, सितार-वादक बाबू खाँ, ध्रुपद-गायक करामत खाँ और ख्याल-गायक कल्लन खाँ इत्यादि।

अलवर के मुशर्रफ खाँ वीणा-वादक और ध्रुपद गायक अलाबन्दे खाँ और जाकिर उद्दीन खाँ को कौन नहीं जानता? इसी तरह रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ, वीणा-वादक को उन्नीस सौ बीस तक बहुत से लोग जानते थे। वह भी महान् कलाकार थे।

छोटी रियासतों में भी अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ हुए। दतिया के अद्वितीय पखावज वादक कुदऊ सिंह का नाम संगीत के संसार में अमर हो गया है। इसी तरह रामपुर और गिद्धौर के रबाब-वादक उस्ताद मुहम्मद अली खाँ के नाम से सब परिचित हैं।

बिलसी के स्वर्गीय नवाब छम्मन साहब जो सुरसिंगार बेजोड़ बजाते थे, बड़े ऊँचे संगीतज्ञ थें। रामपुर के स्वर्गीय नवाब रज़ा अली खाँ खड़ताल बजाते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में बड़े निपुण थे।

सबसे बड़ा उदाहरण तो हमें लखनऊ के पुराने नवाबों में मिलता है। अवध के आखरी नवाब वाजिद अली शाह कथक नाच में पारंगत थे और उन्होंने नृत्य कला को ठाकुर प्रसाद से सीखा था जो कथक नाच के जन्मदाता और आधुनिक प्रवर्तक माने जाते हैं।

इस विषय में और बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। जो बात कहने की है वह यह है कि राज्यों और रियासतों में हिन्दुस्तानी संगीत को न केवल पूर्ण प्रोत्साहन मिला परन्तु संगीतज्ञों और उनके घरानों को बहुत काल तक आश्रय और उचित आदर भी मिला।

मगर अब ऐसा नहीं है। बड़ौदा रियासत का संगीत का होली का जलसा और मैसूर का दशहरे का संगीत समारोह अब केवल स्वप्न बन कर रह गये हैं। रामपुर दरबार की संगीत की महफिलें अब कहाँ हैं? बिहार प्रान्त के दरभंगा राज और या फिर बनेली राज के संगीत के चर्चे अब सुनने में कहा आते हैं? जोधपुर, उदयपुर और भरतपुर ऐसी रियासतों में जो कुछ संगीत का बोलबाला था वह अब कहाँ है? पता नहीं कि बंगाल की रियासतें नाटौर, गौरीपुर, महिशादल, विष्णुपुर, मुक्तागाचा इत्यादि में अब संगीत की चर्चा होती है कि नहीं। सच तो यह है कि बहुत सी रियासतों में अब संगीत का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता है।

जबसे भारत सरकार ने देशी रियासतों की स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया है तबसे संगीत ऐसी कला को भी काफी धक्का पहुँचा है। मगर रियासतों में जो संगीत को क्षति पहुँची है उसका एक और कारण है। पिछले कुछ सालों से बहुत से देशी राजों और रियासतों में संगीत की पहली सी रुचि नहीं है और संगीत के प्रति उनकी भावना भी बहुत कुछ बदल गई है। पुराने राजों और महाराजों में बहुत से ऐसे भी थे जो उत्तम संगीत से सच्चा प्रेम करते थे और संगीतज्ञों को पुरस्कार और धन के अलावा आश्रय और आदर दोनों देते थे। परन्तु अब यह पुरानी प्रथा एक पुराने रिवाज के समान लुप्त होती जा रही है। धन के अभाव के कारण और नये-नये शौकों और मनोरंजनों में लिप्त होने के कारण आजकल के राजों और महाराजों के पास समय नहीं है कि वह प्राचीन अथवा शास्त्रीय संगीत का आनन्द उठा सकें। अब न उनके पास धन है, न समय और न रुचि।

रही रईसों और धनवानों की बात तो उनके लिए भी नये-नये मनोरंजन उपस्थित हो गये हैं। वह राग रागनियों के संगीत को ठलुओं का फिजूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोरंजन समझते हैं। रईसों के पुराने रिवाजों का अन्त हो रहा है। उनके पास न समय है और न रुचि है कि संगीत ऐसी महान कला का आनन्द उठायें। हमारे बहुत से नये धनवान अथवा पूंजीपति यदि संगीत का शौक करना चाहते हैं तो फिल्म की किसी अभिनेत्री अथवा फिल्मी संगीत के किसी प्लेबैक, कलाकार को हजारों रुपये खर्च करके और बुलाकर संगीत का अपना शौक पूरा कर लेते हैं। हलके फुलके गानों में जो आनन्द उन्हें आता है वह रागालाप में कहाँ है? उनके लिए वही संगीत मन को भाता है जिसमें कण्ठ मधुर हो और जिसकी कविता में कूट-कूट कर सस्ती भावुकता भरी हो। वह शास्त्रीय संगीत सुनने के झगड़े में नहीं पड़ते। और यदि वह किसी मशहूर गायक अथवा वादक को लम्बी चौड़ी फीस देकर बुलाते भी हैं तो उसकी कला का आनन्द लेने के लिए नहीं परन्तु अपनी प्रशंसा और अपनी ख्याति और इज्जत के लिए। वह स्वयं इतना नहीं सुनते जितना अपने ख़ास-ख़ास अतिथियों को सुनवाते हैं।

रहा मध्य श्रेणी का व्यक्ति। वह पढ़ा लिखा भी होता है और संगीत में रुचि भी रखता है और दिखाता भी है। परन्तु उसकी संगीत रुचि रेडियो, फिल्म, संगीत-सम्मेलन और टेलीविजन की परिधि के अन्दर सीमित होती है। उसके संगीत के बारे में अपने विचार होते हैं और पूरी स्वतन्त्रता से वह उनका प्रचार भी करता है। जहाँ तक हिन्दुस्तानी संगीत का संबन्ध है वह यदि उसको स्वयं नहीं सीखता तो समझने का दावा जरूर रखता है। यदि वह परंपरागत संगीत को नहीं जानता तो संगीत की आधुनिक स्वर-लिपि और नई-नई संगीत की पुस्तकों से थोड़ा बहुत परिचित होता है। अगर वह खुद शास्त्रीय संगीत, नहीं जानता अथवा सीखता तो अपनी सन्तान को अवश्य सिखाने का प्रयास करता है। वह संगीत-प्रेमी और कनरसिया भी होता है। जहाँ तक आधुनिक गायकों और वादकों का प्रश्न है वह उनकी अधिकतर प्रशंसात्मक आलोचना ही करता है और टेनिस और क्रिकेट के खिलाड़ियों की तरह उन्हें भी वह पहली दूसरी और तीसरी श्रेणियों में विभाजित करता है। इसी लिए संगीत के बारे में उसके व्यक्तिगत विचारों का अपना एक विशेष संकुचित क्षेत्र होता है। वह धन नहीं खर्च कर सकता मगर संगीत की प्रशंसा अथवा निन्दा अवश्य कर सकता है।

रही निम्न श्रेणी के लोगों की बात जिनमें अधिकतर गरीब तथा अनपढ़ लोग होते हैं परंपरागत संगीत से उनका कोई संबन्ध नहीं होता। वह अपने लोक-संगीत की भिन्न-भिन्न अपरिमार्जित शैलियों में ही अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द पाते हैं। सौंदर्योपासना और कला की सूक्ष्म अनुभूतियों से उनका क्या संबन्ध ? ताजमहल की वास्तुकला और तानसेन की ध्रुपद-शैली उनकी समझ से बाहर है। ख्याल और तराना भी उनके लिए बेकार है। ठुमरी और दादरा में उन्हें थोड़ा बहुत आनन्द आ सकता है। परन्तु अपने अटपटे, लोक-संगीत की धुनों और गीतों और प्रबन्धों में उनकी तन्मयता देखकर यही लगता है कि वह भी संगीत का आनन्द लेते हैं और संगीत का भावात्मक प्रभाव उन पर भी अवश्य होता है। उनका अपना अपरिमार्जित लोक-संगीत भी भारतीय संगीत की महान परम्परा के अन्तर्गत है। वह संगीत पर वाद-विवाद नहीं करते और न तर्क करते हैं। वह केवल अपने ढंग से ही उसका आनन्द लेते हैं। प्राचीन, शास्त्रीय संगीत उनकी रुचियों का तिरस्कार नहीं करता।

रही आजकल के एक संगीतज्ञ की बात। यह बात तो हमको मानना ही पड़ेगी कि समाज में उसका कोई विशेष निश्चित स्थान नहीं है। यह कहना तो आसान है कि संगीतज्ञ का एक कलाकार की हैसियत से समाज में उसका बड़ा ऊंचा स्थान है और लोग उसका बड़ा आदर करते हैं। परन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है जब हम संगीत के पेशे को देखते हैं। आधुनिक संगीत की एक बड़ी समस्या पेशेवर संगीतज्ञ की समस्या है। इस बात पर अधिक ध्यान देने से पता चलता है कि संगीत का व्यवसाय और पेशों और धन्धों से बिल्कुल अलग है। जीविका-निर्वाह करने वाले प्राणी की हैसियत से आजकल के सामाजिक वातावरण में वह अपने को और पेशेवरों से बहुत कुछ अलग पाता है। इनमें पहले हमें संगीत के वह पेशेवर कलाकारक अथवा संगीत-शिक्षक दिखाई देते हैं जो थोड़ा बहुत पढ़े लिखे होते हैं और जिन्हें हम सभ्य अथवा शरीफ संगीत के शिक्षक और प्रचारक कहते हैं। या तो वह किसी संगीत के छोटे अथवा बड़े स्कूल में संगीत शिक्षक का काम करते हैं या फिर घरों में जाकर संगीत सिखाते हैं जिसे वह 'ट्यूशन के नाम से पुकारते हैं। शहर या कस्बे में बहुत से घरों में जाकर वह ज्यादातर पढ़ने वाली लड़कियों की ही ट्यूशन करते हैं जिनमें से कुछ तो संगीत किसी सरकारी परीक्षा के विषय के रूप में सीखती हैं। या कुछ ऐसी भी होती हैं जिनके माता पिता सीने-पिरोने, सामान्य शिक्षा और घर के कामों के अलावा किसी कला का ज्ञान, विशेष कर संगीत का ज्ञान, दिलवाते हैं जिससे वह कुशल और प्रवीण समझी जायें और उनको उत्तम से उत्तम वर मिले और उनका वैवाहिक जीवन भविष्य में हर प्रकार से सुखी हो। मां बाप के मन में अपनी सन्तान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सुख के लिए संगीत के प्रति ऐसा विचार और ऐसी प्रेरणा रखना बिल्कुल स्वाभाविक बात है। परन्तु बहुत से बड़े शहरों में शिक्षित लड़कियां अथवा ऊंची शिक्षा पाने वाली लड़कियां संगीत कला को आधुनिक जीवन का एक शानदार ऊंचा फैशन या मनोरंजन समझ कर भी सीखती हैं। इस तरह के ऊंचे किस्म के मनोरंजन अथवा 'तफरीह' को वह सांस्कृतिक जीवन का अनिवार्य अंग समझती हैं। ऐसा मन बहलाव भी आजकल स्वाभाविक माना जाता है और आधुनिक शिक्षा के स्वतन्त्र सिद्धान्तों की पूर्ति करता है।

संगीत की 'ट्यूशन' करने वाला अथवा संगीत की पाठशाला में संगीत सिखाने वाला शिक्षक जो सभ्य और थोड़ा बहुत पढ़ा लिखा भी होता है। आधुनिक संगीत-शिक्षा का प्रतिनिधि माना जाता है। उसका स्थान एक अनपढ़ संगीतज्ञ से कहीं ऊंचा होता है। वह अनपढ़ संगीतज्ञ परम्परागत संगीत का अनुयायी हो सकता है और घरानेदार गायक या वादक भी हो सकता है। परन्तु आधुनिक युग में संगीत के व्यवसाय में उसका स्थान एक सभ्य और शिक्षित संगीत-शिक्षक से नीचा ही समझा जाता है प्रायः ऐसे सभ्य शिक्षित संगीत-शिक्षक केवल शिक्षक ही होते हैं, कलाकार नहीं होते। परन्तु एक अनपढ़ पेशेवर संगीतज्ञ पहले स्वाभाविक रूप से कलाकार होता है— गायक या वादक- और तब बाद में शिक्षक। केवल इतना ही अन्तर नहीं है। 'अनपढ़ और अशिक्षित' संगीतज्ञ या पेशेवर उस्ताद अथवा गुरु या पण्डित पुरानी संगीत की शिक्षा या तालीम की पद्धति का पालन करता है और वह संगीत की किताबों और संगीत की स्वर लिपि के माध्यम से संगीत नहीं सिखाता है। उसे हम रुढ़िवादी या 'दकियानूसी' कह सकते हैं मगर हम उसकी तालीम के सारे नियमों और सिद्धान्तों का तिरस्कार नहीं कर सकते। उनमें जो गुण हैं उनका बहिष्कार न करके हम उत्साह और कृतज्ञता की भावना से उन्हें स्वीकार कर सकते हैं, अपना सकते हैं और उनसे बहुत कुछ लाभ भी उठा सकते हैं। पुरानी तालीम के अवगुणों को भूल कर उनकी अच्छाइयों से हम बहुत फायदा उठा सकते हैं। इसलिए संगीत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति और उसकी आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा-पद्धति का उचित संमिश्रण होना हमारे लिए लाभदायक होगा। पुराने उस्ताद अपने शागिर्द या शिष्य को भैरव और यमनकल्यान ऐसे रागों ही से उसकी संगीत-शिक्षा आरम्भ करते थे। टोड़ी और मारवा ऐसे रागों को वह बाद में सिखाते थे। एक हिसाब से यह ठीक भी था। क्योंकि टोड़ी की गंधार और मारवा की धैवत एक नये विद्यार्थी के गले में आरम्भ में नहीं बिठाये जा सकते। इ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागों के यह दो स्वर कुछ समय के बाद ही गले से सही निकल सकते हैं। आधुनिक ठाठ पद्धति और पुरानी राग पद्धति में कोई विशेष विरोध नहीं है। हम दोनों के गुणों से फायदा उठा सकते हैं और संगीत की एकता की भावना को सुरक्षित रख सकते हैं। पुराने संगीत और नये संगीत के सिद्धान्तों के सहयोग और मिलन ही से हमारे संगीत की उन्नति हो सकती है। और तभी हम संगीत के कलाकार और संगीत-शिक्षक के बीच में सहयोग और एकता की भावना को प्रोत्साहित कर सकते हैं। भारतीय संगीत की इस अमर आत्मा और उसकी एकता के भावों को यदि हम सदैव ध्यान में रखें तो अनपढ़ और पढ़े-लिखे संगीत कलाकारों के बीच की खाई को हम भर सकते हैं।

परन्तु आधुनिक समाज में अनपढ़े अथवा पढ़े लिखे संगीतज्ञों के सामने और भी प्रश्न हैं। पहली बात तो यह है कि औसत दर्जे के संगीतज्ञों के सामने जो संगीत का व्यवसाय करते हैं जीविकानिर्वाह की आर्थिक समस्या हमेशा उठती है। और काम धन्धों में तो केवल योग्यता और परिश्रम ही से काम बन जाता है मगर संगीतज्ञ का कर्तव्य तो यही होता है कि वह अपने श्रोता को अपने गायन अथवा वादन से खुश करे। उसका और कोई काम नहीं है। इसी में उसकी कला की सफलता होती है। एक मशहूर अंग्रेजी लेखक ने साहित्य की कसौटी की चर्चा करते हुए ठीक कहा है कि साहित्य का कर्तव्य यही है कि वह पाठक को आनन्द पहुंचाये। यह बात संगीत पर भी लागू है। वही संगीतज्ञ योग्य और सफल समझा जाता है जो श्रोतागण को पूरा आनन्द पहुंचाये। श्रोताओं को संगीतज्ञ के ज्ञान और उसकी विद्वता से कोई मतलब नहीं है। यदि गायक का कण्ठ मधुर न हो और वह केवल संगीत-शास्त्रों का एक विद्वान और पण्डित ही माना जाये, तो उसकी गायन कला किसी को प्रभावित नहीं कर सकती। इसी प्रकार यदि किसी वादक-बीनकार, सितारिया, सरोदिया के हाथ में मिठास न हो और वह नाना प्रकार की अछोप और अप्रचलित रागों का प्रकाण्ड पण्डित ही हो तो उसकी वाद्यकला में क्या प्रभाव हो सकता है, यदि गाने और बजाने से श्रोताओं के कान तृप्त नहीं तो ऐसे गाने बजाने से क्या फायदा, या अगर एक विद्वान गायक की आवाज भद्दी और भोंड़ी हो तो उसका गाना कौन सुनेगा? संगीत वही उत्तम माना जाता है जिसके स्वर कानों को सुन्दर और मीठे लगें और जिनका प्रभाव हृदय पर हो अथवा जिनकी चोट दिल पर लगे। यदि संगीत में रंजकता नहीं है तो हम उसे सही अर्थ में संगीत नहीं मान सकते। संगीत की शैली कोई भी हो—ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, दादरा, गज़ल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यादि—मगर उसमें मिठास अथवा मधुरता होना आवश्यक है। यही कारण है कि कुछ गाना बजाना शुष्क होता है और सुनने वाले उसको सुनकर ऊब जाते हैं। इसलिए प्रत्येक कुशल कलाकार को अपनी कला को सुन्दर बनाना आवश्यक है। वही कलाकार श्रोता के हृदय को स्पर्श कर सकता है, उसको हंसा और रुला सकता है जो स्वयं सहृदय और भावुक हो। यह प्रत्येक संगीतज्ञ को एक प्रकार की चुनौती है कि वह अपने श्रोताओं को पूर्ण आनन्द पहुंचादे। और किस व्यवसाय वाले का काम इतना कठिन है ?

इसके अलावा संगीतज्ञ को अपने सुन्दर और भावपूर्ण संगीत को सुरक्षित रखने के लिए निरन्तर घण्टों तक अभ्यास या रियाज़ करना पड़ता है। वह अपने रियाज़ में इतना तन्मय हो जाता है कि वह अपनी सुध बुध भूल जाता है। पहलवान का अखाड़ा और गायक या वादक का रोज़ का घण्टों का रियाज़ एक समान हैं। एक प्रसिद्ध बीनवादक के अभ्यास अथवा रियाज़ की कथा मशहूर है। उसकी लड़की बहुत सख्त बीमार थी और वह अपनी कोठरी में तन्मय होकर अपनी बीणा पर रियाज़ कर रहा था। कुछ घण्टों के पश्चात् लड़की की दशा बहुत बिगड़ गई और वह मृत्यु के समीप आगयी। घर के किसी व्यक्ति ने जाकर उस बीनकार को यह सूचना दी मगर वह अपने अभ्यास में इतना खो गया था कि लड़की की हालत सुन कर भी वह बोला 'अभी आखरी तीन चार ताने और रह गई हैं।' यह कहकर वह फिर अपनी वीणा में तन्मय हो गया। थोड़े ही समय के बाद जब वह अपने अभ्यास का अन्त कर चुका तो उसे पता चला कि उसकी लड़की का देहान्त हो चुका था। जब उसकी वीणा की झंकार रुकी तो उसे घर का रोना पीटना सुनाई दिया। जब वह अपनी संगीत की तन्मयता के बाहर आया तो मानो उसे होश आया और फिर वह फूट-फूट कर रोने लगा। अपने रियाज़ में वह सारे संसार को भूल गया था और उसके लिए मृत्यु और जीवन की सीमाएं एक सी हो गई थीं। संगीत की तन्मयता का इससे बड़ा उदाहरण और कोई नहीं हो सकता। मगर यह भी है कि यदि संगीतज्ञ प्रतिदिन अपना अभ्यास न करे तो उसके गायन या वादन में ज़ंग-सा लग जाता है और उसके आकर्षण और उसकी चमक में कमी आने लगती है। यही कारण है कि अभ्यास या रियाज़ उसके लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आजकल के संगीतज्ञों को पहले ज़माने के संगीतज्ञों के घण्टों के रियाज़ की आदत नहीं है। पौ फटने के पहले तंबूरा लेकर बैठ जाना और दोपहर तक अभ्यास करने की प्रथा अब धीरे-धीरे हमारे आधुनिक जीवन से गायब सी हो रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखनऊ के भारत-विख्यात अद्वितीय तबला-वादक आबिद हुसेन सुबह रियाज़ करते समय प्रतिदिन अपने तबले की रफ्तार को जब तक डाक गाड़ी की गति से मिला नहीं लेते थे तब तक उनको सन्तोष नहीं होता था। दो बजे रात से वह अपने तबले का रियाज़ आरम्भ कर देते थे। आज भी सच्चे कलाकार अपने रियाज़ को कभी नहीं छोड़ते।

इस परिश्रम करने का अर्थ यही है कि आधुनिक युग के संगीतज्ञ को श्रोताओं की भिन्न-भिन्न रुचियों को तृप्त करना पड़ता है। आधुनिक समाज में श्रोतागण तरह तरह के होते हैं और उनकी रुचि भी अलग-अलग होती है। परंपरागत संगीत का अनुयायी संगीत की प्राचीन शैलियों का अभ्यास करता है और लोकप्रिय संगीत और लोक संगीत की कुछ विशेष शैलियों को छोड़ कर वह फिल्मी संगीत, गीत और नाना प्रकार की और तर्जों और धुनों से बिल्कुल परिचित नहीं होता जिनकी फरमाइश जनता उससे अवसर करती है। बरसों के अध्ययन और परिश्रम के बाद उसे यह पता चलता है कि लोग आधुनिक संगीत की बहुत सी अपरिमार्जित और बेतुकी बगैर सिर और पैर वाली शैलियों को पसन्द करते हैं और उन्हें सराहते भी हैं। संगीत की इस नई आजादी की दुनियां से जहां प्रयोगवाद के नाम पर संगीत के सिद्धान्तों और उसकी प्राचीन परंपरा की अवहेलना की जाती है, एक नया चलता फिरता, सस्ता, भावुक और बाजारू संगीत लोगों के मन को भाता है। तो फिर प्राचीन शास्त्रीय संगीत का जानने वाला ऐसी दशा में क्या करे? वह वह देखता है कि राग-रागिनियों के प्राचीन संगीत के विरोध में आधुनिक संगीत की बहुत सी नई शैलियां प्रतिक्रिया का काम करती हैं और लोगों की रुचि को भ्रष्ट करती हैं। ऐसी दशा में वह अपने को लाचार और असहाय पाता है। पढ़े लिखे लोग अपने जोश में प्राचीन संगीत के अनोखे प्रभाव पर व्याख्यान अवश्य देते हैं, टिप्पणी भी करते हैं और लिखते भी हैं। परन्तु आम जनता क्या इन विचारों से अपने मन में सहमत होती है।

तो क्या इस वैज्ञानिक युग में जब संगीत में इतनी उथल-पुथल है रागों के रसात्मक और भावात्मक प्रभावों का वर्णन करना असंगत है? क्या प्राचीन साहित्य के नौ रसों का सिद्धात एक भूल थी और कवियों की कल्पना की केवल एक उड़ान थी? क्या इस, आधुनिक युग में रागों के कोई निश्चित समय माने जाते हैं? और क्या रागों, रसों और भावों का प्राचीन पारस्परिक संबन्ध गलत है? ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में और इस प्रकार की शंकाओं का समाधान करने ही से हमें पता चलता है कि इस युग में प्राचीन हिन्दुस्तानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत किस दिशा की ओर जा रहा है। संगीतज्ञों और संगीत के विद्वानों को इस विषय पर अपने विचार प्रकाशित करना चाहिए। सैद्धान्तिक रूप से यह बात हमारे संगीत के मौलिक विचारों से सम्बन्धित है। 'क्या यह सच है कि राग मियां की टोड़ी के स्वरों के कलात्मक उच्चारण में करुणा रस का आभास होता है ?' इस प्रकार का एक प्रश्न पूछा जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि क्या हमें इस बात को मानना चाहिए कि अलग-अलग राग अलग-अलग रस और भाव प्रदर्शित करते हैं ?

इसके उत्तर में हमें यही कहना है कि संसार के प्राचीन संगीतों में हिन्दुस्तानी संगीत ही ऐसा संगीत है जो सैद्धान्तिक रूप से इस बातपर अटल विश्वास रखता है कि राग समय के अनुसार गाये और बजाए जाते हैं और उनमें अलग-अलग रसों और भावों का समावेश होता है। यदि कोई यूरोपियन या अमरीकन संगीतज्ञ इस पर आक्षेप करे और अपना अविश्वास इस सिद्धान्त पर दिखाये तो हमको कोई एतराज नहीं हो सकता। वह हमारे संगीत की आत्मा को ठीक तरह नहीं जानता है। उसका क्या दोष ? परन्तु यदि कोई भारतीय संगीतज्ञ इस सिद्धान्त की कठोर और तीव्र आलोचना करे तो हमें केवल आश्चर्य ही नहीं दुख भी होगा। जब पेड़ों और पत्तों में संवेदना होती है। सर्प बीन पर झूमने लगता है और जंगल के मृग संगीत से प्रभावित हो सकते हैं तो यदि संगीत में जादू का असर होता है तो इसमें क्या आश्चर्य ? इस युग में भी कुछ गायकों और वादकों ने अपने श्रोताओं को अपने संगीत से ऐसा प्रभावित और तन्मय किया है कि उनके आंसू निकल पड़े हैं। मियां की टोड़ी से करुणा के भाव उत्पन्न होते हैं यह कोई झूठ नहीं। यह भी झूठ नहीं है कि सुबह के राग भैरव में शांत रस होता है। क्या सुबह चार बजे जोगिया या सोहनी लोगों को बेचैन नहीं कर देते ? क्या रात को देश और सोरठ ऐसे राग सुनकर विरह और प्रेम के भाव पैदा नहीं होते ? क्या वर्षा में मेघमलार, गौड़ मल्हार, सूरदासी मल्हार, मियां मल्हार इत्यादि राग बरसात का समा नहीं बांधते ? क्या आधी रात को दरबारी ऐसे गम्भीर राग में कबीर के पद 'घूंघट के पट खोल तोहे राम मिलेंगे' सुनकर एक श्रोता भावुक तन्मय नहीं हो जाता ? क्या राग मालकोश के स्वर हमारे भावों को उत्तेजित नहीं करते। क्या राग जैजयवन्ती से शृंगार रस नहीं पैदा होता ? क्या शाम के रागों इमनकल्याण, पूर्वी, श्री और पूरिया इत्यादि से सांयकाल का समा प्रदर्शित नहीं होता ?

परन्तु श्रोता इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' में जभी दे सकता है जब उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन रागों को बहुत बार सुना है और यदि वह अपने संगीत की आत्मा को जानता है। इस आनन्द उठाने की पहली शर्त तो यह है कि श्रोता स्वयं भावुक हो और रसिक हो। आंखे उसकी डबडबाती हैं जिसके हृदय में आंसू होते हैं। रूखे, रसहीन हृदय वाले श्रोता पर किसी राग का प्रभाव नहीं हो सकता। यदि संगीतज्ञ का यह दायित्व है कि वह राग को सुन्दरता से सुनाये और इसके भावों को कलात्मक ढंग से श्रोता के सामने लाये तो श्रोता का भी कर्तव्य यही है कि वह एक सहृदय, भावुक श्रोता बने। कविता और संगीत के प्रभाव से सही रूप में प्रभावित होने के लिए सुनने वाले का हृदय भी भावुक होना चाहिए और उसके कान भी रसिक होने चाहिए। श्रोता कोई खाली बर्तन के समान नहीं है कि जिसमें कवि या गायक अपनी कला के भावों और रसों को उंडेल देता है। श्रोता में भी तो भावों को स्वीकार और ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए। यदि उसमें खुद भावुकता नहीं है तो वह संगीत के भावुक प्रभाव से कैसे प्रभावित हो सकता है, सुपात्र श्रोता ही गुण-ग्राहक होता है। इसलिए यदि संगीत का कलाकार अपनी कला का चमत्कार दिखाता है तो श्रोता को चाहिए कि वह भी उसे अपनी भावुक आत्मा का पूरा-पूरा सहयोग दे। बिना इस सहयोग के कला के आनन्द की पूर्ति नहीं हो सकती। यदि श्रोता चाहता है कि उसे रस का आनन्द आये तो उसे इस योग्य बनना चाहिए।

जहां तक रागों के भावों और रसों की बात है वह एक श्रोता के लिए उसके सुनने से सम्बन्धित है। फिल्मी गीत तो भावुक सिनेमा देखने वालों को सुन कर ही याद हो जाते हैं। मगर किसी राग का आनन्द लेने के लिए उसे बार-बार सुनना पड़ता है। श्रोता को भी अच्छे संगीत सुनने का अनुभव होना चाहिए। बगैर इसके उसकी अपनी राय अधूरी होगी। 'जो जाने सो माने' वाला कथन बिल्कुल ठीक है। संगीतज्ञ के दृष्टिकोण से भी यह बात ठीक है। हिन्दुस्तानी संगीत का श्रोता सच्ची गुण-ग्राहकता की कसौटी ही पर कसा जाता है। प्राचीन शास्त्रों का संगीत राग-रागिनियों का संगीत है। श्रोता को अगर संगीत का थोड़ा बहुत सही ज्ञान होगा तो उसको उसका सही आनन्द भी आयेगा। उदाहरण के लिए हम राग दरबारी को लेते हैं जो तानसेन की अपनी मौलिक रचना है। उसी ने मियां मल्हार की रचना भी की थी। इन दो रागों में कोमल गन्धार स्वर दो अलग-अलग प्रकारों से लगाया जाता है। कुशल गायक ही जिसको किसी मर्मज्ञ, सुविख्यात गुरु से शिक्षा मिली है, इस अन्तर को दिखा सकता है, दूसरा नहीं। कोमल गन्धार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर के यह दो अलग-अलग दर्जे दिखाकर ही तानसेन ने दो अलग-अलग राग दरबारी और राग मियां मल्हार की रूपरेखा निर्धारित की। यह उसकी अनुपम कला का चत्मकार था। राग दरबारी की आत्मा इस कोमल गन्धार के सही उच्चारण में पाई जाती है। यह भी कहना आवश्यक है कि गम्भीर सुरीली और सुर में भीगी हुई आवाज वाला गायक ही इस कोमल गन्धार के सही भावपूर्ण, सूक्ष्म स्थान को ठीक कलात्मक ढंग से दिखा सकता है। आधुनिक युग के दो-चार गायक ही इस स्वर को उत्तमता से लगा सके। यही स्वर इस राग की जान है। और इसी स्वर और कोमल धैवत के सही प्रयोग से यह रांग बनता है। ऐसा करने ही से इस राग का आनन्द आता है और श्रोता के हृदय पर उसका प्रभाव पड़ता है। यदि गायक के कण्ठ को मंद्र सप्तक के स्वरों पर अधिकार न हो तो वह इस राग के गाम्भीर्य को नहीं दिखा सकता। और यदि उसके कण्ठ से स्वरों का सही उच्चारण होगा तो श्रोता भी उसके गायन को सुनकर उसके स्वरों में डूब जायेगा और फिर इस राग के रस का पूरा आनन्द लेगा।

इसलिए यदि श्रोता को इन स्वरों का थोड़ा-बहुत ज्ञान है तो वह यह राग सुनकर न केवल प्रभावित ही होगा, वह तन्मय भी हो जायेगा। कुशल और प्रतिभाशील गायक का गायन ही श्रोता की छिपी हुई कल्पनाओं को प्रोत्साहित करता है और उसकी आत्मा को आनन्द से भर देता है। गायक यदि योग्य है तो श्रोता को भी योग्य होना चाहिए। लोग जब अक्सर किसी गायक की प्रशंसा में कहते हैं "उसके गले में सरसुती उतर गई है" तो इसका यही अर्थ होता है कि वह गायक सच्चे स्वर बड़े सुन्दर ढंग से लगाता है। 'सुरों की वर्षा" कर देना या राग का "अमृत बरसा देना" भी ऐसे प्रशंसात्मक वाक्य हैं जो एक कुशल गायक के लिए सही उतरते हैं। इस बात से यही साबित होता है कि गायक का श्रोता के प्रति बड़ा भारी दायित्व है। गायक ही श्रोता के कान स्वर से भरता है और उसे संगीत की सही शिक्षा देता है। क्या कारण है कि कुछ लोग जो रागों का कोई भी ज्ञान नहीं रखते परन्तु सही जगह अपना सिर हिलाते हैं ? इसलिए कि संगीत सुनने के लिए केवल शास्त्रीय ज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कानों के सुरीले होने की। कोमल हृदय और सूक्ष्मग्राही श्रोता ही एक आदर्श श्रोता समझा जाता है। संगीत का कोरा वैज्ञानिक ज्ञान काम में नहीं आता यदि श्रोता का हृदय रस से परिचित नहीं है। इस प्रकार संगीत सुनने और सुनाने में गायक और श्रोता दोनों का पूरा सहयोग होता है और वह दोनों एक साथ ही आनन्द उठाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहां पर एक बात और कहना आवश्यक है। रागों के रसों और भावों को एक कुशल गायक या वादक ही श्रोता तक पहुंचा सकता है और उसके हृदय को एक अपूर्व आनन्द से भर सकता है। बहुधा लोगों को यह कहते सुना है कि रागों के अलाप और गायन में समझदार ही को आनन्द आता है तो क्या नासमझ रसिक और संगीत-प्रेमी के लिए हिन्दुस्तानी संगीत में कोई आनन्द नहीं है ? इसका उत्तर यही है कि किसी राग का रस और उसका भाव गायक की कला और उसकी कल्पना-शक्ति पर निर्भर होते हैं। गायक चाहे तो नासमझ को भी अपने संगीत से खुश कर सकता है और उसको आनन्द से भर सकता है। गायक या वादक के संगीत में ऐसी शक्ति होना चाहिए कि वह सुनने वाले को ठीक तरह से प्रभावित कर सके। रागों को रंजक और लोकप्रिय बनाना संगीतज्ञ का काम है। इस कारण उसमें कोई भी अवगुण नहीं होना चाहिए।

हमें यह बात नहीं भूलना चाहिए कि रागों के प्राचीन शास्त्रों के संगीत को सुन्दर और लोकप्रिय बनाना संगीतज्ञों ही का काम है। यदि हम इस बात को जानना चाहते हैं कि लोग राग-संगीत को क्यों नहीं पसन्द करते तो हमें यह मानना पड़ेगा कि यह रागों के स्वरों का दोष नहीं है परन्तु राग-गायन अथवा राग-वादन की कला का दोष है। हम गायन-कला का एक उदाहरण ले सकते हैं। कल्पना कीजिए कि एक बड़ा धुरन्धर गायक है जो कुछ आम श्रोतागण के सामने शास्त्रीय संगीत सुनाने बैठा है। वह राग देस में एक प्रबंध आरम्भ करता है। रचना के शब्द सुन्दर हैं और उनमें बृजभाषा की कोमल पदावली का माधुर्य है। दो बढ़िया तंबूरे छिड़े हैं और संगत के लिए बहुत सुरीली सारंगी और बड़ा बढ़िया तबला भी है। परन्तु जब वह अपने स्वर पर टिक कर राग के स्वरों पर गला चलाने लगता है तो पता चलता है कि उसकी आवाज बहुत भोंड़ी और भद्दी है। देस ऐसे सुहावने और फड़काने वाले राग के स्वरों पर उसका गला घूमता है तो बड़े भोंड़े और कर्कश स्वर सुनाई देते हैं। वह राग की आत्मा को भूलकर बंदिश या रचना के शरीर को सजाने लगता है और उस पर बड़े-बड़े भारी और भद्दे लंबी-लंबी तानों के आभूषण लादने लगता है। राग देस में सुर के भावुक बहलावे न लेकर वह सुरों को एक प्रकार से डंडे मारने लगता है और राग की आत्मा पर कठोर प्रहार भी करता है। राग हथौड़े की चोट वाली गायकी की जंजीरों से जकड़ सी जाती है और उसकी आत्मा का संहार हो जाता है। इसी बीच में गाते समय उसकी एक आध झड़प भी सारंगिये और तबलिये से हो जाती है। संगत की सहयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की भावना की जगह एक युद्ध सा होने लगता है। सुनने वाले पहले तो चुप बैठते हैं मगर उसके मुद्रा-दोष के कारण जब गायक के चेहरे की आकृति बिगड़ जाती है और जब वह अपने शरीर और अपने हाथों का नाटकीय प्रयोग भी बड़ी भद्दी तरह से शुरू कर देता है तो तालियाँ बजने लगती हैं और कुछ सुनने वाले गायक की कलाबाजियों पर हंसने भी लगते हैं। गायक सब तरह से विद्वान् और निपुण है मगर वह सच्चा भावुक कलाकार नहीं है। राग देस ऐसे सुन्दर और आकर्षक राग को इस बेढंगी तौर से गाकर वह अपने श्रोताओं को निराश कर देता है और वे उस दिन से शास्त्रीय संगीत सुनना छोड़ देते हैं। गायक से श्रोता को धोखा हुआ और गायक मानों यहां अपने दायित्व को भूल जाता है।

अब हम उत्तम गायन-कला का एक उदाहरण देते हैं। यह एक सच्ची घटना है जिसका यहां बहुत संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

लखनऊ की क़ैसरबाग की बारादरी में कुछ वर्ष पहले एक बड़े संगीत-सम्मेलन का आयोजन किया गया। जाड़े का जमाना था और यह संगीत-सम्मेलन सायंकाल के सात बजे आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन में संगीत के बहुत से अच्छे कलाकार सम्मिलित हुए। भारतवर्ष के एक बहुत बड़े गायक इसमें आये थे और आज रात को उनका गाना था। इसलिए आज टिकटों की बहुत बिक्री हुई। सैंकड़ों की संख्या में श्रोतागण इस सम्मेलन के संगीत के प्रोग्राम को सुनने आये। आम जनता के साथ बहुत से बड़े रईस, नवाब, ताल्लुक़ेदार और राजे भी इस शानदार जलसे में संगीत का आनन्द लेने आये थे। आश्चर्य इस बात का था कि इस रात भर के संगीत के कार्यक्रम को सुनने के लिए महिलायें भी काफी संख्या में आई थीं। बहुत अच्छे और ऊँचे किस्म के हिन्दुस्तानी संगीत सुनने का आयोजन किया गया था। दूर-दूर से मशहूर संगीतज्ञ इस शानदार जलसे में शरीक होने आये थे। इस जलसे की धूम सारे समाचार-पत्रों में मच गई थी और आज रात को रेडियो वाले भी डेढ़ घण्टे इसके कार्यक्रम को प्रसारित कर रहे थे। राज्यपाल, मुख्यमन्त्री और अन्य मिनिस्टर लोग भी कुछ समय के लिए इस प्रोग्राम में शरीक हुए। सभी के लिए इस संगीत-सम्मेलन का सबसे बड़ा आकर्षण था उस प्रसिद्ध गायक का गाना। उसी को ख़ास तौर से सुनने के लिए तमाम लोग टूट पड़े थे।

ठीक सात बजे राज्यपाल और मुख्यमंत्री के भाषण के बाद प्रोग्राम आरम्भ हुआ। इस जलसे में तरह-तरह के संगीत के कलाकार हिस्सा ले रहे थे। गायक, वादक और नृतक सभी थे। इनमें से कुछ बड़े मशहूर संगीतज्ञ भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। इनमें से कुछ के नाम थे पटियाले के मशहूर विचित्र वीणा के अद्वितीय वादक उस्ताद अब्दुल अजीज खां, कलकत्ते के मशहूर सितारवादक उस्ताद इनायत खां, ग्वालियर के प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद हाफिज अली खां, और परवत सिंह परवाजिये, देवास के मशहूर गायक उस्ताद रजब अली खां, बम्बई के मशहूर गायक उस्ताद विलायत हुसेन खां, रामपुर के ख्याल-गायक मुश्ताक़ हुसेन खां, पंडित अजोध्या प्रसाद पखावज-वादक और भारत-विख्यात तबला-वादक उस्ताद अहमद जान थिरकुवा, पंडित ओंकारनाथ, लखनऊ के नृतक अच्छन महाराज और शम्भू महाराज, बनारस की सिद्धेश्वरी देवी और रसूलन बाई, जयपुर की फरहत जहां विलो, आगरे की अनवरी बेगम, बंबई की केसर बाई और इन्दौर के उस्ताद नसीउद्दीन खां। लखनऊ के सरोदिये सखावत खाँ और सितारिये यूसुफ अली खां यह दोनों भी इसमें शरीक हुए थे। यह कोई ऐसा वैसा संगीत का मामूली जलसा नहीं था। यह एक बड़ा आलीशान संगीत-समारोह था।

वह श्रोता जो वहां उपस्थित थे कई वर्षों तक उस रात के संगीत को नहीं भूल सके। विशेष रूप से उस गायक के गायन ने सबको मुग्ध कर लिया था। सात बजे से गाना, बजाना और नाच तला-ऊपर होने लगे। अच्छन के बेजोड़ कथक नृत्य ने और शम्भू के नृत्य-भाव ने जनता को मोहित कर लिया। हाफिज अली खां के शहद की तरह मीठे सरोद ने, इनायत खां के लासानी सितार ने, अब्दुल अजीज खां की विचित्र वीणा ने, केसरबाई की विद्वान् गायकी ने उस्ताद विलायत हुसेन के साफ-सुथरे सुरीले गाने ने, रसूलन बाई की सुरीली ठुमरी ने और थिरकवा खां के लाजबाव तबले ने सबको अपूर्व आनन्द में डुबो दिया। क्या कहने थे इन कलाकारों के। मगर सबको इन्तजार था उस मशहूर गायक के मधुर गान का।

होते-होते रात के ढाई बज गये और उनका नम्बर अब तक नहीं आया। कुछ लोग, जिनमें कुछ महिलायें भी थीं, ऊंघने लगे। मगर संगीत का कार्यक्रम चलता रहा और एक के बाद दूसरा कलाकार आता रहा। कुछ ही देर के बाद माइक्रोफोन पर आवाज आई कि 'कुछ ही देर बाद इस संगीत सम्मेलन का अंत मशहूर गायक उस्ताद के गायन से होगा।' लोग यह सुनकर बहुत खुश हुए और संभल-संभल कर बैठ गये। मगर अभी उस गायक के नम्बर आने में कुछ और देर थी। रामपुर के मुश्ताक़ हुसेन खाँ का राग-सागर खत्म होने को था और इसके बाद, पटियाले के अब्दुल अजीज खां की बीन थी। दस मिनट के बाद वीणा का नम्बर आ गया। वादक ने राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बागेश्वरी के सुरों को बहुत ही कलात्मक ढंग से बजाया। बाद में पीलू की एक ठुमरी के बोल भी उन्होंने बड़ी सुन्दरता से बजाये। लोगों के कान तृप्त हो गये और लोग उनकी विचित्र वीणा को सुनकर बहुत ही खुश हुए। ऐसा लगा कि अब लोग बढ़िया संगीत सुनने के लिए विशेष रूप से उत्सुक और तैयार बैठे थे। विचित्र वीणा के बाद ही वह प्रसिद्ध गायक श्रोताओं के सामने आ गये। लोगों की आंखें इन पर थीं। वह एक अधेड़ उम्र के सुडौल शरीर वाले और मन को भाने वाली सूरत के व्यक्ति थे। खूबसूरत काली शेरवानी पहने थे और ऊपर से एक कीमती हरा शाल भी पड़ा था। उनके पीछे दो तंबूरों पर उनके दो शिष्य बैठे थे। एक तरफ सारंगी वाला था और उसके पास ही एक हारमोनियम बजाने वाला और एक तरफ अहमद जान थिरकुवा तबले पर बैठे थे। माइक पर फिर से आवाज आई और वह राग ललित को अलापने लगे। उनकी आवाज़ मर्दाना, गंभीर और बहुत सुरीली थी। चेहरे पर मुसकराहट थी और उनकी भावभंगी में बड़ा आकर्षण था। वह इस राग का 'नोम तोम' अलापने लगे और स्वरों का विशेषकर मध्यम स्वर का बहुत आनन्द लेने लगे। कुछ ही मिनट में राग ललित की जीती-जागती, सजीव मूर्ति श्रोतागण की आखों के सामने आकर खड़ी हो गई। पूरी बारादरी में खामोशी छा गयी और सुनने वाले उनकी तरफ एक टक अपनी आंखें लगाये थे। ऊंघते हुए कुछ श्रोता भी सहसा जाग पड़े और राग ललित के स्वर वायुमण्डल में गूंज गये। साढ़े तीन बजे का समय था। लोगों के रोंगटे खड़े हो गये उस प्रातःकाल की राग के स्वर सुनकर। आवाज मीठी और ज़ोरदार ही नहीं थी उसमें एक अजीब दर्द भी था। गमक, मींड़, सुर और सुर के भराव ने राग की सजीव मूर्ति लोगों के सामने खड़ी कर दी। उनके स्वरों के बहलावे से श्रोताओं का मन ललचा गया और लोगों के हृदय में एक मीठी-सी गुदगुदी भी उठी। जब वह स्थायी के बोल शुरू हुए तो और भी आनन्द आया। लोगों के कानों में यह शब्द गूंज गये—'भोरहिं आये जोगिया'। शब्दों के अर्थ को उनके स्वरों ने खूब समझाया। सुबह का समा छा गया। बारादरी के अन्दर ख़ामोशी का राज था और श्रोता अपनी तन्मयता में एक दूसरे संसार में पहुंच गये थे। इसके बाद जब वह दूसरी चीज़ शुरू हुए और जिसके शब्द थे 'तरपत हूं जैसे जल बीच मीन। कहा सैंया हम तुमरो कीन'! तो लोग झूमने लगे। तबले की संगत ने चीज़ के आनन्द को दुबाला कर दिया। जिस तरह से वह धुरन्धर गायक शब्दों को कहते थे उसमें एक अजीब लालित्य था। साथ-साथ ताल के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्जों का चमत्कार भी उनके कण्ठ से बहुत ही अनोखा लगता था। लोगों के सिर और शरीर दोनों हिलने लगे। राग ललित का यह समा डेढ़ घण्टे तक रहा। चीज के अंत होने पर लोग खुशी से वाह-वाह करते हुए तालियां बजाने लगे।

सुबह पांच-साढ़े पांच बज गये थे और गायक ने भैरवी की लखनऊ की एक मशहूर ठुमरी छेड़ दी जिसके बोल थे "बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय।" बड़े मौके की चीज छेड़ी थी। पहली बात तो यह कि ठुमरी खास लखनऊ की थी जिसके शब्दों में लखनऊ के आखिरी बादशाह नवाब वाजिद-अली शाह के ग़दर के बाद लखनऊ छोड़ने की दर्दभरी कहानी कही गई थी नवाब वाजिदअली शाह को अपने जीवन का यह सबसे बड़ा दुख था कि उन्हें अपना प्रिय लखनऊ छोड़ना पड़ा था और अपनी अन्तिम घड़ियां बाद में उन्होंने मजबूरी से कलकत्ते में काटी थीं। जभी तो इस ठुमरी के अंतरे के शब्द उनकी अपने हृदय की पीड़ा से भरे थे—"चार कहार मिल डुरिया मंगाई। अपना बेगाना छूटो जाय।" दूसरी बात यह थी कि यह ठुमरी लखनऊ की कैसरबाग बारादरी में गाई गई जो पुराने नवाबों के लखनऊ की यादगार थी। उस दिन श्रोताओं के बीच में कुछ लखनऊ के अहले शिया मुसलमान सज्जन भी बैठे थे। गायक ने अपने गाने से पुराने लखनऊ की याद दिला दी। जब वह बड़ी दर्दभरी आवाज से कहते थे "चार कहार मिल डुरिया मंगाई" तो सुनने वालों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। उनमें से बहुत तड़प उठते थे। और जब वह अंत में अपनी सुरीली आवाज में कहते थे "अपना बेगाना छूटो जाय।" तो नवाब वाजिदअली शाह की करुणाजनक बेबसी का चित्र आंखों के सामने आ जाता था। वह शिया श्रोता, जो लोगों के बीच में बैठे थे, लखनऊ के नवाबी इतिहास को याद करके अपने आंसू न रोक सके और बेहाल हो गये। बारादरी की दीवारों से इस अवध के दुखान्त नाटक की सदायें आने लगीं। भैरवी बारादरी की रग-रग में गूंज गई। गायक के गाने में उनके स्वरों में एक अजीब दर्द था। मालूम पड़ता था कि उनका दिल भी गाते-गाते भर आया। डेढ़-दो घण्टे तक वह इस ठुमरी को गाते रहे। पौ फटने पर ही उनकी ठुमरी का अंत हुआ। सुनने वालों पर ऐसा जादू का प्रभाव हुआ कि गाना खत्म होने पर बड़ी खामोशी से धीरे-धीरे बात करते हुए वह बारादरी के बाहर निकल आये। श्रोताओं की भीड़ में एक सन्नाटा सा छा गया। बरसों यह ठुमरी लोगों के कानों में गूंजी।

ऊपर दिये हुए दो अलग-अलग उदाहरणों से हम किस नतीजे पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुंचते हैं ? हम जिस बात को कहना चाहते हैं वह इससे साफ हो जाती है। संगीत में गायक अथवा वादक यदि चाहे तो अपनी कला से वह नासमझदारों को भी अपने गाने से मनवा सकता है और रागों के उच्च संगीत के लिए उनके दिलों में जगह पैदा कर सकता है। वही कलाकार सचमुच में सफल और सच्चा प्रतिभाशील कलाकार होता है जो अपने श्रोताओं को संगीत का असली स्वाद दे। और यदि रागों के रस और भाव हैं तो एक श्रोता को उनका पूरा आनन्द गायन अथवा वादन की कला के जरिये से ही मिल सकता है। वह गायक ही क्या जो सुनने वालों को अपने राग से मना न ले और खुश न करे ? असली कलाकार तो वही है जिसकी कला डंके की चोट पर बोले। असली गायक या वादक वही है जिसके संगीत के प्रभाव से श्रोता बच न सके। एक गायक अपने श्रोताओं को जभी मना सकता है जब वह अपने गायन को हर प्रकार से उत्तम और प्रभावशाली बना ले। अगर उसके गायन में सच्चे स्वरों का प्रभाव नहीं है तो उसके संगीत में भाव कहां से आयेगा और उसमें रस कहां से होगा ? और जब ऐसा नहीं होगा तो उसका श्रोता भावों और रसों से कैसे प्रोत्साहित होगा ? उसके हृदय में आनन्द की भावना कैसे उत्पन्न होगी ? यदि उसका गाना रूखा और नीरस है तो श्रोता के भाव उत्तेजित कैसे होंगे ?

जैसे एक व्यक्ति मृदुभाषी होता है और लोग उसकी बात प्रेम से सुनते हैं ऐसे ही एक गायक की गायन कला है। यदि उसमें मिठास है तो श्रोता उस मिठास का आनन्द चखेंगे। परन्तु अगर उसका कण्ठ ही रूखा है और रसहीन है तो वह किसी राग के अन्दर छिपे हुए भावों को उसके स्वरों के गायन द्वारा कैसे दिखा सकता है ? स्वरों के सच्चे उच्चारण से ही भाव पैदा होते हैं। और जब कण्ठ सुरीला होता है तो स्वर भी मीठे निकलते हैं। परन्तु अगर गायक में कोई भावुकता नहीं है तो वह दूसरे के हृदय को भावों से कैसे स्पर्श कर सकता है ? कर्कश स्वरों और भद्दी गायकी के साथ-साथ यदि किसी गायक में मुद्रादोष भी हो तब तो कोई भी श्रोता उसका गाना पसन्द नहीं करेगा। इसी प्रकार यदि किसी कुशल और प्रवीण गायक का कण्ठ सुरीला है और वह अपनी कला में पारंगत हो तो उसका मुस्कराता हुआ चेहरा और उसकी मधुर अमृतवाणी मिलकर जादू का काम करते हैं। यदि गायक सहृदय है तो वह अपने श्रोताओं को भी सहृदय बना लेता है। इसलिए रागों के रस और उनके भाव गायक या वादक की भावुकता और उसकी कल्पना से बड़ी गहरी तरह से सम्बन्धित हैं। दोनों का चोली-दामन का साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। कोई भी कुशल संगीतज्ञ इस मौलिक सिद्धान्त का परित्याग नहीं कर सकता।

जहां तक हिन्दुस्तानी संगीत के मौलिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है कोई भी संगीतज्ञ, जो प्राचीन परंपरागत संगीत का अनुयायी है, आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में किसी निरंकुश शासन का समर्थक नहीं होगा। वह तो उसका केवल परित्याग ही करेगा। आज हमको आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में इधर-उधर अव्यवस्था के कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। प्राचीन संगीत के मौलिक तत्वों और सिद्धान्तों के विरोध में प्रतिक्रिया की एक लहर उठती दिखाई देती है जो हमारे संगीत के लिए भविष्य में घातक साबित होगी। कई तरह से हमें इस निरंकुशता के कई लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इसके कहने से हमारा क्या तात्पर्य है? आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में आज हमें कुछ असाधारण प्रवृत्तियां दिखाई दे रही हैं। इस वैज्ञानिक युग में कला की कल्पना ही बदल रही है और सौंदर्य-शास्त्र के विद्वान् और विचारक उसकी नई-नई परिभाषा जनता के सामने रख रहे हैं। एक विशेष वर्ग है जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले बहुत से बुद्धिजीवी हैं। हमारे संगीत के बारे में उनका विचार है कि हमारी रागों के निश्चित प्रहर और उनके भावों और रसों का प्रभाव इत्यादि एक कल्पित बात है और भारतीय संगीतज्ञों का एक पुराना अंधविश्वास है। इसको वह संगीत का मिथ्या धर्म कहते हैं। कला और संस्कृति के संश्लेषण में वह इस तत्व को नहीं मानते। वह यह कहते हैं कि यह केवल कल्पना है कि भैरवी को सुबह ही गाना चाहिये और मालकोश को रात को। फिल्मी संगीत के बनाने वाले उनकी इस राय से सहमत हैं और उनके गानों की रागें बेवक्त गाई जाती है। हमारे संगीत के संसार में दख़ल देने वाले कुछ अधिक पढ़े-लिखे लोग ऐसे भी हैं जो इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि भैरव सुबह ही गाया जा सकता है, और किसी समय नहीं। इसी तरह से उनकी विचारधारा के अनुसार रात की दरबारी दोपहर को भी गाई जा सकती है। हम ऐसे लोगों को यह बात नहीं समझा सकते कि जोगिया और सोहनी सुबह-सुबह ही क्यों अच्छे लगते हैं। पाश्चात्य सभ्यता और उसके सस्ते और भावुक यूरोपियन संगीत के मानने वाले, जिन्हें नाचघर के संगीत ही का थोड़ा सा उथला ज्ञान होता है और जो 'विलायत' या अमरीका की सैर कर आते हैं, इस संगीत की राग-रागिनियों के भावों की आत्मा को नहीं जानते। ऐसे ही अभारतीय लोग ऐसा अनाप-शनाप बका करते हैं। संगीतज्ञों और संगीत-प्रचारकों को इस बात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का विरोध करना चाहिए।

जिन लोगों को हिन्दुस्तानी संगीत का पूर्ण ज्ञान नहीं है वह लोग ही अपने विचारों को इस आसानी और लापरवाही से प्रकट करते हैं। संसार के बहुत से संगीत के विद्वानों ने इस बात को माना है कि संगीत के प्रत्येक स्वर में एक विशेष भाव होता है। इसीलिए स्वरों का सही उच्चारण संगीत में बहुत ज़रूरी है। जब गायक या वादक किसी राग का वादी या प्रधान या राजा स्वर ठीक स्थान पर लगाता है तो उस राग का असली रूप प्रत्यक्ष हो जाता है। इसलिए स्वरों से भाव प्रकाशित होते हैं जो हर व्यक्ति में किसी न किसी अवस्था में पाये जाते हैं। क्या भैरवी सुबह इसलिए नहीं गायी और बजाई जाती कि उसके स्वरों में उस समय के वातावरण का भाव होता है। क्यों मनुष्य के भावों, सहज ज्ञान, स्वाभाविक बुद्धि और प्रवृत्ति और संगीत के भावों के बीच में कोई स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है? अगर ऐसा न होता तो संसार के श्रेष्ठ और महान् कवि और दैवी शक्ति वाले भक्त और रसिक इस बात को न कहते। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति को मनुष्य की आत्मा का दर्पण कहा है। रागों के स्वरों का काल और प्रहर से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। रामकली, आसावरी और जौनपुरी ऐसी रागें सुबह ही अच्छी मालूम पड़ती हैं। हमारे हृदय, हमारे स्वभाव और हमारी प्रकृति की यह आदत है कि हमको वह स्वर उसी समय अच्छे और भावपूर्ण लगते हैं। संगीत के शास्त्रों ने इस महान् तत्व को खूब अच्छी तरह से समझाया है। हम केवल एक प्राचीन सारगर्भित तत्व को फिर से दोहरा रहे हैं। यही हमारे संगीत की निराली विशेषता है।

संगीत-शिक्षा का सबसे बड़ा रहस्य यह है कि रागों के स्वरों को ठीक और सही ढंग से कहा जाये। जब सच्चा और सही स्वर लगेगा तो सुनने वाले का हृदय उससे प्रवाहित अवश्य होगा। रागों के प्राचीन रूपों को आधुनिक और नये बनाना हमारे संगीत का काम नहीं है। किसी राग के सही और सुन्दर स्वर लगाना हर व्यक्ति के लिए आसान नहीं है। बहुत से लोग, जिन्हें ठीक शिक्षा नहीं मिली है, रागों के सही स्वरों के उच्चारण करने में असमर्थ हैं। जब वह ऐसा नहीं कर पाते तो वह मनमानी करते हैं। कुछ गायक तो अपनी ख्याति के बल पर रागों के सिद्धान्तों से मनमाना खेलते हैं और उन्हें जैसा चाहते हैं वैसा गाते-बजाते हैं। कभी-कभी हम किसी मशहूर गायक के गाने में मेघमल्हार ऐसी राग का रूप अधूरा और अधकच्चा पाते हैं। हम सुनकर निराश होते हैं। मगर एक श्रोता की हैसियत से हम कुछ कह नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाते। मगर इस आधुनिक युग में हमारे अच्छे गायकों का यही कर्तव्य है कि वह राग को शास्त्रीय ढंग से बिल्कुल ठीक और सही गायें। यदि ऐसा न करेंगे तो श्रोताओं को उनसे क्या शिक्षा मिलेगी? उनका उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है इस मामले में। क्या उनको यह मालूम नहीं है कि कुछ श्रोता संगीत सुनकर ही संगीत की थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त करते हैं? इसीलिए हमारे गायकों और वादकों के लिए जरूरी है कि वह अपने राग शास्त्रीय और परम्परागत संगीत के नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार गायें और बजायें। और तभी हमारा प्राचीन संगीत सुरक्षित रह सकेगा। संगीत की शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों का भी कर्तव्य यह है कि वह रागों का सही अध्ययन करें। और जहां कहीं सिद्धान्तों का परित्याग किया जाता है वह उन त्रुटियों और ग़लतियों को समझें और उन्हें अस्वीकार करने की क्षमता रखें।

क्या हमारे शास्त्रों में दिये गये राग और रागिनी काफी नहीं हैं जो हम आज नये रागों के आविष्कार करने की उधेड़बुन में लगे हुए हैं? क्या हमने अपने सारे मल्हारों को खंघाल डाला है जो हम नये मल्हार गढ़ने में लगे हुए हैं? यदि हम 'गाँधी मल्हार' की कल्पना कर सकते हैं तो हमें कौन रोक सकता है कि हम 'नेहरू कान्हरा' और 'पटेल झिझौटी' की रचना न करें। कुछ वर्ष हुए एक महाशय ने अपने नाम की एक नई राग ललित गढ़ी थी जिसे वह बड़े गर्व से संगीत सम्मेलनों में बड़े अजीब उत्साह से गाया करते थे। यदि उनसे पूँछा जाता कि असली राग ललित ने क्या बिगाड़ा है तो उनके पास क्या उत्तर होता? इसी प्रकार कुछ संगीतज्ञ बहुत सी नई-नई मनगढ़न्त अप्रचलित रागों की ईजाद करने में ही लगे रहते हैं। इनसे यदि पूछा जाये कि वह किस कमी को पूरा कर रहे हैं तो उनके पास भी कोई जवाब नहीं है। इस प्रकार के सब जोशीले प्रयत्न प्राचीन संगीत के विरोध में प्रतिक्रिया और विद्रोह की प्रवृत्तियाँ ही मानी जायेंगी। ऐसा सब करने से हमारे संगीत में क्रान्ति नहीं आ सकती। हमारे प्राचीन संगीत के पुनरुत्थान और उसकी जागृति ही में हमारे संगीत की क्रान्ति है। नई-नई रागों और नई-नई स्वतन्त्र शैलियों के आविष्कार करने से हमारे संगीत में बड़ा परिवर्तन, बड़ी उथल-पुथल और कोई विशेष क्रान्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार के नये प्रयोगवाद के स्वतन्त्र प्रयत्नों का एक ही अभिप्राय हो सकता है और वह है संगीत की प्राचीन परम्परा का उन्मूलन।

आधुनिक संगीत की ऐसी ही असाधारण परिस्थिति में हम आज देख रहे हैं। फलस्वरूप असली गायकी और असली बाजे दोनों का धीरे-धीरे लोप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो रहा है। संगीतज्ञ आज अपनी-अपनी गायकी और अपना-अपना बाज ईजाद कर रहे हैं। इनमें से कुछ तो बेढंगे, विद्रोही और बिना सिर पैर वाले गायकी और बाज हैं। और कुछ पचमेल और बदरंगे हैं जिनमें कई तरह की मिलावट है और जिन्हें हम थिगड़ों से बनी हुई रजाई ही कह सकते हैं। उदाहरण के लिए, इस प्रकार की गायकी में किसी और गायकी का सिर और धड़ होगा और किसी और का पैर। ऐसी गायकी को हम असली और नकली गायकी भी नहीं कह सकते। ऐसी नई-नई गायकियों और बाजों के तरह-तरह के मनमाने आविष्कारों को हम संगीत की परम्परा के विरुद्ध मानते हैं। जो ऐसी ईजादें करते हैं वह उन लोगों में हैं जिन्हें किसी योग्य और कुशल गायक या वादक से ठीक शिक्षा नहीं मिली है। जिस किसी गायक या वादक को शिक्षा या तालीम पहुँच जाती है तो उसकी गायकी या उसका बाज दोनों ठोस और टकसाली माने जाते हैं। उनमें रेशम या मखमल के थिगड़े नहीं होते। वह एक ही सूत में बिने होते हैं। परन्तु सच पूछा जाये तो बहुतों को यह दोनों चीजें नसीब नहीं होतीं।

आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की संगीत शिक्षा में इसी बात की सबसे बड़ी कमी है। संगीत की व्याकरण जानना और रागों का सही गाना या बजाना ही काफी नहीं है। गायक के गाने की शैली अथवा उसकी गायकी और वादक के बजाने की शैली अथवा उसका बाज दोनों अनिवार्य हैं। क्रियाशील प्रतिदिन के संगीत में गायकी और बाज एक छाप और सनद के समान हैं। जैसे सिक्का वही माना जाता है जिस पर सरकारी मुहर या छाप होती है, वैसे ही गायक के गायन की छाप या सनद या प्रमाण उसकी गायकी में मिलते हैं, और वादक की उसके बाज में। इसी से पता चलता है कि किसी संगीतज्ञ को ठीक परम्परागत शिक्षा मिली है कि नहीं। जिसके पास गायकी या बाज होता है उसके पास एक सनद होती है और गुणीजन में उसका मान और आदर होता है। गायकी या बाज से पता चलता है कि अमुक गायक या वादक ने किस गुरु से सीखा है। प्रत्येक अच्छे संगीतज्ञ में चाहे वह छोटा है या बड़ा अपने गुरु की गायकी या उसके बाज की छवि दिखाई देती है। वह न भी बताये परन्तु हम जान लेंगे कि उसने किस विद्वान् गुरु से सीखा है। यह सुगन्ध छिपाये नहीं छिपती।

एक और बात। आजकल हम चारों तरफ एक ही नारा सुनते हैं और वह है "संगीत की मार्के की उन्नति, उसकी जागृति, उसका क्रान्तिकारी प्रचार।" यह सब सुनकर हमको ऐसा लगता है कि हमारा संगीत अब तक सोया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ था मगर अब जाग उठा है। यथार्थ क्या है? एक बात जो हमको मानना पड़ेगी वह यह है कि आधुनिक युग में हिन्दुस्तानी संगीत का जैसा व्यापक और महान् प्रचार हुआ है वह पचास-साठ वर्ष पहले कभी नहीं हुआ। नये-नये साधनों से यह प्रचार किया गया और उसकी गति अभी तक रुकी नहीं है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या इस प्रचार से प्राचीन, परम्परागत संगीत का उद्धार हुआ और क्या उसको एक नया जीवन मिला? इस प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर ही हम समझ सकते हैं कि आज हिन्दुस्तानी संगीत की क्या दशा है। हम थोड़े से शब्दों में यह कहना चाहते हैं कि पिछले पचास-साठ वर्षों में संगीत का बहुत ज़बरदस्त प्रचार आम जनता में हुआ, ख़ास तौर से पढ़े-लिखे लोगों के बीच में। सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति हुई। उसकी शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई। और हज़ारों की गिनती में लोग राग-रागिनियां सीखने लगे। विशेष कर मध्यश्रेणी के लोग बड़ी तादाद में इसको सीखने लगे। आम जनता में इसका शौक़ बड़े ज़ोर-शोर से फैल गया। जो विद्या पहले पेशेवर उस्तादों और गुरुओं के पास थी उसकी जानकारी अब आम जनता को होने लगी। इस बड़े प्रचार से लोगों को संगीत का सामान्य ज्ञान भी हो गया। संगीत को सरलता से सीखने की सुविधा लोगों को एक विदेशी खोज ही से मिली जिसका नाम हारमोनियम ही है। इसलिए हारमोनियम का घृणात्मक तिरस्कार करना बिल्कुल अनुचित है।

परन्तु यह हमको याद रखना चाहिए कि परम्परागत, शास्त्रीय संगीत की शिक्षा आम जनता को नहीं दी जा सकती। उसको कुछ ही लोग किसी विशेष गुरु से ही सीख पाते हैं। ऐसे गुरु के दो-चार शिष्य ही होते हैं जो संगीत की गायकों और वादकों वाली कला को सीखते हैं और उसका अभ्यास करके स्वयं गायक अथवा वादक बनना चाहते हैं। इस संगीत के विशेषज्ञ या उस्ताद या गुरु की शिक्षा संगीत के आम प्रचार से बिल्कुल अलग है। इसे कुछ ही लोग प्राप्त करते हैं। और इसी शिक्षा के माध्यम से परम्परागत संगीत की उच्च शैली प्राप्त होती है। यह संगीत घरानेदार गायकों और वादकों से मिलता है जिनके बारे में हम बाद में संक्षेप रूप से कुछ कहेंगे।

वर्तमान काल में जब हम इस संगीत की आधुनिक परिस्थिति पर ध्यान देते हैं तो हमें कुछ और बातों का भी पता चलता है। पहली बात तो यह है कि पहले की सी संगीत की साधना अब नहीं है। और न अब लोग संगीत का आनन्द उस प्रेम और तन्मयता से उठाते हैं जैसे पहले हुआ करता था। हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक उदाहरण देकर इस बात को समझाने का प्रयत्न करेंगे। पेशवा खानदान के महाराष्ट्र के एक रईस गुण ग्राहक थे जो उत्तर प्रदेश के एक नगर में आकर बस गये थे, उन्हें सरकार की तरफ से अच्छी-खासी एक पैंशन भी मिलती थी। मगर उनमें रईसों वाला न तो कोई शौक था और न उनको कोई लत या आदत थी जिससे उनकी कोई फिजूलखर्ची हो। उन्हें बस एक शौक़ था और वह था संगीत का शौक़। मगर वह नाटक या फिल्म का संगीत नहीं पसन्द करते थे। और न वह गजल और ठुमरी सुनने का शौक़ रखते थे। वह केवल शास्त्रीय संगीत की सुन्दर राग-रागिनियों ही को सुनते थे। उनके पास में एक उनके अपने खास आदमी बैठा करते थे जिनका नाम बाड़ूजी था। उनका काम लोगों को पान खिलाना था और साथ-साथ यह भी था कि वह रईस जिन्हें लोग राजा साहब के नाम से पुकारते थे जब किसी अच्छे गायक के गाने पर दाद दें अथवा उसकी प्रशंसा में अपना सिर हिलायें तो बाड़ू जी का काम था कि कुछ चाँदी के रुपये निकाल कर उस गायक के सामने रख दें। सिर हिलाने का अर्थ यही था कि गायक को इनाम फौरन दिया जाये। इस कारण अच्छे-अच्छे गायक उनको अपना गायन सुनाने जाते थे। एक बार रामपुर रियासत के एक नामी ख्याल-गायक वहाँ अपना गाना सुनाने गये। रात का समय था और उन राजा साहब की अपनी एकान्त की बैठक में केवल आठ-दस श्रोता ही वहाँ बैठे थे। एक नौकर आता था और लोगों के वस्त्रों पर इत्र लगाकर उन्हें इत्र का एक फोहा भी देता था। इसके बाद बाड़ू जी पान पेश करते थे। रामपुर के उस नामी उस्ताद ने विहाग और छायानर गाने के पश्चात् बड़े ही उस्तादी ढंग से राग दरबारी गाई। लोगों ने उनके गायन की बड़ी प्रशंसा की। राजा साहब ने भी जितनी बार अपना सिर हिलाया गायक को उतनी ही बार बहुत से रुपये भेंट किये गये। जब वह राग दरबारी गा चुके तो उन्होंने राजा साहब की तरफ देखकर कहा—"अब हुजूर को एक ठुमरी और सुना दूं।" राजा साहब ने उनसे कहा "नहीं अब नहीं। दरबारी में जो आनन्द आया है उसे ठुमरी गाकर खत्म मत करो। बस रहने दो।" इसके पाँच-दस मिनट बाद महफिल का अन्त हो गया। कहने का अर्थ है कि पहले लोग बढ़िया संगीत सुनने के बाद घटिया संगीत नहीं सुनते थे। संगीत किसी एकान्त में कुछ थोड़े से खास मित्रों के साथ ही सुना जाता था, भीड़ में नहीं। और संगीत उपयुक्त वातावरण ही में जहाँ खामोशी होती थी, वहाँ सुना जाता था। लोग किसी टाउन हाल में जाकर पाँच सौ आदमी की भीड़ में गाना-बजाना नहीं सुनते थे और शोरगुल से भागते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे गायक और वादक को संगीत की साधना थी उसी प्रकार श्रोता भी अवकाश पाकर अच्छे सत्संग में संगीत सुनते थे। इसके अलावा शास्त्रीय संगीत के सच्चे प्रेमी रागों ही का आनन्द लेते थे और सस्ते, भावुक संगीत सुनने से इंकार करते थे। संगीत की ऐसी उत्तम रुचि और उसकी लगन अब देखने को नहीं मिलती। संगीत का स्वाद ही कुछ और हुआ करता था। और लोग अच्छा और मधुर संगीत ही सुनने का पूरा प्रयत्न करते थे। ऐसे लोगों के लिए संगीत में एक खास ज़ायका होता था। वह दूसरा संगीत सुनते ही नहीं थे।

आजकल ऐसा नहीं है। मध्यम श्रेणी का व्यक्ति, जो शास्त्रीय संगीत का सबसे बड़ा समर्थक है और उसे प्रेम से सुनता है, संगीत के प्रति एक विशेष प्रकार की दूसरी भावना रखता है। जिस तरह वह अच्छा खाना खाकर तृप्त होता है उसी तरह वह संगीत सुनकर खुश होता है। उसको उसके प्राचीन इतिहास और उसके वैभव और उसके कलात्मक चमत्कार से कोई मतलब नहीं। और जीवन की सुविधाओं और सुखों की तरह वह संगीत को भी एक सुख और आनन्द पहुंचाने वाली चीज़ समझता है। वह उसकी अद्भुत कला के सूक्ष्म रहस्यों को नहीं जानना चाहता और न उसके भावात्मक और रसात्मक पक्षों पर कोई ध्यान देता है। उसे इस बात के जानने की इच्छा नहीं होती कि स्वरों का प्रभाव हृदय पर कितना गहरा पड़ता है। उसके लिए संगीत एक बहुत अच्छा मनोरंजन और दिल बहलाव का साधन है। उसका समय संगीत सुनने में अच्छा कटता है और उसको संगीत से बड़ी तफरीह मिलती है। वह उसके अन्य पक्षों पर और उसकी नाना प्रकार की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं देता। वह संगीत सुनता है, उस पर कुछ सोचता नहीं।

एक बात हम और देखते हैं। आधुनिक संगीत के अधिक प्रचार के होते हुए भी उसमें एक और भावना आ गई है जो विशेष रूप से कलाकारों और संगीतज्ञों के मन में बस गई है। यह है उनका जाति-पांत और वर्ण-गोत्र का अपना नया भेद-भाव। कभी-कभी ध्रुपद-गायक अपने को संगीत का ब्राह्मण समझता है। मानो वह संगीत के पांचवें वेद का मालिक और सुरक्षक है। उसके लिए ध्रुपद की शैली ही सबसे उत्तम शैली है। अभी पिछले दिनों में एक ध्रुपद-गायक हुआ करते थे जो ध्रुपद ही को हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत समझते थे। और शैलियां उनके लिए दूसरे और तीसरे दर्जे की शैलियां थीं। उदाहरण के लिए वह ख्याल की शैली का बहुत तिरस्कार करते थे और यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी कहा करते थे कि ख्याल-गायन में राग सही नहीं रहता। उनकी दृष्टि में ध्रुपद के अतिरिक्त और शैलियां एक तरह से अशुद्ध और अछूत शैलियां थीं। एक सुविख्यात ध्रुपद गायक की हैसियत से यह उनकी असह्य कट्टरता थी। दूसरी ओर गायन शैलियों के प्रति उनमें न उदारता थी और न सहन-शक्ति। उनका कहना था कि ध्रुपद की शुद्धता और उसके गाम्भीर्य के मुकाबले में ख्याल में अशुद्धता और चंचलता थी। ध्रुपद की प्रतिष्ठा उसके संतुलन और उसके संयम और शांत स्वभाव के सामने ख्याल में एक जल्दी, एक उथलापन और एक असभ्य और अशिष्ट भावुकता होती है जो उसकी शैली को झूठे आडम्बर में सुशोभित कर देती है। हां, यह जरूर देखा गया था कि वह ख्याल-गायन में ध्रुपद अंग की ख्याल की शैली ही को मानते थे और इस प्रसंग में वह एक ही आद्य ख्याल गायक को ही मानते थे और उसकी प्रशंसा करते थे। उनका यह कहना ठीक था कि ध्रुपद अंग के ख्याल में ही गाम्भीर्य और राग के भावों का गहरा प्रभाव होता है। मगर प्राय: वह ख्याल कि निन्दा ही करते थे। यदि उसे वह वर्ण-विभाजन में ठुमरी की तरह शूद्र नहीं समझते थे तो उसे ब्राह्मण और क्षत्री से नीचा वैश्य ही मानते थे। ठुमरी के बारे में तो उनकी राय थी कि वह वेश्याओं का गाना है। यह भी उनकी कठोर कट्टरता का प्रमाण था। यदि वह भैय्या साहब गनपत राव और मौजुद्दीन में ठुमरी की शैली को सुनते तो वह ऐसा न कहते।

अपने गायन कें पहले मंच पर बैठकर वह संस्कृत के श्लोक पढ़ते थे और फिर आलाप और ध्रुपद गाते थे। थे तो बहुत ही सुरीले और विद्वान् गायक मगर उनकी कट्टरता से और गायकों को ठेस पहुंचती थी। यह उनकी अपनी व्यक्तिगत राय थी जो मंच पर बैठकर ही वह श्रोतागण के सामने बड़े उत्साह से रखते थे। उनका अपना व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि थोड़ी देर तक श्रोता उनके भाषण से काफी प्रभावित होते थे। परन्तु एकान्त में जब कोई संगीत-प्रेमी उनसे मिलता तो उनको बड़ा सहृदय और विशाल हृदय पाता था। उनमें कोमल कल्पना और रंगीन भावुकता दोनों थे। कभी-कभी वह अपने सरल और स्वाभाविक स्वभाव के वश में होकर एक दूसरी सच्ची राय भी पेश करते थे। हम इसको उनका असली, स्वाभाविक रूप ही कहेंगे जब वह अपनी बोझीली सात्विकता को कुछ क्षणों के लिए त्याग करके किसी की ठुमरी के सुरीले बोलों की भी दिल से तारीफ करते थे और बेचैन हो जाते थे। थे तो वह आखिर भावुक इंसान और कलाकार। सैद्धान्तिक बात और होती है भावुक हृदय की बात कुछ और। ऐसा कहकर हम उनके साथ पूरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्याय करना चाहते हैं कि सिद्धान्त की बात कुछ और है अपने दिल की बात कुछ और। एकांत में वह भावुक दादरा-गायन को भी दाद देते थे।

मगर यह सच है कि अक्सर ध्रुपद-गायक-गायकों में अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और ख्याल-गायकों और ठुमरी-गायकों को अपने से बहुत नीचा समझते हैं। यह वर्ग, श्रेणी और जाति की भावना अभी भी हमारे बहुत से संगीतज्ञों में है। संगीतज्ञों के संसार में साम्यवाद अथवा समाजवाद का आना असंभव मालूम देता है। हम इस बात में ध्रुपद-गायकों को ही दोषी नहीं ठहराते। बहुत से ख्याल-गायक भी ऐसे हैं जो ध्रुपद-गायक को रूखा और नीरस समझते हैं और उसकी गणना जीवित संगीत में नहीं करते। वह ध्रुपद को वही स्थान देते हैं जो लोग प्राचीन और मृतक भाषाओं में लैटिन, अरबी और संस्कृत को प्रायः देते हैं। पर यह उनकी भूल है। उनका दोष यह अवश्य है कि ख्याल की शैली के आगे वह किसी और शैली को कुछ नहीं समझते। अक्सर बहुत से ख्याल-गायक ठुमरी गाने वालों को निम्न श्रेणी का गायक समझते हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे भी हैं जो किसी ठुमरी-गायक को "ठुमरी बाज" कहकर ही पुकारते हैं। हम इसे उनकी सहनशीलता की कमी कहेंगे। यह कहना ही पड़ेगा कि जहां तक ठुमरी की उच्च सुरीली शैली का सवाल है। उस पर हर ख्याल-गायक आसानी से अधिकार नहीं पा सकता। ठुमरी के बोल वही बना सकता है जिसमें कल्पना और भावुकता दोनों हों। यह एक आसान बात नहीं है। जहां तक अपने को ऊंचा समझने की बात है यह हमारे संगीत के लिए हानिकारक है। यदि ख्याल पर ठुमरी का गायक गजल गाने वाले को अपने से बहुत नीचा समझे तो वह भी ठीक नहीं है। भावुक और प्रतिभाशील गायक पहले जमाने में रागों में गजल गाते थे और इस कलात्मक रूप से गाते थे कि उसकी नक़ल करना इस जमाने में असंभव मालूम पड़ता है। इसी प्रकार टप्पा, तराना और दादरे ऐसी शैलियों का भी यही हाल है। अपनी-अपनी जगह वह भी मंझी हुई कलायुक्त शैलियां हैं। गायक ही किसी शैली को ऊंचा या नीचा बनाता है। वह उसके प्रतिभाशील संगीत-कला का केवल माध्यम है।

इसके साथ-साथ हमें एक बात और ध्यान में रखना चाहिए। वह यह है कि ध्रुपद और ख्याल के अलग-अलग घराने हैं जिनमें से कुछ अपने को दूसरों से ऊंचा और श्रेष्ठ मानते हैं। यह बात वादकों पर भी लागू है जिनमें विशेषकर बीनकार, रबालिये, सरोदिये और सितारिये हैं। हम यहां ध्रुपद और ख्याल ही की बात लेते हैं। ध्रुपदी गायकों में आधुनिक युग में बहराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खां के घराने को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है और इस पर अधिक मतभेद नहीं है। इस घराने के वंशज ज़ाकिरुद्दीन, अलाबंदे खां के अलावा पिछले चालीस पचास वर्षों में ज़ियाउद्दीन खां, नसीरुद्दीन खां, रहीमुद्दीन खां, तानसेन पाण्डे और डागुर बंधु का भी काफी नाम हुआ है।। इस बात में भी कोई मतभेद नहीं है।

रही ख्याल गायकों की बात, ग्वालियर की गायन शैली और शैलियों में सबसे सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। देहली घराना, आगरा घराना, रामपुर घराना, सहसवास घराना, खुर्जा घराना, तिलकण्डी घराना, बनारस घराना, अतरौली घराना इत्यादि और भी कई घराने हुए हैं जिनमें भी काफी मतभेद रहा है और इनमें से कुछ अपने को अव्वल समझते रहे हैं। अभी पिछले कुछ सालों से किराना घराना और उसकी गायकी को भी काफी ख्याति मिली है। हम आगे चलकर इन घरानों पर टिप्पणी करेंगे।

यहां पर बात जो कहना है और जिस पर हमें गौर देने की आवश्यकता है वह यह है कि आधुनिक संगीत का सही, परम्परागत प्रचार, उद्धार और उसकी सही उन्नति जभी हो सकती है जब भेद-भाव को दूर या कम करके हमारे संगीतज्ञों में सहयोग और एकता की भावना अधिक हो। जब तक यह नहीं होगा हमारे संगीत की विविधता से हमको ठीक लाभ न पहुंचेगा। परंतु इसके साथ-साथ यह कहना भी आवश्यक है कि हमारे हिन्दुस्तानी संगीत का सबसे बड़ा गुण और उसकी सर्वव्यापक महानता इसी में है कि उसकी तरह-तरह की गायन और वादन शैलियां उसकी अथाह कला की अमर प्रतिभा का प्रमाण हैं। घरानेदार गायकी और बाज हमारे संगीत के प्रतिबिम्ब ही नहीं हैं, उसकी अमूल्य देन भी हैं। वह हमारी सुरक्षित अचल सम्पत्ति है जिसके खोजने से हमारे संगीत को बहुत हानि पहुंचेगी और उसकी सांस्कृतिक आत्मा को बहुत धक्का पहुंचेगा। आधुनिक संगीत के विद्वानों, प्रचारकों और शिक्षकों को उसकी पूरी सुरक्षा करना चाहिये। इन विभिन्न प्रकार की शैलियों से हमारे हिन्दुस्तानी संगीत की निराली विविधता का पता चलता है। वह एक दूसरे से भिन्न अवश्य हैं परन्तु उनमें हमारे संगीत की मौलिक एकता का भाव भी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय दो

हिन्दुस्तानी संगीत की ध्रुपद की परंपरा और तानसेन

प्राचीन भारतीय संगीत अलौकिक और दिव्य माना गया है और उसकी आत्मा का संपर्क ऋषियों और मुनियों से रहा है। धर्म, अध्यात्म और साधना के वातावरण ही में उसका जन्म हुआ और मन्दिरों और आश्रमों में उसका पालन-पोषण हुआ। वैदिक संगीत और गंधर्वों का संगीत दोनों एक से ही वातावरण में रहे। मार्ग संगीत ने भी ऐसे ही धार्मिक वातावरण में उन्नति की। मन्दिर और राजाओं के महल और दरबार संगीत के मुख्य केन्द्र बने। राजा-महाराजा संगीत की परम्परा की रक्षा करने के लिए संगीतज्ञों के निर्वाह के लिए उपयुक्त साधन उपस्थित करते थे और उन्हें वेतन, धन और जमीन भी देते थे। यह वह संगीतज्ञ थे जिनका अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध मन्दिरों से होता था। मन्दिरों और राजमहलों के वातावरण में ही संगीत, नृत्य और नाटक के अभिनय का आयोजन जनता के लिए किया जाता था। राजे-महाराजे संगीत के पोषक और संरक्षक होते थे और वह संगीतज्ञों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के कुटुम्ब-परिवार, सन्तान और वंशज का पालन-पोषण करते थे।

हिन्दू राजाओं की इस प्रथा का पालन पठान और सुल्तान शासकों ने भी किया। उनके यहां भी भारतीय और ईरानी संगीतज्ञ रहते थे। अलाउद्दीन खिलजी का दरबार संगीत के लिए बहुत मशहूर था। इसी दरबार में गोपाल नायक ऐसे धुरन्धर गायक अपना ध्रुपद सुनाते थे और अमीर खुसरू भी अपना कव्वाली शैली का संगीत प्रसारित करते थे। संगीत का यह प्रदर्शन उच्च श्रेणी के प्रसिद्ध, प्रतिष्ठाविभूषित श्रोताओं के सामने होता था जिनमें प्रतिभाशील राजदरबार के बड़े-बड़े व्यक्ति भी होते थे जिन्हें संगीत की रुचि और उसका अच्छा ज्ञान होता था। उत्तरी भारत का सबसे पहला संगीत सम्मेलन जौनपुर के सुल्तान हुसेन शर्की ने ही आयोजित किया था। इस शानदार संगीत-सम्मेलन में उसने बहुत से प्रसिद्ध और विद्वान् ध्रुपद गायकों, कव्वालों और संगीत विचारकों को निमन्त्रित किया था जिन्होंने उसकी बनाई रागें जौनपुरी टोड़ी और हुसेनी कान्हरा को माना था और अपनी स्वीकृति दी थी।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत की एक संस्था स्थापित की थी जिसमें संगीत के चार महान् नायक थे जिनका काम संगीत सुनाना था और गुणी जन के सामने संगीत चर्चा की उच्च गोष्ठी का आयोजन करना था जिनमें संगीत के प्रश्नों और उसकी समस्याओं पर वाद-विवाद और विचार विनिमय होता था।

संगीत का सुनहरा युग अकबर के राज्य-काल में आता है जब सम्राट् अकबर तानसेन को राजाराम बघेला के राज दरबार से अपने दरबार में निमंत्रित करता है। इसके बाद ही 'नवरत्न' स्थापित किया जाता है। अकबर मुगल वंश का जरूर था मगर अपने विचारों में वह कुशल हृदय का और उसमें किसी प्रकार की धार्मिक संकीर्णता का भाव नहीं था। उसने भारतीय संगीत की ध्रुपद शैली को फिर से जाग्रत किया और नये सिरे से उसको प्रोत्साहन दिया। दीवानेखास में बड़े-बड़े विद्वानों, दरबारियों और गुणीजन के सामने तानसेन और अन्य गायकों का ध्रुपद-गान होता था। परन्तु आम जनता के लिए भी दीवाने आम में इसी प्रकार के संगीत का आयोजन किया जाता था। बाद में मुगल दरबार की इस प्रथा को मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों में देहली के बादशाह मुहम्मद शाह ने भी जारी रखा।

और बाद में और राज दरबारों में भी मुगल दरबार की इस प्रथा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी न किसी रूप में पालन किया गया । जयपुर, लखनऊ, बनारस, बेतिया, विशनपुर, ग्वालियर, रामपुर, बड़ौदा और बहुत सी और बड़ी और छोटी रियासतों में दरबार के संगीत की प्रथा कायम रही ।

ध्रुपद की चार बानियों की परम्परा

हिन्दुस्तानी ध्रुपद पद्धति में हम प्राचीन ध्रुपद की चार अलग-अलग बानियों का वर्णन करते हैं । पहले ग्राम राग पांच भिन्न शैलियों में गाये जाते थे । 'संगीत-रत्नाकर' ऐसे संगीत के शास्त्र में पंच गीत' की चर्चा की गई है । स्वरों का अलग-अलग प्रयोग इनमें बताया गया है । इन पांचों के नाम हैं शुद्ध गीत, भिन्न गीत, गौड़ी गीत, वेसरा गीत और साधारणो गीत । पांचवें प्रकार-साधारणी गीत में कोई खास विशेषता नहीं है । इसमें पहले चार की विशेषताओं का मिश्रण पाया जाता है ।

जहाँ तक बानियों का सम्बन्ध है वे निम्नलिखित चार हैं :—

(1) (गौड़हार) गौड़हार बानी

यह शास्त्रीय शुद्ध गीत से मिलती-जुलती है । मियां तानसेन की ध्रुपद पद्धति के हिसाब से इस बानी को बहुत सुरीले ढंग से और सच्चे स्वरों में गाया जाता है और इसमें मींड़ का प्रयोग अधिक होता है । तानसेन इसी बानी को गाता था और उसका पारंगत था । परन्तु उसकी और भी बानियों पर पूर्ण अधिकार था । इसके सबसे छोटे सुपुत्र बिलास खां ही इस बानी के अद्वितीय विशेषज्ञ माने गये हैं ।

(2) डागुर बानी

यह बनी भिन्न गीत से मिलती-जुलती है । इसमें मींड़ एक विशेष ढंग से लगाई जाती है और गमक का भी बहुत मधुर और कलात्मक प्रयोग किया जाता है । इस बानी से ध्रुपद की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की जाती है । हरिदास स्वामी जो वृन्दावन के थे इसी बानी का प्रयोग करते थे और उनके शिष्य भी उसी का पालन करते थे । तानसेन की सुपुत्री सरस्वती देवी भी, जिनका विवाह वीणावादक मिस्री सिंह से हुआ था, इस बानी को व्यवहार में लाती थीं ।

(3) खंडार बानी

य ह बानी वेसरा गीत से मिलती-जुलती है और इसमें तेज गति वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गमक का प्रयोग अधिक होता है। बाजबहादुर अपने गायन में और मिस्री सिंह इसको अपने गायन और अपनी वीणा में प्रयोग में लाते थे। बाद में मिस्री सिंह के वंशज डागुर वानी और खंडार वानी दोनों को काम में लाने लगे।

(4) नौहार वानी

यह गौड़ी गीत से बहुत कुछ मिलती-जुलती है इसमें छूट अलंकार का प्रयोग किया जाता है जिसके स्वर गमक के साथ एक विशेष ढंग से लिये जाते हैं। सुना जाता है कि श्रीचंद, जो हरिदास स्वामी के शिष्य थे, इस वानी को बहुत सुन्दर गाते थे और उसके विशेषज्ञ भी थे।

तानसेन के एक प्रसिद्ध ध्रुपद में इन चारों वानियों का वर्णन है और उनके गुण भी उसमें बताये गये हैं। इस विशेष रचना में तानसेन बताता है कि गौड़हार सब वानियों में राजा के तुल्य है। खंडार को सेनापति बताया जाता है। इसी प्रकार डागुर वानी को मंत्री बताया गया है और नौहार को निम्न श्रेणी का पदाधिकारी अथवा अफसर बताया गया है।

इन वानियों में शब्दों का विशेष स्थान और मूल्य था। यह शब्द इसलिए उपयुक्त थे क्योंकि राग के रस के हिसाब से और ध्रुपद की शैली के अनुसार वह अनुकूल और उचित माने जाते थे। इस प्रकार भाषा, भाव, राग और शैली का पूर्ण संयोग और सहयोग होता था। गौड़हार वानी के ध्रुपदों के लिए उन रागों को चुना जाता था जिनमें शांत रस होता था। डागुर वानी की रचनाओं के लिए वह राग चुने जाते थे जिनमें मधुर रस और करुण रस होता था। खंडार वानी में वीर रस होता था और नौहार वानी के प्रबन्धों में अद्भुत रस होता था। इसलिए उन्हीं रागों को चुना जाता था जिनमें यह अलग-अलग रस होते थे।

परन्तु तानसेन और अकबर के युग के पश्चात् यह विचार नहीं रखा गया। मुगल साम्राज्य के अंत होने पर बहुत से नये ध्रुपद के घराने पैदा हो गये जो इन चार वानियों का अलग-अलग पालन करते थे। परन्तु पुराने नियमों और सिद्धान्तों के पालन करने में बहुत कुछ कमी आ गई। जैसे ध्रुपद का कोई एक विशेष घराना जो एक ही वानी का विशेषज्ञ माना जाता है, अपने संगीत के लिए दूसरी वानियां भी प्रयोग में लाने लगा। कुछ घराने एक से अधिक वानियों को अपने संगीत में इस्तेमाल करने लगे। इस प्रकार परंपरागत नियमों का पहला सा मूल्य जाता रहा। परिवर्तन की ऐसी प्रवृत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वाभाविक थी जब ध्रुपद के नये-नये घरानों की गिनती बढ़ती गई।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में तानसेन के वंशज और उनके शिष्य तीन विशेष घरानों में विभाजित हो गये। जयपुर के सेनिये घरानों ने डागुर बानी के ध्रुपद में विशेषता प्राप्त की। लखनऊ, बनारस और रामपुर में सेनिया घराने की दो शाखाएं हो गईं। विलास खां की परंपरा में जाफर खां, प्यार खां, बासत खां न ध्रुपद की गौड़हार बानी ही का पालन किया। परन्तु वह डागुर बानी को भी प्रयोग में लाये। मिस्री सिंह के वंश वाले सेनिये संगीतज्ञ दोनों डागुर और खंडार बानियों को इस्तेमाल में लाने लगे। और ध्रुपद के घराने जो या तो सेनियों के शिष्य थे और या हरिदास स्वामी की शिष्य परंपरा के अनुयायी थे जैसे बेतिया के धुरपतिये, यह सब ख़ंडार बानी के मानने वाले थे। इसी प्रकार विशनपुर के धुरपदियों ने गौड़हार बानी का पालन किया। इसी तरह मथुरा नाम के मशहूर ध्रुपद गायक ने डागुर बानी ही में विशेषता प्राप्त की थी। एक दूसरे मशहूर गायक उस्ताद बैराम खां ने जो राजस्थान के थे, डागुर बानी ही का प्रचार किया। यह घराना अपने को विद्या और शिक्षा के मामले में हरिदास स्वामी से भी जोड़ता है और इसलिए डागुर घराना कहलाता है। इस घराने के गायकों ने डागुर और ख़ंडार इन दोनों बानियों को गाया। मगर कभी-कभी वह नौहार बानी का भी आनन्द लेते थे।

तानसेन की परंपरा

उत्तरी भारत में अकबर के जमाने में ध्रुपद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा। उसको हम ध्रुपद का सुनहरा युग भी कह सकते हैं। वृन्दावन के संत हरिदास स्वामी का परम शिष्य तानसेन ही इस युग का सबसे प्रसिद्ध ध्रुपद गायक हुआ। उसी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के सहारे इस युग में ध्रुपद-संगीत की जागृति हुई और हिन्दुस्तानी संगीत की रगों में एक नया खून दौड़ने लगा। भारतीय संगीत के संश्लेषण में यूनानी संगीत और अरब संगीत भी घुलमिल गये थे और तानसेन इस संगीत का अगुआ, नेता और मार्गदर्शक था। इस संगीत के निर्माण में तानसेन का बहुत बड़ा हाथ था। हमारी भारतीय सस्कृति के अमर सिद्धान्त "भिन्नता में एकता का भाव" का प्रतीक हमारा संगीत ही बना। यह यथार्थ में एक आध्यात्मिक तत्व था जो हमारे सांस्कृतिक जीवन का मौलिक सिद्धान्त बन गया था। भारतवर्ष के समूचे इतिहास में यह भावना झलकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानसेन की संगीत की परंपरा को प्राचीन ऋषियों और मुनियों के संगीत से बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। परन्तु तानसेन के घराने का संगीत अरब संगीत और ईरानी संगीत से भी काफी प्रभावित हुआ। कुछ संगीत विचारक और संगीतज्ञ इन विदेशी प्रभावों को भारतीय संगीत में कोई भी स्थान नहीं देते और न उनको मानते हैं। परन्तु सच तो यह है कि इन बाहर के संगीत के प्रभावों से हमारे संगीत की आत्मा को कोई क्षति नहीं पहुंची और न उसकी मौलिकता में कोई विशेष फर्क आया। उनके अच्छे गुणों को हमारे संगीत ने स्वीकार किया और उन्हें उदारता से अपनाया भी क्योंकि सांस्कृतिक क्षेत्र में उनसे हमें लाभ ही पहुंचा, नुकसान नहीं पहुंचा। प्रत्येक महान् और परिवर्तनशील संगीत में वह गुण होता है। यदि किसी तरह हमारा संगीत उनसे उत्साहित और सुशोभित हुआ तो इसमें हमारी जीत है, हार नहीं। भारतीय संगीत की विश्वव्यापकता की भावना को हमें सदैव याद रखना चाहिए। उसमें हमारी महानता है, पराजय नहीं।

तानसेन के विचार सैद्धान्तिक रूप से बहुत कुछ संगीत रत्नाकर के मूल सिद्धांतों पर अवलम्बित हैं। इस विचारधारा के अनुसार ब्रह्मा ने ही सामवेद के संगीत में मार्ग संगीत का निर्माण किया जिसे नाद विद्या भी कहते थे। महादेव ही इस विद्या के पहले शिक्षक थे और उन्हीं से इस अलौकिक विद्या को पार्वती और सरस्वती ने भी सीखा। इसके बाद हम गणेश, नारद और हनुमान का नाम भी पाते हैं। इन्हीं नारद और हनुमान से गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओं ने इस विद्या को सीखा। तानसेन के संगीत के सिद्धान्तों, और उनके विचारों में हम पौराणिक युग के रावण, वाल्मीकि, लव, कुश, हनुमान, अर्जुन, इत्यादि के नामों का भी संकेत पाते हैं। इसी प्रसंग में हम भरत, मतंग, शारंग देव और कलिनाथ का नाम भी पाते हैं।

तानसेन के संगीत सिद्धान्तों का आधार शिवमत और हनुमान मत दोनों हैं जिनमें छः मौलिक रागों—भैरव, मालकोश, हिंडोल, श्री, मेघ और दीपक का वर्णन है और साथ-साथ उनकी रागिनियों और राग-पुत्रों का भी। संस्कृति के "संगीत दर्पण" ऐसे शास्त्रों में राग और रागिनियों का सिद्धान्त अधिकतर कल्पित और काल्पनिक आधार पर था यह तो हम जानते ही हैं कि अकबर तानसेन को भरत के बाद भारतवर्ष का सबसे सर्वश्रेष्ठ गायक मानता था। अबुल फजल ने इस बात को लिखा भी है। तानसेन की शिष्य-परंपरा ने भी इस बात पर ज़ोर दिया है कि तानसेन के संगीत के सिद्धान्त और विचार प्राचीन संगीत की विचारधारा पर ही निर्भर हैं। तानसेन अवध के बाबा राम-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दास और वृन्दावन के स्वामी हरिदास दोनों का शिष्य था जो शिव को संगीत का जन्मदाता और हनुमान को उसकी रागों और रागिनियों का कुशल प्रचारक मानते थे। प्राचीन संगीत के सिद्धान्तों के अलावा तानसेन मध्य पूर्वीय देशों के संगीत के सिद्धान्तों से भी भलीभांति परिचित था और उनसे प्रभावित भी हुआ था।

रही बाहर के विदेशों के संगीत की बात। हमें यह जानना चाहिए कि अरब और ईरान के संगीत की उत्पत्ति का सम्बन्ध यूनान के संगीत से है। परन्तु यह भी हमको ज्ञात है कि यूनानी लोग दर्शन, संगीत, विज्ञान और भिन्न कलाओं के क्षेत्र में मिस्र और भारतवर्ष ऐसे दोनों देशों के ऋणी थे। मगर तानसेन ग्वालियर के मशहूर पीर मुहम्मद गौस के संपर्क से ही अरब और ईरानी संगीत की परम्पराओं से प्रभावित हुआ था। मुहम्मद गौस तानसेन के धार्मिक गुरु और मार्गदर्शक थे और उन्होंने ही सूफ़ी मत में उसका प्रथम दीक्षा संस्कार किया था। तानसेन स्वयं एक बनारस के गौड़िया ब्राह्मण के सुपुत्र थे और हरिदास स्वामी ने उन्हें ब्रह्मविद्या और नाद विद्या की तरफ प्रेरित किया था और उन्हें संगीत की शिक्षा भी दी थी। और ग्वालियर के पीर ने उन्हें सूफी मत के तत्वों से प्रोत्साहित किया था। उसका विवाह एक मुसलमान स्त्री से अवश्य हुआ था। परन्तु वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का तानसेन ने परित्याग नहीं किया था। उसकी आत्मा भारतीय थी और उसकी विचार-धारा में, वैदिक धर्म के तत्वों, भक्ति के भावों और फारस के सूफी मत की आत्मिक तन्मयता तीनों का संश्लेषण था। उसके संगीत के प्रबन्धों और रचनाओं में हिन्दू धर्म के देवता और अवतार भी थे और हज़रत मुहम्मद के प्रति श्रद्धा का भाव भी था। इसलिए कि तानसेन विदेशी संगीत परम्पराओं से प्रभावित हुए थे, यह उचित है कि हम इस बात पर बहुत संक्षेप में कुछ थोड़ा-बहुत विचार करें।

अरब और ईरान के संगीत के विद्वानों ने संगीत के विचारकों में सबसे पहला नाम पाइथागोरस का बताया है। ईसा के पांच सौ वर्ष पहले पाइथागोरस ने "मौसूकी" नाम की एक किताब यूनानी भाषा में लिखी। यूनानी भाषा में "मौ" का अर्थ हवा है और "सीकं" का अर्थ है "हवा में गिरह बांधना।" फ़ारस और अरब के लोग भी संगीत को 'मौसीकी' के नाम से पुकारते थे। यह कहा जाता है कि पाइथागोरस ने जो एक मशहूर यूनानी दार्शनिक था, भारतीय सांख्य दर्शन के अलावा भारतीय संगीत का भी अध्ययन किया था और उसके मौलिक सिद्धान्तों से वह भली भांति परिचित था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमें तानसेन घराने के परंपरागत विचारों का अध्ययन करते समय यह पता चलता है कि यूनानी सभ्यता के युग में एक और संगीतज्ञ और संगीत का विद्वान् था जिसका नाम था अरसा-ना-तालिम और जिसके तीन अरब के शिष्य थे जो संगीतज्ञ और चिकित्सक के हकीम दोनों थे। उनके नाम थे (1) हकीम सुकरात (2) हकीम बुखरात, और (3) हकीम जलीनस।

फारस के बादशाह माउन रशीद के शासन काल में एक मुतिरबिन कुंडी नाम का संगीत शास्त्री था जो ऊपर दिये हुए तीनों हकीमों की संगीत परंपरा का अनुयायी था और जिसने अरबी भाषा में पाइथागोरस के ग्रंथ का अनुवाद किया था। और अबू अली सीना ऐसे सुविख्यात विद्वान् और महापुरुष ने इन दिये हुए सिद्धान्तों को व्यावहारिक और प्रायोगिक रूप दिया था।

बग़दाद के ख़लीफा हारुनल रशीद के काल में संगीत पर जो प्रतिबन्ध लगाया था वह तोड़ दिया गया था और इस कारण उच्च कोटि के संगीतज्ञों का संगीत के संसार में प्रवेश हुआ जिनमें से कुछ के नाम थे (1) सईब (2) अशीप (3) तमीब (4) नसीर (5) इब्राहीम बिन मुसली और (6) यजहाक बिन इब्राहीम।

ग्वालियर के पीर मुहम्मद गौस, जिन्होंने तानसेन को सूफी धर्म की दीक्षा दी थी, अरबी संगीत की इस विचारधारा से भलीभांति परिचित थे। इसीलिए इस परम्परा के संगीत के प्रभाव का थोड़ा-बहुत अंश तानसेन के संगीत में भी मिलता है।

परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि हज़रत मुहम्मद गौस पहले व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने ईरानी और अरबी संगीत की व्याख्या की थी! तुर्की संगीत का प्रभाव शाक और हून जातियों के साथ उत्तरी भारत में हिन्दू युग में आ चुका था। तुर्किस्तान का संगीत ईरान के संगीत से बहुत कुछ मिलता-जुलता था। बाद में पठान बादशाहों के राज्य-काल में सुविख्यात कवि और संगीतज्ञ अमीर खुसरू ईरान के संगीत को देहली के दरबार में पहले पहल लाया। उसने फारसी शैल में बहुत से गेय प्रबन्धों की रचना की जो "कव्वाली" के नाम से पुकारे जाते थे। फ़ारस के ईरानी संगीत की पद्धति के आधार थे बारह मुकाम (प्रधान रागों), चौबीस सूमा (रागिनी) और अड़तालि गुस्सा (उपसर्ग)। अमीर खुसरू ने भी कई नयी रागों की रचना की जिनमें भारतीय और ईरानी संगीत स्वरों का सम्मिश्रण है।

अमीर खुसरू के समकालीन एक और महान् और धुरन्धर गायक हुए जिनका नाम बैजु बावरा था और जिन्होंने एक विशेष ध्रुपद की शैली का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आविष्कार किया जिसका मुख्य आधार था प्राचीन काल के संस्कृत के प्रबन्ध और ध्रुव गीति की शैलियां। यह अवश्य था कि बैजू बावरा ने राग-रागिनियों के सिद्धांतों की व्याख्या भी की। परन्तु जिस ध्रुपद-पद्धति का उसने प्रचार किया उसको पठान शासकों के राज दरबारों में कव्वाली संगीत के आगे अधिक आदर न मिला।

पठान शासन के युग के अन्त होने पर ग्वालियर के राजा मानतोमर ने अपने राज दरबार में संगीत की एक विशेष संस्था स्थापित की जिसमें चार "संगीत नायक" नियुक्त किये गये। उनके नाम थे भाम, चूर्ज, ढुंढीबर और चंचल शशि। उनके सहयोग से राजा मान ने ध्रुपद की शैली का उद्धार करके उसके महत्व को फिर से स्थापित किया। इसके कारण उसका स्थान कव्वाली संगीत में कहीं ऊंचा हो गया।

ग्वालियर के मुहम्मद गौस राजा मान के मित्रों में था। इसमें कोई शंका नहीं कि वह ईरानी संगीत और उसके सूफ़ी धर्म का अनुयायी था। परन्तु वह भारतीय संगीत की ध्रुपद-पद्धति और उसके भक्तियोग के पुनीत भावों और विचारों का भी कायल था और उनका सच्चा प्रशंसक भी था।

उस समय वृन्दवन के सन्त स्वामी हरिदास का एक संगीतज्ञ और संगीत के अद्वितीय विद्वान् होने के नाते बड़ा आदर और मान था। लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और वह संगीत के एक विलक्षण कलाकार और सन्त विद्वान थे। वह बैजू की ध्रुपद शैली को मानते थे परन्तु उनके ध्रुपद-प्रदर्शन में एक बड़ा कलात्मक चमत्कार था। तानसेन उनके परम शिष्य थे और उनके गाने में स्वामी हरिदास की अद्‌भुत कला का परिचय मिलता था। ग्वालियर के मुहम्मद गौस ने तानसेन को ईरानी संगीत के लिए प्रोत्साहित अवश्य किया था परन्तु उसके साथ-साथ वह इस बात से बहुत खुश थे कि तानसेन ने प्राचीन ध्रुपद-शैली की घोर तपस्या की थी और उन्हें ऐसा विलक्षण और प्रतिभाशील गुरु मिला था। मुहम्मद गौस प्राचीन ध्रुपद संगीत के गुणों से परिचित थे। उनमें सहृदयता का भाव कूट-कूटकर भरा था और इसलिए वह प्राचीन भारतीय संगीत के गुणों के पारखी थे।

जब हम बादशाह अकबर के बारे में सोचते हैं तो हमें पता चलता है कि वह यही चाहता था कि भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों और विशेषताओं का उचित संश्लेषण हो। उसका 'दीने इलाही' इसी भावना का प्रतीक था। अकबर के गुरु होने के नाते से तानसेन में भी ऐसी ही भावना थी जिसका प्रमाण हमें उसके संगीत और उसके धार्मिक विचारों में मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानसेन ने जो सबसे बड़ी देन हिन्दुस्तानी संगीत को दी थी वह यह थी कि उसने ध्रुपद-शैली को संगीत के उच्च शिखर पर स्थापित और सुशोभित कर दिया। ध्रुपद तानसेन की संगीत कला से अलंकृत और पोषित होकर गायन की सर्वश्रेष्ठ शैली बन गया। और यही कारण था कि मुगल दरबार में पठान दरबार के विपरीत और प्रतिकूल ध्रुपद का पहला स्थान था और कव्वाली संगीत की उसके बहुत बाद गणना होती थी। अकबर ने 'नवरत्न' की स्थापना करके ध्रुपद-शैली को सर्वश्रेष्ठ महत्व दिया और तानसेन उसका उज्ज्वल प्रतीक बना। तानसेन ने एक हजार से अधिक ध्रुपदों की रचना की जो अपनी रागों की शुद्धता, भावों और शब्दों के माधुर्य और चातुर्य के लिए अब तक सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। सेनिये घरानों के गायकों को इनमें से बहुत कुछ याद हैं। इनमें ऐसे बहुत से ध्रुपद हैं जिनमें ईश्वर की स्तुति, आराधना और भक्ति के भावों की प्रधानता है और देवताओं का भी वर्णन है। कुछ ध्रुपद ऐसे भी हैं जिनके द्वारा श्रेष्ठ राजों और महाराजों की प्रशंसा की गई है। यह कहना भी आवश्यक है कि तानसेन की बहुत सी ध्रुपद रचनाओं में वेदान्त, भक्ति और सूफी मत की सुन्दर, सूक्ष्म कल्पनाओं का संश्लेषण है।

तानसेन ने ध्रुपद संगीत को नये-नये आभूषणों से सुशोभित किया जिनमें मींड़ और गमक का विशेष ध्यान था। उसके प्रबन्धों में एक विशेष भावात्मक चमत्कार था और ध्रुपद रचना की एक निराली विशेषता थी। अकबर के गुरु होने के नाते उसको ऊँचा सम्मान मिला और उसकी ध्रुपद-शैली भी सर्वश्रेष्ठ मानी गई। परन्तु उसकी अपनी प्रतिभा भी विलक्षण और बेजोड़ थी। ध्रुपद की गायन-शैली को तो उसने सुशोभित और परिमार्जित बनाया ही था परन्तु भारतीय वाद्यों को भी उसकी अमूल्य देन मिली। हिन्दुस्तानी सरस्वती वीणा और रबाब (रुद्र वीणा) दोनों का वह आविष्कारक था। परन्तु उसकी शिष्य परम्परा ने उसके संगीत को जीवित और सुरक्षित रखा जिसके कारण उसकी संगीत-शैली की व्यापकता और उसकी कलात्मक भिन्नता और विविधता भी सुरक्षित रहे।

अकबर के युग से, आधुनिक युग तक तानसेन-परम्परा के शिष्य-संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीत के उच्चकोटि के कलाकार माने गये हैं। उनके प्रभुत्व और उनके प्रभाव को भारत के सारे कलाकारों ने माना है और उनके संगीत को विशेष रूप से सम्मानित किया है। तानसेन के वंश और उनके शिष्य बहुत सी नई रागों से सम्मानित किये गये हैं। जिनमें कुछ के नाम हैं विलासखानी टोड़ी, तिलककोमोद, पूरिया कल्यान, कौशकी कान्हरा इत्यादि। इस शिष्य परम्परा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने ध्रुपद की चार बानियों की भी पूरी सुरक्षा की। हिन्दुस्तानी संगीत के वीणा, रबाब, सुरसिंगार और सितार ऐसे तंत्रों की शैलियाँ भी उन्हीं प्राचीन सिद्धान्तों के आधार पर उन्नतिशील और परिमार्जित होती चली गई। इसी प्रकार से देहली के शाह सदारंग ने जो तानसेन घराने का था, और ध्रुपद शैली का अनुयायी था, ध्रुपद और कव्वाली की शैलियों के अद्भुत मिश्रण से ख्याल की शैली का आविष्कार किया। परन्तु ख्याल शैली के गायक ध्रुपद परम्परा के सिद्धान्तों और विचारों के आगे अपना सिर झुकाते थे। वह सब तानसेन को आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का स्रोत और उद्गम स्थान मानते थे। इस तरह हिन्दुस्तानी संगीत की एकता का भाव सदैव सुरक्षित रहा। आज उत्तरी भारत में संगीत के गायन और वादन के बहुत से घराने हैं। इनमें आपस में कितना ही मतभेद क्यों न हो परन्तु यह सब घराने, जिनकी अलग-अलग शैलियाँ हैं, इस बात से पूर्ण रूप से सहमत हैं कि तानसेन संगीत की परम्परा सर्वोच्च है। इसी कारण वह सब एक आवाज़ से उसकी मर्यादा और उसके महत्व को श्रद्धापूर्वक सम्मानित करते हैं और उसका गुणगान करते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत की व्यापक एकता का भाव संगीत की तानसेन परम्परा में केन्द्रित है और इस तथ्य को हम कभी नहीं भूल सकते।

किसी हद तक यह कहना अनुचित न होगा कि यदि हम प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत की पूर्ण रूप से इस युग में उन्नति चाहते हैं तो हम तानसेन परम्परा के संगीत की उपेक्षा नहीं कर सकते और न उसके मौलिक सिद्धान्तों और तत्वों का परित्याग ही कर सकते हैं। उन्नति का अर्थ यह नहीं है कि हम आगे ही बढ़ते जायें और पीछे मुड़कर परम्परागत संगीत के मार्गदर्शकों की ओर बिल्कुल न देखें। आधुनिक संगीत को अपनी उन्नति के लिए तानसेन परम्परा के संगीत में केवल प्रोत्साहन ही नहीं, शक्ति भी मिलेगी। सैद्धान्तिक रूप से यह बात हमारी विचारधारा ही के लिए लाभदायक नहीं है परन्तु हमारे व्यावहारिक संगीत के लिए भी ठीक है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की स्फूर्ति और उसकी शक्ति उसके निरन्तर प्रयास और प्रयोगवाद में नहीं हैं परन्तु उसके प्राचीन संगीत की सोई हुई अदृश्य शक्तियों में है। तानसेन परम्परा का संगीत उस दिव्य प्रोत्साहन का एक अमर प्रतीक है।

वाराणसी में तानसेन परम्परा

काशी भारतवर्ष की सबसे पवित्र भूमि मानी गई है। अध्यात्म धर्म और विद्या के केन्द्र होने के अलावा यह प्राचीन भारतीय संगीत का प्रमुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केन्द्र भी रहा है। कुछ लोगों का कहना है कि तानसेन ने, जिसका असली नाम रामतनु था, बनारस में जन्म पाया और वहीं उसका पालन-पोषण भी हुआ। ऐसा विश्वास है कि उसका पिता मकरन्द पाण्डे कथक अथवा कथावाचक ब्राह्मण था जो मन्दिरों में पौराणिक कथाओं को गाकर सुनाता था। बाद में तानसेन को प्राचीन संगीत अथवा गंधर्व विद्या में हरिदास स्वामी से शिक्षा मिली और सूफीमत के सिद्धान्तों और विचारों की शिक्षा उसे ग्वालियर के सुविख्यात पीर मुहम्मद गौस से मिली। यह भी कहा जाता है कि सम्राट् अकबर ने ही उसे 'तानसेन' नाम दिया और देहली दरबार में उसकी नियुक्ति करके उसने उसको अपना पूज्य गुरु माना था। उसकी शिष्य-परम्परा को भी इस दरबार में बहुत सम्मान मिला। परन्तु उसकी सम्मानित परम्परा के संगीतज्ञों का बनारस में बराबर आना जाना रहता था और वह उसको संगीत की पुण्य भूमि समझते थे।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मुगल साम्राज्य का अन्त हो रहा था। उस समय तानसेन के वंशज तीन घरानों में विभाजित हो गये। वह घराना, जो उसके सबसे बड़े पुत्र सूरत सेन ने स्थापित किया था, जयपुर में जाकर बस गया। इस घराने के अनुयायियों में ध्रुपद गायक और सितार वादक दोनों ही थे। तानसेन के सबसे छोटे सुपुत्र विलास खाँ के घराने और उसके दामाद मिस्री सिंह के घराने में बराबर घनिष्ठ सम्पर्क रहा। विलास खाँ के घराने के संगीतज्ञ ध्रुपद की शुद्ध बानी के विशेषज्ञ थे और वाद्यों में उन्होंने रबाब में विशेष कुशलता प्राप्त की। मिस्री सिंह के वंशज वीणा और ध्रुपद की डागुर और खंडार बानियों के पारंगत बने। अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासित खाँ यह तीन भाई विलास खाँ के घराने के प्रमुख और प्रतिष्ठित प्रतिनिधि माने गये। यह ध्रुपद-गायन करते थे और रबाब भी बजाते थे। मिस्री सिंह की वंश परम्परा में निर्मल शाह नाम के सुविख्यात वीणावादक हुए। इन दोनों घरानों के लोगों ने देहली छोड़कर बनारस को ही अपना निवास स्थान बनाया। बनारस के कबीर चौरा मुहेल्ले में ही यह सब रहते थे। यह संगीतज्ञ लखनऊ दरबार से भी सम्बन्धित थे। मगर पूजा के अवसर पर यह बराबर बनारस आते थे। काशी नरेश भी जब इन्हें बुलाते थे तब यह आते थे और अपने संगीत का प्रदर्शन करते थे। उन्हें काशी नरेश ने मुफ्त में जमीन इत्यादि भी दी थी।

जाफर खाँ एक अद्वितीय रबाबिये थे। इनका रबाब एक खास ढंग से बनाया गया था। जोड़ और तारपरन की शैली में यह अपना जवाब नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखते थे। परन्तु बिलम्बित आलाप और झाला वीणा ही की मुख्य विशेषतायें थीं। कभी-कभी काशी और लखनऊ के दरबारों में जाफर खां और निर्मल शाह कई अवसरों पर प्रतियोगिता की भावना से प्रेरित होकर भी बजाते थे परन्तु उसमें कोई ईर्ष्या अथवा द्वेष का भाव नहीं होता था। कला-कौशल हीं उसका अच्छा परिणाम होता था और इसलिए श्रोतागण संगीत का अधिक आनन्द लेते थे।

जाफर खाँ ने सुरसिंगार ऐसे सुन्दर वाद्य का भी आविष्कार किया। बनारस में इनके सुरसिंगार का प्रथम प्रदर्शन काशी नरेश राजा उदित नारायण सिंह के दरबार में हुआ। उनके वादन की बड़ी प्रशंसा हुई। विशेषकर काशी नरेश और निरमल शाह उनके सुरसिंगार वादन से बहुत खुश और प्रभावित हुए।

सुरसिंगार के आविष्कार के बाद, जाफर खाँ के दूसरे भाई प्यार खाँ ने इस नये वाद्य में बड़ी ही जबरदस्त कुशलता प्राप्त की और उसके पहले के बाज को और भी नये ढंग से आभूषित और अलंकृत किया। वह इस वाद्य के बेजोड़ वादक माने गये। और निर्मल शाह के निधन के पश्चात् उनके भतीजे उमराव खाँ ही सबसे श्रेष्ठ वीनकार माने गये। इन्होंने सुरबहार की ईजाद की और गुलाम मुहम्मद खाँ ऐसे कलाकार को तैयार किया। प्यार खाँ के छोटे भाई बासत खाँ धुरंधर धुरपदिये और रबाविये मशहूर हुए और देश भर में उनकी ख्याति चारों तरफ फैल गई। इसके अलावा बनारस में कई बार प्यार खाँ के सुरसिंगार और उमराव खां की वीणा के दंगल भी होते रहे। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि बासत खाँ ने बनारस के पण्डितों से संगीत-अध्ययन के लिये संस्कृत भी सीखी थी और कलकत्ते के राजा हरकुमार टैगौर की संगीत सभा में उनको "संगीत नायक" की उपाधि भी दी गयी थी। गदर के पश्चात् लखनऊ के दरबार का अन्त हुआ और बासत खाँ अपने दो सुयोग्य और प्रवीण पुत्रों के साथ, जिनका नाम अली मुहम्मद खां (सुरसिंगार वादक) और मुहम्मद अली खाँ (धुरपदिये और रबाविये) था, गया में जाकर बस गये। जाफर खां के लड़के सादिक अली खाँ और उसके भाई मिसर अली खाँ काशी नरेश के दरबार में सम्मिलित हो गये। सादिक अली संगीत शास्त्र का एक बड़ा विद्वान् था और रबाब बजाने में बहुत निपुण था। परन्तु वह वीणा भी बहुत अच्छी बजाता था। बनारस के संस्कृत विद्वानों से उसका बहुत अच्छा सम्पर्क था और वह संस्कृत का विद्वान् होते हुये फारसी भी बहुत अच्छी जानता था। कहा जाता है कि लड़ी जोड़ और लड़गुथ्थव में वह विशेष रूप से पारंगत था। तार-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन में तो वह अच्छे-अच्छे पखावजियों को पराजित कर सकता था। एक संत के समान वह अपना जीवन व्यतीत करता था और वह बड़ा धार्मिक आदमी था। वह मज़ाजीरी या लोकप्रिय संगीत को पसन्द नहीं करता था। उसने रबाव की शिक्षा केवल अपने छोटे भाइयों को दी। परन्तु ध्रुपद-गायन और वीणा, सितार के उसके बहुत से शिष्य थे। सितार में उसके प्रमुख शिष्य एक बाजपेयी जी के नाम के व्यक्ति थे। इसी तरह से वीणा में उसके अच्छे शिष्यों में महेश चन्द्र सरकार और मिठाई लाल जी थे। सुनते हैं कि जब रामकृष्ण परम हंस बनारस तीर्थ करने गये तो महेश सरकार की वीणा के वादन को सुनकर वह समाधि में प्रवेश कर गये।

सादिक अली खाँ की मृत्यु के बाद 'संगीत नायक' बासत खाँ के सबसे बड़ें लड़के अली मुहम्मद खां काशी नरेश के प्रधान दरबारी संगीत कलाकार नियुक्त हो गये। उस समय उनके पिता का गया में देहान्त हो गया और वह आकर बनारस ही में रहने लगे। वह काशी नरेश के महल के पास ही बनारस में रामनगर में रहते थे। अली मुहम्मद बड़े खुले डुले, उदारचित व्यक्ति थे और वह घण्टों बड़े प्रेम से अपना सुरसिंगार अपने शिष्यों के आगे बजाते थे। उनको रागों का बड़ा गहरा ज्ञान था और वह राग में नई-नई तानें बगैर दुहराये हुये घण्टों बजा सकते थे। उन्होंने सुरसिंगार में कुछ विशेष व्यक्तियों को तैयार किया जिनके नाम थे पन्नालाल जैन, वैद्य अर्जुनदास और गया प्रसाद मिश्र। इस वाद्य में उनके सबसे योग्य और कुशल शिष्य जलन्धर के सैयद मीर नासिर खाँ थे। उन्होंने ध्रुपद-गायन, वीणा और सुरसिंगार में रामपुर के बीनकार वज़ीर खाँ को भी शिक्षा दी जो उनसे मिलने बनारस अक्सर आया करते थे। अली मुहम्मद खाँ ने बंगाल के गायक हरी नरायन मुकर्जी को भी बहुत से ध्रुपदों और सरगमों की शिक्षा दी। एक और बंगाली रईस ने भी, जिनका नाम तारा प्रसाद घोष था, इन नामी उस्ताद से संगीत शिक्षा ली। यह महाशय संगीतज्ञों को दान और इनाम इत्यादि देने के लिए मशहूर थे। तारा-प्रसाद घोस ने अली मुहम्मद से काफी सीखा। अली मुहम्मद खाँ के छोटे भाई मुहम्मद अली खाँ, जो गया में रहते थे, अक्सर अपने बड़े भाई से बनारस में आकर रबाव की शिक्षा प्राप्त करते थे। यह दोनों भाई अपनी प्रतिभा के चमत्कार को और संगीतज्ञों के आगे, जो अक्सर बनारस आया करते थे, बड़े ही अनोखे ढंग से प्रदर्शित करते थे और उनकी हार्दिक प्रशंसा के पात्र बनते थे। यह दोनों भाई संगीत-कला के बेजोड़ कलाकार थे। अली मुहम्मद की मृत्यु के बाद उनकी जगह खाली हो गई जो आसानी से भरी नहीं जा सकती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेनिये घराने के और गायक और वादक रामपुर और जयपुर की रियासतों में जाकर बस गये। इस कारण धीरे-धीरे तानसेन घराने के ध्रुपद की परम्परा का लोप बनारस से हो गया। बाद में इन उस्तादों के शिष्यों में केवल हरिनारायण मुकर्जी ऐसे धुरपदिये और मिठाई लाल ऐसे बीनकार ही बच रहे थे। इन्होंने बनारस की ध्रुपद-परम्परा के गायकों और वादकों की संगीत-कला का थोड़ा बहुत चमत्कार देखा था।

सेनिया घराने का विस्तार

उत्तर प्रदेश में बनारस और रामपुर सेनिये घराने की परंपरा के मुख्य केन्द्र बने। आधुनिक युग में रामपुर के दरबार की ख्याति इस सम्बन्ध में काफी हुई जिसके बारे में हम आगे चलकर कुछ कहेंगे।

अलाउद्दीन खिलजी के बाद हम दो ही मुख्य घरानों की चर्चा सुनते हैं (1) पहला था कलावंत घराना जिसकी स्थापना बैजूबावरा ने की। इस घराने की कलात्मक व्याख्या और उसका सारगर्भित प्रचार नायक गोपाल ही ने किया था। इस परम्परा में ध्रुपद-गायन शैली और सरस्वती वीणा की वाद्य शैली दोनों रागालाप और ध्रुपद रचनाओं के साथ सम्मिलित हुये।

(2) दूसरा था क़व्वाल घराना जिसको अमीर खुसरू ने स्थापित किया। इस घराने का क्रियात्मक प्रचार अमीर खुसरू ने और उसके बाद जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्क़ी ने किया।

इस घराने के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न शैलियां थीं। क़व्वाली शैली की रचनायें, सितारवादकों की शैली और तराना इत्यादि सब इसमें सम्मिलित थे। बाद में एक तीसरे घराने का भी आरम्भ हुआ जिसमें शहनाई बजाने वाले और तबला वादक थे। बाइयों और पेशेवर गाने वालियों और नाचने वालियों की संख्या के बढ़ जाने से साथ संगत करने वाले सपरदियों का एक चौथे घराने का भी जन्म हुआ। इन अन्तिम दो घरानों के लोग ढाढ़ी और मीरासी कहलाए।

देहली के दरबार में एक सौ के लगभग संगीत कलाकार थे जिनमें क़व्वाल और ढाढ़ी मीरासी भी थे। पठान बादशाहों के शासनकाल के बाद संगीत के स्वर्णयुग में हरिदास स्वामी ऐसे विद्वान् महापुरुष मौजूद थे। इसी युग में बैजूबावरा की स्थापित की हुई ध्रुपद शैली और उसके रागालाप का वैभव भी सामने आया। और इस प्रकार ध्रुपद गायन राज दरबारों में बहुत सम्मानित हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे पहले बताया गया है, हरिदास स्वामी के प्रभावशाली और व्यापक प्रोत्साहन ही के कारण ग्वालियर के राजा मानतोमर ने अपने दरबार में संगीत के चार विद्वानों और नायकों की एक संस्था को स्थापित किया। यह चार नायक भानु, चूर्ज, ढुण्ढी और चंचल शशि के नाम से प्रसिद्ध हुये। घरानों का आरम्भ स्वामी हरिदास के प्रोत्साहन ही से हुआ। यह चार नायक कलावंत के नाम ही पुकारे गये। कलावंतों के महत्व के यह प्रतीक बन गये।

यह भी हम जानते हैं कि अकबर के राज्य काल में हरिदास स्वामी के शिष्य तानसेन को सर्वश्रेष्ठ गायक माना गया। तानसेन ही इस संगीत के सांस्कृतिक आन्दोलन का नेता और अगुआ बना। और नायकों के शिष्य भी उसके शिष्य बने और इसी के आलाप और ध्रुपद की शैली सर्वश्रेष्ठ मानी गई। यह भी मान लेना चाहिए कि ईरानी संगीत के प्रभाव से उसने अपनी गायन शैली को अलंकृत और सुशोभित किया। अपनी संगीत-कला की श्रेष्ठता ही के कारण वह अपने बहुत से समकालीन संगीतज्ञों का नेता और मार्गदर्शक भी बना जिनमें से कुछ के नाम थे (1) खुदा बखश (2) मसनद अली (3) रामदास (4) चांद खां (5) सूरज खां (6) खांडे राव (7) सुरतान खां और जगपत (मृदंग वादक)।

यह भी हम जानते हैं कि तानसेन हरिदास स्वामी के परम शिष्य थे और पीर मुहम्मद गौस उनके उपपिता थे। उस समय के संगीतज्ञों में कुछ तो उसके समकालीन थे और कुछ और नायकों के शिष्य थे। यह सब संगीतज्ञ देहली के शाही दरबार ही में सम्मिलित थे और उसमें विशेषरूप से सम्बन्धित थे।

हरिदास स्वामी के शिष्यों में कुछ मुख्य भी थे जिनमें कुछ के नाम हैं (1) बृज चंद (2) गोपाल लाल, और (3) अजमेर के सिंहलगढ़ के राजा समोखन सिंह जो उस समय का सबसे श्रेष्ठ वीणावादक माना जाता था। अकबर के काल ही से प्रसिद्ध संगीतज्ञों के वंशज और शिष्य अपने-अपने घराने स्थापित कर रहे थे। तानसेन सर्वश्रेष्ठ गायक थे और बादशाह अकबर के गुरू थे और इसी कारण उनका व्यापक और प्रभावशाली प्रभाव और संगीतज्ञों पर बहुत जबरदस्त पड़ा। उसी के व्यक्तित्व के कारण सेनियो के घरानों की स्थापना हुई।

तानसेन की मृत्यु के बाद सेनियो के तीन-मुख्य घराने बने। पहला घराना तो तानसेन के सबसे छोटे पुत्र बिलास खां (तानतरंग) के नाम से बना। यह गौड़हार ध्रुपद बानी का सबसे प्रतिष्ठित सेनिया घराना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बना।

दूसरा सेनिया घराना तानसेन के एक दूसरे पुत्र सुरतसेन के नाम से बना जो डागुर बानी के सबसे श्रेष्ठ और सुविख्यात गायक माना गया। उसके वंशज जयपुर में जाकर बस गये जहां पर उनकी शिष्य परम्परा फलती फूलती रही।

तीसरा सेनिया घराना मिश्री सिंह ने बनाया जो महाराजा समोखन सिंह का पुत्र था और जिसका विवाह तानसेन की पुत्री सरस्वती देवी से हुआ था। उसके वंश के वादकों ने वीणा के सबसे प्रधान घराने की स्थापना की जो डागुर और खंडार बानी के ध्रुपद-गायन में बहुत प्रवीण था।

इन तीन सेनिया घरानों के अलावा मथुरा में बृजचंद और सूरदास ने भी अपने घराने बनाये जिनके शिष्यों की गणना में बहुत से ब्राह्मण पंडित भी थे। चांद खां और सूरज खां ने भी पंजाब में तिलवंडी के ध्रुपद घराने को स्थापित किया जिसने आगे चलकर काफी ख्याति पायी।

हम एक और घराने के बारे में चर्चा सुनते हैं और वह था आगरे का ध्रुपद धमार शैली का घराना जिसके स्थापक अकबर के युग के हाजी सुजान खां थे और जो इस सुविख्यात घराने के पूर्वपुरुष और प्रवर्तक माने गये हैं। इस घराने को शाहजहां के राज्य काल में बहुत ख्याति मिली। परन्तु औरंगजेब के राज्य-काल में हिन्दुस्तानी संगीत को बहुत क्षति पहुंची और उसकी अवनति में गायकों और वादकों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इसके बाद भारतीय संगीत का भाग्य फिर से चमकता है जब देहली के मुहम्मद शाह रंगीले का ज़माना आता है। यह अठारहवीं सदी के आरम्भ काल की बात है। देहली दरबार को संगीतज्ञों ने फिर से सजाया और संवारा और बहुत से घरानेदार गायक और वादक देहली में जमा हुए। इस काल में इस दरबार के संपर्क से संगीत में एक बड़ी क्रान्ति हुई और ध्रुपद शैली के साथ एक और रोचक शैली का जन्म हुआ।

सदारंग

हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास को देखकर हमें यह कहना पड़ता है कि नियामत खां बीनकार, जो तानसेन घराने के थे और जिन्हें मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में शाह सदारंग की उपाधि मिली थी, तानसेन के बाद भारतवर्ष के सबसे बड़े संगीतज्ञ हुए। तानसेन के बाद एक बड़े लम्बे परिवर्तन काल में जब संगीत की भिन्न-भिन्न शैलियों में उथल-पुथल हो रही थी, वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सुनहरे प्रतीक के समान थे। अठारहवीं शताब्दी में हिन्दुस्तानी संगीत के नये आधुनिक युग में सदारंग हमारे संगीत की क्रान्तिकारी परिवर्तनशीलता के एक महान् प्रवर्तक माने गये। सेनिया परम्परा के एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि होते हुए उन्होंने वीणा-संगीत और धमार की शैली में भी कुछ नये आविष्कार किये। परन्तु इसके साथ-साथ उन्होंने एक और महान् कार्य किया। क़व्वाल घराने को स्थापित करके उन्होंने ख्याल ऐसी मनोहर और अद्भुत शैली का भी आविष्कार किया। यह नया क़व्वाल बच्चों का घराना इस ख्याल की नई शैली का जन्मदाता था। इसका बहुत बड़ा प्रभाव आगरा और ग्वालियर घराने की ख्याल-गायन की शैलियों पर पड़ा।

अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में मुगल साम्राज्य के पतन होने के बाद नये-नये राजा और सूबेदार स्वतन्त्र हो गये और देहली के राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। देहली के बादशाह की शक्ति का अंत हो गया और वह केवल नाम का बादशाह रह गया। देहली दरबार की आर्थिक दशा भी जब खराब होती चली गयी तो गायक और वादक और राज दरबारों में शरण और आश्रय ढूंढने लगे। इस समय सेनिया घराने के संगीतज्ञ, जो दूसरे दरबारों में स्थान ढूंढ़ रहे थे, वाद्य संगीत की ओर अधिक ध्यान देने लगे और उसमें परिश्रम भी करने लगे। वह ध्रुपद-गायन के माने हुए महारथी अवश्य थे मगर समय की आवश्यकता के अनुसार वह दो वर्गों में विभाजित हो गये।

विलास खां और नियामत खां के वंशज बनारस में जाकर बस गये और वह लखनऊ के दरबार और आसपास के और दरबारों में नियुक्त हो गये। यह पूर्वी संगीत कलाकार कहलाये।

दूसरा वर्ग, जिसके संगीतज्ञ सुरतसेन के घराने का था, जयपुर में जाकर बस गया। इसको पश्चिमी संगीत कलाकार के नाम से पुकारा गया। सेनिया घराने के पूर्वी संगीतज्ञ वीणा और रबाब बजाने के साथ-साथ ध्रुपद-गायन भी करते थे।

इसी तरह सेनिया घराने के पश्चिमी संगीतज्ञ सितार और वीणा के बाज में निपुण थे और ध्रुपद-गायन भी करते थे। इन दो वर्गों के अलावा कव्वाल घराने के कलाकार देहली के दरबार से कुछ समय के लिए सम्बन्धित रहे।

इसलिए अठारहवीं शताब्दी के मध्य में सेनिया परंपरा के भिन्न-भिन्न घराने स्थापित हो चुके थे। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) रबाब और ध्रुपद का सेनिया घराना जिसमें लखनऊ और बनारस के मशहूर संगीतज्ञ और तीनों भाई जाफर खां, प्यार खां और बासत खां थे।

(2) लखनऊ का निर्मल शाह का सेनिया घराना।

(3) बड़े मुहम्मद खां का ग्वालियर और लखनऊ का कव्वाल बच्चों का घराना।

(4) ग्वालियर का ख्याल घराना जिसको तीनों भाइयों हद्दू खां, हस्सू खां और नत्थू खां ने स्थापित किया।

(5) आगरे का ख्याल और ध्रुपद धमार का घराना जिसे हाजी सुजान खां ने स्थापित किया।

(6) बेतिया का ध्रुपद का घराना जिसको लखनऊ के हैदर खां सेनिये ने स्थापित किया।

(7) विशुनपुर का ध्रुपद घराना जिसको बहादुर खां सेनिये ने स्थापित किया।

(8) पंजाब के तिलवंडी का ध्रुपद घराना।

(9) लाहौर का पंजाब के ख्याल गायकों का घराना जो सदारंग के शिष्य थे।

(10) अतरौली का ध्रुपद और ख्याल का घराना।

(11) बहराम खां धुरपदिये का ध्रुपद का डागुर घराना।

(12) सहारनपुर का सरोद का घराना जिसकी स्थापना निर्मलशाह के लड़के उमराव खां के शिष्यों ने की थी।

(13) जयपुर के सेनियों का सितार का घराना जिसको अमृतसेन ने स्थापित किया।

(14) बासत खां के शिष्य नियामतुल्ला खां का सरोद का घराना।

(15) लखनऊ का सितार का घराना जिसको उमराव खां के शिष्य गुलाम मुहम्मद खां ने स्थापित किया।

रामपुर दरबार का घराना

ध्रुपद की सेनिया परंपरा की चर्चा करते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि हम रामपुर दरबार के जन्म के बारे में भी कुछ थोड़ा-बहुत कहें। बनारस और लखनऊ के सम्मानित दरबारों के बाद रामपुर दरबार ही का नाम हमारे सामने आता है। इस दरबा. ने भी संगीत-प्रदर्शन और संगीत-प्रचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में काफी काम किया। हिन्दुस्तानी संगीत से संबन्धित भारतवर्ष के और राज-दरबारों में इसकी गणना है। गदर के बाद अवध के बादशाह लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह लखनऊ छोड़कर कलकत्ता में जाकर रहने लगे। वह अपने साथ कुछ प्रसिद्ध संगीतज्ञों को भी ले गये जिनमें कुछ के नाम थे—बासत खां, कासिम अली मियां सेनिया घराने के, कालपी घराने के मुराद अली खां और ताज खां और कुछ ख्याल गायक भी।

रुहेलखण्ड में पठानों की स्थापित की हुई रियासत रामपुर थी जहां पर आरम्भ काल से वहां के नवाबों को संगीत से सच्चा और गहरा प्रेम था। रामपुर के नवाब कल्बे अली खां ने अपने दरबार में बहादुर हुसेन खां (बिशनपुर के बहादुर खां ने अलग) और अमीर खां को नियुक्त किया। बहादुर हुसेन खां प्यार खां सेनिये जो सुरसिंगार के सुविख्यात वादक थे उनके भतीजे थे। और अमीर खां सेनिये घराने के उमराव खां बीनकार के लड़के थे। इन्हें सुरसिंगार और वीणा दोनों पर अधिकार था। परन्तु इसके साथ-साथ यह दोनों घरानेदार वादक ध्रुपद की गायन शैली में भी पारंगत थे। बहादुर हुसेन खां ने वाद्य संगीत ही की ओर अधिक ध्यान दिया और इस लिए वह अपने ढंग के एक अद्वितीय वादक माने गये हैं। लोग कहते थे कि उनके हाथ में एक अजीब मिठास थी जो और वादकों में नहीं मिलती थी। संगीत से अनभिज्ञ नासमझदार श्रोता भी उनके वाद्य को सुनकर मस्त हो जाते थे। यही कारण था कि उनके संगीत-प्रदर्शन का इतना व्यापक भावुक प्रभाव होता था। उनके पास विद्वानों की विद्या भी थी और भावुक कला-कारों की सहृदयता भी। उनके वाद्य को सुनकर श्रोता आनन्द में डूब जाते थे। उनका कलायुक्त अलंकार, चकित करने वाला झाला और उनके वाद्य की गम्भीर और मधुर झंकार सब अपने ढंग के निराले थे। इसके अलावा उनकी प्रतिभा का चमत्कार गायन शैली के बहुत से प्रबन्धों और उसकी रचनाओं में भी साफ दिखाई देता है। उनका राग देष का मशहूर तराना भारत भर में बहुत प्रसिद्ध हुआ।

दूसरे उत्तम संगीतज्ञ अमीर खां थे। इनका गला भी बड़ा सुन्दर था। वह वीणा वादक अवश्य थे परन्तु गायन कला की तरफ उनका विशेष ध्यान था। रियासत रामपुर में अमीर खां ने अपनी वीणा बहादुर हुसेन खां के सुरसिंगार के सामने कभी नहीं बजाई। रिश्ते में बहादुर हुसेन खां उनके ससुर भी लगते थे। दरबार में वह आलाप और ध्रुपद धमार ही गाते थे। उस समय संगीत के व्यापक क्षेत्र में ठुमरी ऐसी नई गायन शैली का प्रवेश हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुका था। क़दर पिया, सदर पिया और सनद पिया ऐसे ठुमरी गायक लखनऊ में नवाब वाजिदअली शाह के दरबार में नियुक्त हो गये थे। लखनऊ की ठुमरी के साथ लखनऊ का कथक नाच भी संगीत के मैदान में आ गया था। वाजिदअली शाह के दरबार में ठाकुर प्रसाद भी, जो कथक नृत्य के जन्मदाता और प्रवर्तक माने जाते हैं, नियुक्त थे और वह नवाब साहब के नाच में पूज्य गुरु थे। इसी नवाबी दरबार में ठाकुर प्रसाद के नौ बरस के प्रतिभाशील लड़के बिंदादीन ने एक दरबारी महफ़िल में भारत विख्यात-कुदऊ सिंह पखावजिये की पखावज के साथ अपना विलक्षण कथक नाच लखनऊ के बादशाह के सामने एक दिन दिखाया था।

ठुमरी और कथक नाच का चोली-दामन का साथ था और यह हमारे आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की दो नई शैलियां थीं जिन्होंने आगे चलकर बड़ी उन्नति पायी। लखनऊ के दरबार के अन्त होने पर सुना जाता है कि ठुमरी गायक सनद पिया बहादुर हुसैन खां के साथ रामपुर चले गये। सनद पिया की कोयल की सी आवाज थी और उसमें लुभाने वाला बड़ा ही आकर्षण था। उनकी ठुमरी की बंदिशें भी बड़ी सुन्दर थीं। मगर अमीर खां भी अपनी सुरीली आवाज में धमार इस सुन्दरता से कभी-कभी गाते थे कि ठुमरी भी उसके गायन के आगे फीकी मालूम देती थी। अमीर खां अपने धमार गायन को गायन शैली के विविध अलंकारों से सुशोभित करते थे। इसके अलावा उनके गले में मींड़, मुरकी, और फिरत भी थी। उन्होंने संगीत की सच्ची साधना की थी।

एक तरह से बहादुर हुसेन खां और अमीर खां ने रामपुर घराने की नींव डाली। इस घराने की ध्रुपद शैली की कुछ अपनी विशेषतायें थीं जो उसके ध्रुपद-गायन और वाद्य वादन दोनों में प्रत्यक्ष हो जाती थीं। इन दोनों संगीतज्ञों ने अपनी पूरी विद्या नवाब हैदरअली खां को दी जो रामपुर के नवाब के भाई लगते थे और खुद भी उन्हें संगीत का बड़ा गहरा ज्ञान था। वह गायन और वादन दोनों में एक से पारंगत थे। वह संगीत शास्त्र भी बड़ी अच्छी तरह से जानते थे। उनके पास संगीत विद्या का बहुत ही बहुमूल्य संग्रह था जो आज भी रामपुर में मौजूद हैं।

नवाब हैदरअली खां के ज़माने में रामपुर में अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ हुए जो सब बहादुर हुसैन खां या अमीर खां के शिष्य हो गये थे। इनमें से कुछ तो और घरानों के शिष्य भी थे। मगर रामपुर आकर यह सब इन दो महान् संगीतज्ञों के शिष्य हो गये और इन्होंने उनकी संगीत शैलियों पर ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास किया।

बहादुर हुसैन खां और अमीर खां ने जिनको रामपुर के सेनिया घराने की संगीत पद्धति की ओर प्रेरित किया और शिक्षा दी उनमें से कुछ के नाम यह हैं :—

1—मुहम्मद हुसैन (वीणा)
2—नवी वख्श (वीणा)
3—कुतुबुद्दौला (सितार)
4—इनायत हुसैन (ख्याल गायन)
5—अली हुसैन (वीणा)
6—बाकर अली खां (ख्याल गायन)
7—असद खां (सुरसिंगार)
8—फ़िदा हुसैन खां (सरोद)
9—बुनियाद हुसैन खां (सारंगी)

इन सब संगीतज्ञों ने अलग-अलग शैलियों का प्रयोग करते हुए भी सेनिया घराने की संगीत पद्धति के नियमों और सिद्धान्तों का पालन किया। इस तरह रामपुर घराना सेनिया घराना की एक अलग शाखा बन गया और उसमें सेनिया परंपरा की संगीत की विचारधारा केन्द्रित हुई।

इस शताब्दी के प्रथम भाग में रामपुर के नवाब हामिदअली खा ने संगीत की इस परम्परा को सुरक्षित रखा और अमीर खां के सुपुत्र वजीर खां बीनकार इसके प्रमुख संगीतज्ञ माने गये। वजीर खां के संरक्षक अथवा सरपरस्त नवाब हैदरअली खां ही थे और उन्होंने बहादुर हुसैन खां से सुरसिंगार की और अपने पिता अमीर खां से वीणा की शिक्षा प्राप्त की। वजीर खां अपने पिता के समान कुशल गायक और वादक दोनों थे। बिलसी के नवाब छम्मन साहब नवाब हैदरअली खां के प्रतिभाशील सुपुत्र थे और सुरसिंगार बेजोड़ बजाते थे। यह वजीर खां के समकालीन थे और सुरसिंगार वादक होने के अलावा उन्हें संगीत शास्त्र का भी बड़ा अच्छा और गहरा ज्ञान था।

वजीर खां

आधुनिक युग में जयपुर के बंदेअली खां और रजबअली खां और उनके शिष्य मुशर्रफ खां बीनकारों के बाद वजीर खां, जो रामपुर के नवाब हामिद-अली खां के गुरु थे, उस जमाने में सर्वश्रेष्ठ बीनकारों में माने गये हैं। इन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने पिता अमीर खां से और बहादुर हुसैन से शिक्षा प्राप्त की थी और नवाब हैदरअली खां से भी, जो बहादुर हुसैन खां के शिष्य थे, इन्होंने थोड़ा बहुत सीखा था। यही कारण था कि नवाब छम्मन साहब जो नवाब हैदर-अली खां के सुपुत्र थे और सुरसिंगार बजाने में अपना सानी नहीं रखते थे उनके सामने वजीर खां वीणा बजाने में अक्सर संकोच करते थे। यह लिहाज और यह आदर आजकल के संगीतज्ञों में ज़रा कम दिखाई देता है। पर इसमें कोई शक नहीं कि वजीर खां स्वयं बहुत ऊँचे और सम्मानित बीनकार थे। इस युग में वह रामपुर की सेनिया परम्परा के अपने घराने के आखिरी कुशल संगीतज्ञ थे। मुहम्मद अली खां भी, जो वासत खां के छोटे लड़के थे और सुविख्यात ध्रुपदिये और रबाबिये थे, सेनिया घराने के बहुत बड़े संगीतज्ञ थे जिनसे बहुत से कुशल वादकों ने शिक्षा प्राप्त की। यह कहना उचित होगा कि इस शताब्दी के आरम्भ में अलवर के मुशरिफ खां और रामपुर के वजीर खां दोनों प्रमुख और बेजोड़ बीनकार थे।

वजीर खां नवाब रामपुर के गुरु तो थे ही मगर उन्होंने और संगीतज्ञों को भी शिक्षा दी। वह बहुत अच्छे शिक्षक भी थे और अपने शिष्यों को संगीत बड़े चाव और परिश्रम से सिखाते थे। एक नामी बीनकार होने के अलावा उन्हें संगीत शास्त्र का भी बड़ा अच्छा ज्ञान था। संगीत में उनका चिन्तन मूल्य रखता था। ऐसा न होता तो पंडित भातखण्डे ऐसे संगीत के विद्वान् उनके निकट संपर्क में न आते और न उनसे कुछ थोड़ी-बहुत जानकारी हासिल करते।

वजीर खां ने बहुत से शिष्यों को संगीत की शिक्षा दी। वीणा ऐसे प्राचीन वाद्य में पारंगत होते हुए भी उन्होंने और वाद्यों में भी संगीत के सैद्धान्तिक तत्वों की शिक्षा दी। उनके अपने प्रमुख शिष्यों में कुछ के नाम नीचे दिये हैं :—

1—अलाउद्दीन खां (सरोद)
२—हाफिजअली खां (सरोद)
3—मेंहदी हसन खां (ध्रुपद और ख्याल)
4—मुश्ताक हुसैन खां (ख्याल)
5—प्रमथनाथ बंदोपाध्याय (रुद्र वीणा)
6—जदवेन्द्र महापात्र (सुरबहार)

ऊपर दिये हुए पहले दो वादकों का भारतवर्ष भर में बहुत नाम हुआ। अलाउद्दीन का कुछ समय ही हुआ सौ वर्ष से अधिक की अवस्था में देहान्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ है। यह बड़े विद्वान् सरोदवादक थे और वजीर खाँ के पास आने के पहले उन्होंने और लोगों से भी सरोद सीखा था। वह बड़े अच्छे शिक्षक थे और उन्होंने दो बड़े प्रतिभाशील वादकों को तैयार किया जिनमें पहले तो उनके सुपुत्र अली अकबर खाँ सरोदवादक हैं और दूसरे उनके दामाद रविशंकर सितारवादक हैं जिनका बाहर के देशों में भी बहुत नाम हुआ है। दोनों बहुत प्रतिभाशील संगीतज्ञ हैं। इसी तरह हाफिजअली खां ने भी, जिनका भी अपने गुरु भाई अलाउद्दीन खाँ के बाद देहान्त हुआ और जो सरोद के अद्वितीय और भावुक वादक थे, अपने सुपुत्र अमजदअली खां को शिक्षा देकर बड़ा ही कुशल और प्रवीण सरोदवादक बनाया और जिनका भारतवर्ष भर में आजकल नाम है।

वजीर के वंश में उनके सुयोग्य सुपुत्र सगीर खां तो पाकिस्तान चले गये थे और उनके पोते दबीर खाँ बरसों कलकत्ते रहे और उन्होंने वीणा वादन की उत्तम शिक्षा अपने शिष्यों को दी। उनके सबसे प्रतिभाशील शिष्य गौरीपुर के श्री वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी हैं जो बड़े सुयोग्य संगीतज्ञ हैं। दबीर खाँ की मृत्यु के पश्चात् अब वजीर खाँ के अपने घराने का और कोई कुशल वादक नहीं बचा है।

वजीर खाँ जिस सेनिया परम्परा के नामी संगीतज्ञ थे उसका पतन भी अब धीरे-धीरे हो रहा है। इस परम्परा के मूल सिद्धान्तों की सुरक्षा केवल उनकी शिष्य-परम्परा ही कर सकती है। यह एक बड़ी जिम्मेदारी है और आशा है कि इस घराने के कलाकार अपने दायित्व को समझेंगे।

तानसेन की सेनिया परम्परा की चर्चा करते हुए हम और स्थानों को नहीं भूल सकते जहाँ पर प्राचीन संगीत की बड़ी चहल-पहल रही है।

वृन्दावन केन्द्र

वृन्दावन प्रबन्ध गीत शैली का मुख्य केन्द्र माना गया है। बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास से पता चलता है कि भक्तों के अगुआ अथवा मार्ग दर्शक स्वरूप दामोदर हुआ करते थे जैसे राय रामानन्द, स्वामी कृष्णदास, स्वामी हरिदास, कृष्णदास कविराज, रघुनाथ दास गोस्वामी, ठाकुर नरोत्तमदास और वह जो सर्वोत्तम प्रबन्ध गीत में पूर्ण रूप में पारंगत हुआ करते थे।

यह कहा जाता है कि ठाकुर नरोत्तमदास को यह श्रेय था कि उन्होंने ध्रुपद शैली के आदर्श अथवा नमूने को सामने रखकर विलम्बित में पदावली कीर्तन का निर्माण किया। यह आविष्कार बंगाल के खेतरी नाम के स्थान पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया गया। जहाँ तक वृन्दावन की ध्रुपद शैली की परम्परा का सम्बन्ध है सम्भव है कि वहां के लोगों को इस बात में ग्वालियर से या उसके आस-आप के स्थानों से प्रोत्साहन मिला हो। परन्तु हमें मालूम है कि वृन्दावन और मथुरा में वहाँ के अपने अलग-अलग ध्रुपद के घराने हुए और जिनमें कृष्णदास और हरिदास ऐसे कलावन्त सम्मिलित थे। यह सब संगीतज्ञ ध्रुपद शैली ही के अनुयायी थे।

बीजापुर

उत्तरी भारत के संगीत क्षेत्र के बहुत से लोग इस बात से शायद परिचित नहीं हैं कि बीजापुर संगीत की ध्रुपद शैली का बड़ा भारी केन्द्र था। सुल्तान इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय सम्राट अकबर का समकालीन था। जीवन भर एक संगीत के सच्चे भक्त होने के नाते वह संगीत के रस में ही डूबा रहा। किशोर अवस्था से ही वह ऊँचे शास्त्रीय और परम्परागत संगीत का प्रेमी और भक्त हो गया था।

असद बेग की बीजापुर यात्रा के वर्णन से हमें पता चलता है कि बीजापुर हिन्दुस्तानी संगीत का इतना बड़ा केन्द्र था कि सम्राट अकबर का ध्यान भी बीजापुर राज्य की तरफ आकर्षित हुआ था। असद बेग 16–3–1604 में बीजापुर गया। इस समय की घटनाओं का वर्णन करते हुए असद बेग लिखता है कि सत्ताइस तारीख की रात को शाही महल में बादशाह इब्राहीम आदिल शाह को विदाई का प्रणाम करने गया। इस अवसर पर एक बड़ी शानदार संगीत सभा का आयोजन किया गया था जहाँ पर गायकों और वादकों की बड़ी चहल-पहल थी। इब्राहीम आदिल शाह संगीत में इतना तन्मय था कि उसने असद बेग के पूछे गये प्रश्नों का कोई भी उत्तर न दिया। और जो कुछ थोड़ा-बहुत वार्तालाप हुआ वह संगीत और संगीतज्ञों के विषय ही में था।

हमको यह याद रखना चाहिए कि सोलहवीं शताब्दी में संगीत की ध्रुपद शैली ही का चारों ओर प्रचार था। प्राचीन संगीत की वही सर्वोच्च शैली थी।

सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह की संगीत पर लिखी गयी किताब 'किताबे-नौरस' की प्रस्तावना में एक आधुनिक लेखक इस प्रकार लिखते हैं:—
"इब्राहीम ध्रुपद शैली का पारंगत था। यह शैली इतनी लोकप्रिय थी कि मुगल बादशाह जहाँगीर भी उसकी तरफ आकर्षित हुए। जहाँगीर का कहना है कि यह किताब ध्रुपदों के माध्यम ही में लिखी गयी है और सुल्तान ने खुद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बख़तर नाम के व्यक्ति से ध्रुपद की संगीत-शिक्षा पाई। यह भी कहा जाता है कि एक अवसर पर चार हजार कुशल संगीतज्ञ वहाँ जमा हुए थे। सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह की इच्छा थी कि निपुण संगीतज्ञ सदैव उनके दरबार को सुशोभित करे।"

इस बात से पता चलता है कि ध्रुपद-गायन लोगों में लोकप्रिय था और केवल बीजापुर के दरबार में ही वह चाव से नहीं सुना जाता था परन्तु पूरे राज्य में उसकी लोकप्रियता स्थापित हो गई थी।

सच तो यह है कि सम्राट जहाँगीर और सम्राट शाहजहाँ दोनों ध्रुपद संगीत को चाव से सुनते थे और उसको प्रोत्साहन भी देते थे। इस जमाने के मशहूर और प्रतिभाशील ध्रुपद-गायकों में जगन्नाथ कविराम, दिरंग खाँ और गुणसमुद्र लाल खाँ का, जो विलास खाँ के दामाद थे, बहुत नाम था।

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में भी, जब मुहम्मद शाह देहली का बादशाह था, ध्रुपद शैली का बड़ा बोलबाला था। देहली दरबार के नियामत खाँ सदारंग ध्रुपद गायक भी थे और बीनकार भी थे। वह सेनिया घराने के असली ध्रुपद से परिचित थे और उसी की प्राचीन परम्परा के अनुयायी थे।

अंग्रेजी राज्य के स्थापित होने से आधुनिक संगीत की अवनति हुई और ध्रुपद गायन का पतन हुआ। शाह आलम द्वितीय के राज्य काल में संगीत को बहुत धक्का पहुँचा और वह अपनी अवनति की आखिरी सीढ़ी पर पहुंचा।

विश्नूपुर का ध्रुपद केन्द्र

बंगाल में विश्नूपुर (बंकुरा) भी ध्रुपद की संगीत शैली का केन्द्र माना गया है। शाह आलम द्वितीय के समय में देहली के दरबार का पूरा पतन हो गया था। आर्थिक संकट में बहुत बुरी तरह से फंसकर संगीतज्ञ लखनऊ, बनारस, बेतिया, विश्नूपुर ऐसे स्थानों में आश्रय ढूंढने लगे। इनमें विशेषकर सेनिया कलाकार थे। अठारहवीं शताब्दी के अन्त के पहले सेनिये घराने के बहादुर खाँ और पीर बख्श पखावज वादक विश्नूपुर के राजा रघुनाथ सिंह द्वितीय के दरबार में नियुक्त थे। इसी काल से बंगाल में ध्रुपद शैली का प्रादुर्भाव हुआ।

ध्रुपद का आदिकाल

इस वर्णन के अन्त में एक और बात कहना आवश्यक है। वह यह है कि ध्रुपद के जन्म के पहले हमारा प्रबन्ध गीति जातिराग और ग्राम राग से ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्पन्न हुआ था। इसका संकेत हमको 'नाट्यशास्त्र', 'बृहद्देशी', 'संगीत समयसार', 'संगीत रत्नाकर' इत्यादि शास्त्रों में मिलता है। कई सदियों के बाद और कई रूपों में बदलते हुए यह शैली ध्रुपद के रूप में बहुत समय के पश्चात् संगीत में आई। आगे चलकर बानियों का जन्म हुआ। अकबर के युग में हमें चार विशेष बानियों का निश्चित रूप से पता चलता है। इसके बाद सेनिया घराने की ध्रुपद शैली का नियमित विकास सही ढंग से होता है जो और ध्रुपद की शैलियों की जन्मदाता बन गयी। इस प्रकार ध्रुपद का आधुनिक रूप धीरे-धीरे हमारे सामने आया।

खेद है कि अब सेनिया ध्रुपद परम्परा का लोप सा हो गया है। इसीलिए जब कभी हम किसी सेनिया गायक या वादक का नाम सुनते हैं तो हम उत्सुकता से उसके गायन या वादन में तानसेन परम्परा की ध्रुपद शैली का छाया ढूंढ़ते हैं। यदि हमें इसका थोड़ा-बहुत सबूत भी मिल जाता है तो हमको हर्ष होता है कि इस शैली का अभी तक पूरा अन्त नहीं हुआ है। हमारे इस युग में जब ध्रुपद-गायन का रिवाज ही धीरे-धीरे खत्म हो रहा है तो ध्रुपद शैली के पुराने सिद्धान्तों को सुरक्षित रखना एक बड़ा असम्भव सा काम है। परन्तु यदि अपने संगीत की प्राचीन शैलियों को हम सुरक्षित रख सकते हैं तो सांस्कृतिक क्षेत्र में यह एक बड़ा महान् कार्य होगा जिसके लिए इस देश के संगीत-प्रेमी और संगीतज्ञ पूर्णरूप से आभारी होंगे। प्राचीन संगीत का उद्धार ऐसे ही कामों से हो सकता है।

● ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय तीन

शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत क्या है ?

अक्सर हम लोगों के मुंह से ऐसे शब्द सुना करते हैं जैसे "भारतीय संगीत", "देशी संगीत", "राष्ट्रीय संगीत" और "हिन्दुस्तानी संगीत", जिनको अभी हम शायद कुछ अधूरा सा ही समझते हैं। "भारत का संगीत" अथवा "भारतीय संगीत" कहने से हमारा मतलब भारत ऐसे देश के संगीत ही से होता है। राष्ट्रीय शब्द के प्रयोग करने से हम अपनी राष्ट्रीय भावना ही पर जोर देते हैं। यदि हम कहें "जनता का संगीत" तो उसमें एक दूसरी भावना आ जाती है। हम जिस संगीत की चर्चा करते चले आये हैं उसे हम यथार्थ में जनता के नाम से नहीं पुकार सकते। वह आम जनता का संगीत नहीं है। संगीत भी और ललित कलाओं की तरह एक विशेष ललित कला है जिस पर भारतीय छाप पड़ी है। परन्तु इस संगीत को हम केवल भारतीय संगीत के नाम से नहीं पुकार सकते। ऐसा कहने से एक भ्रम होगा। इसका एक कारण है। जब हम "भारतीय संगीत" ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उसका अर्थ यही होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि हम पूरे देश के संगीत की बात कर रहे हैं। ऐसा कहने में हम एक बात को भूल जाते हैं।

भारतवर्ष में दो पद्धतियां हैं जहाँ तक संगीत का सम्बन्ध है। पहली पद्धति को हम "हिन्दुस्तानी संगीत" के नाम से पुकारते हैं और दूसरी को "कर्नाटक संगीत" के नाम से। इसलिये हमारे व्यापक संगीत के दो प्रकार हैं। जिसको हम हिन्दुस्तानी संगीत कहते हैं और जिसकी चर्चा हम यहां पर कर रहे हैं वह हिन्दुस्तानी संगीत के नाम ही से पुकारा जाता है। कुछ लोग इसे उत्तरी भारत का संगीत भी कहते हैं, जैसे कर्नाटक संगीत दक्षिण भारत का संगीत कहलाता है। इतिहास की दृष्टि से हिन्दुस्तानी संगीत को उत्तरी भारत का संगीत कहने में कोई आपत्ति नहीं है। उसके जन्म-स्थान की बात करते हुये ऐसा कहना अनुचित न होगा। परन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि उसे हम केवल उत्तरी भारत का संगीत नहीं कह सकते। वह भारतवर्ष के उत्तर ही में सीमित न होकर पूरे भारतवर्ष में फैला हुआ है। दक्षिण के कुछ विशेष हिस्सों को छोड़कर, जहां पर कर्नाटक संगीत का राज्य है, पूरे देश में यह संगीत फैला हुआ है। हम उसको उत्तर भारत ही में सीमित नहीं कर सकते। परन्तु फिर भी हम उसे "हिन्दुस्तानी संगीत" के नाम ही से पुकारते हैं। उसकी पद्धति और उसकी विचारधारा का जन्म बहुत पहले सामवेद के संगीत में हुआ था और जब हम इसके साथ "आधुनिक" शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका अर्थ यही है कि इस संगीत को अकबर के युग से लेकर वर्तमान काल तक हम देखते हैं। अकबर के युग की ध्रुपद-परम्परा से लेकर अब तक के संगीत को हम आधुनिक ही मानेंगे।

हिं.संगीत vs कर्नाटक संगीत

परन्तु संगीत की इन दो अलग-अलग पद्धतियों का वर्णन करने से यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि यह एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत है। ऐसा नहीं है। सांस्कृतिक रूप से यह दोनों हमारी सांस्कृतिक आत्मा के दो अनिवार्य अंग हैं। कर्नाटक संगीत की बहुत सी रागें हमारी रागों से मिलती-जुलती हैं। कुछ के और दूसरे नाम हैं और वह हमारी रागों से बहुत कुछ अलग भी है। हमारे स्वर लगाने का ढंग दूसरा है, उनका दूसरा। हमारी तालें ज्यादा कठिन हैं और अधिक विस्तारपूर्वक भी हैं। मगर उनमें मिलती-जुलती भी हैं। हमारे रागों का भाव-प्रदर्शन उनसे कहीं ज्यादा व्यापक है और हम अपनी रागों का इनसे कहीं ज्यादा सूक्ष्म, भावुक और कलात्मक विश्लेषण भी करते हैं। यह कहना भी गलत न होगा कि हमारे संगीत का माधुर्य बिल्कुल निराला है। वह उनके संगीत में नहीं मिलता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्नाटक संगीत और प्रभावों से इतना प्रभावित नहीं हुआ जितना हमारा हिन्दुस्तानी संगीत। इसी कारण शायद कर्नाटक संगीत में एक प्रकार की सभ्य कट्टरता है और वह इतना रोचक, भावुक और परिवर्तनशील नहीं रहा है, जितना हिन्दुस्तानी संगीत। और बहुत सी बातें हैं जिनका वर्णन हम यहां नहीं कर सकते। यह अवश्य है कि यहाँ पर हमको ठीक-ठीक हिन्दुस्तानी संगीत की व्याख्या करनी चाहिये और जानना चाहिये कि वह क्या है।

यदि कोई पूछे कि हिन्दुस्तानी संगीत क्या है तो संक्षेप में इस प्रश्न का हमको उत्तर देना चाहिये। हमें ठीक-ठीक जानना चाहिये कि "हिन्दुस्तानी संगीत" से हमारा क्या अभिप्राय है। और हमें यह भी जानना चाहिये कि उसकी व्यापक और विस्तृत परम्परा क्या है और किस प्रकार उसके गायक और वादक और नृतक इस कई सौ वर्षों की महान् परम्परा के अन्तर्गत हैं। इसके मौलिक सिद्धान्तों को भी जानना आवश्यक है। परन्तु इसके साथ-साथ उसकी परम्परा को जानना भी उतना ही आवश्यक है। ऐसा करने ही से हमें एक प्राचीन, उन्नतिशील और परिवर्तनशील कला के असली इतिहास का पता चलता है। और जभी हम उसकी सैकड़ों बरस पुरानी भावुक और महान् आत्मा को समझ सकते हैं। प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत के मूल सिद्धान्तों को जानने के लिये हमें वैदिक युग की ओर देखना पड़ेगा। विद्वानों का कहना बहुत हद तक सही है कि हमारे संगीत का जन्म मन्दिरों में हुआ और उसका पहला ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक संकेत हमें सामवेद में मिलता है। इसी कारण भारत का "नाट्यशास्त्र" ही हमारी संगीत विद्या का पहला स्रोत है। इस महान् कृति से ही पता चलता है कि हमारे प्राचीन संगीत की रूपरेखा क्या थी और उसके अन्तर्गत क्या-क्या मौलिक सिद्धान्त थे।

परन्तु संगीत के प्राचीन नियमों और सिद्धान्तों के अलावा हमें उसकी क्रियाशीलता को भी जानना चाहिये। हमें उसका व्यावहारिक रूप भी समझना चाहिये। सामान्य रूप से हमें उसके बारे में कुछ मुख्य-मुख्य बातें भी जानना चाहिये। वैदिक काल के पश्चात् हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति बराबर होती रही। हम उसकी इस परिवर्तनशीलता को कदापि नहीं भूल सकते। प्रत्येक महान् कला में परिवर्तन होना आवश्यक है। वैदिक संगीत कुछ और था और उसके बाद का संगीत कुछ और। संगीत कला की दृष्टि से बदलता ही रहा क्योंकि परिवर्तन उसके जीवन का सिद्धान्त था। भारत के ग्रंथ से हमें एक विशेष काल और युग के संगीत के बारे में ज्ञान होता है। इसी प्रकार शारंग देव के "संगीत रत्नाकर" से हमें हिन्दुस्तानी संगीत के एक दूसरे युग का ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है। परन्तु हमारे संगीत की आत्मा के स्वभाव और चरित्र में और उसके सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं आया। उसकी एकता का भाव सदैव एक सा रहा है। परन्तु परिवर्तन होते ही रहे। इसलिये कि वह एक जीवित और परिवर्तनशील कला थी। उसमें जीवन का दिव्य प्रोत्साहन था, शक्ति थी और उन्नति करने की प्रबल इच्छा भी थी। परिवर्तन तो उसी कला में होते हैं जिसमें जीवित रहने की शक्ति होती है। और उसी कला की उन्नति होती है जिसमें परिवर्तन स्वीकार करने और ग्रहण करने की स्वाभाविक क्षमता होती है और स्फूर्ति भी होती है। इसलिए यह हिन्दुस्तानी संगीत को एक उन्नतिशील, जीवित कला ही मानते हैं। उसकी आत्मा अमर है। लोगों की यह भूल है जब वह यह कहते हैं कि प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत का पूर्ण पतन हो गया है या सर्वनाश हो गया है। उसमें अच्छे और बुरे परिवर्तन अवश्य होते रहे हैं। कभी-कभी वह आगे बढ़ते दिखाई दिया और कभी-कभी पीछे अवनति की ओर जाते दिखाई दिया। परन्तु यह तो केवल उसके परिवर्तनों का अपना चरित्र और स्वभाव था। यदि उसकी अवनति हुई तो उसका अन्त तो नहीं हो गया। आशावादी सदैव एक सुनहरे युग की कल्पना करते हैं। निराशावादी ही पतन और नाश का नारा पुकारते हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत को समझने के लिए केवल इतना ही काफी नहीं है कि हम उसके प्राचीन शास्त्रीय सिद्धान्तों और तत्वों को जानें। उसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि हम उसके व्यावहारिक रूप को भी जानें। इस संगीत के रस का आनन्द लेने के लिए हमें गायकों के गायन और वादकों के वादन दोनों का आनन्द लेना चाहिए। संगीत का शास्त्रीय ज्ञान होना अच्छी बात है मगर श्रोता की हैसियत से एक संगीत-प्रेमी में संगीत का आनन्द लेने की सहृदयता और भावुकता भी होना चाहिए। गुण-ग्राहक होना और संगीत का पारखी होना उससे कहीं अधिक आवश्यक है। जो लोग केवल संगीत के विषय पर बात कर सकते हैं, छानबीन कर सकते हैं और तर्क भी कर सकते हैं वह संगीत शास्त्र के कीड़े अवश्य हो सकते हैं। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह संगीत का पूरा आनन्द भी ले सकते हैं। उनका मष्तिष्क प्रखर हो सकता है, और उनमें विद्वत्ता भी हो सकती है। मगर मुमकिन है उनके पास संगीत सुनने के लिए भावुक हृदय न हो। और न उनमें वह कोमल भावना ही हो जो संगीत का आनन्द लेने के लिए बहुत जरूरी है। यह जरूरी नहीं कि दिमागदार आदमी सहृदय और भावुक भी हो। संगीत का गुण-ग्राहक होने के लिए बरसों संगीत को सुनना पड़ता है और उसका आनन्द लेना पड़ता है। इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि हमें संगीत में विद्वानों की आवश्यकता है तो उससे अधिक रसिकों की है। संगीतशास्त्री संगीत की उन्नति के लिए इतना प्रोत्साहन नहीं दे पाते जितना भावुक श्रोतागण। संगीतज्ञ पैसा और पुरस्कार ही नहीं चाहता क्योंकि वह तो उसकी जीविका निर्वाह ही से संबन्धित है। वह सच्ची प्रशंसा और 'दाद' को अधिक चाहता है। और जब उसकी कला को किसी पारखी की प्रशंसा मिलती है तो उसके संगीत को बड़ा भारी प्रोत्साहन मिलता है। गुण ग्राहकता गुण की उन्नति का कारण बनती है।

हिन्दुस्तानी संगीत की आत्मा भारतीय है। तो उसमें हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न उठाना बड़ी भारी भूल है। हिन्दुस्तानी संगीत ही ऐसी आधुनिक संगीत कला है जिसमें हमारे सांस्कृतिक जीवन का सुन्दर संश्लेषण है, वह भारत की सांस्कृतिक एकता का एक अमर प्रतीक है। जो लोग 'हिन्दू संगीत' और 'मुसलमान संगीत' के नारे लगाते हैं वह भारतीय संस्कृति के इस सिद्धान्त को नहीं जानते। और यदि जान-बूझकर उसको लोग भूल जाते हैं तो वह भारतीय संस्कृति की एकता के भाव के साथ अन्याय करते हैं। इस प्रकार की मानसिक संकीर्णता और देशों में होगी यहां नहीं। हिन्दुस्तानी संगीत की सर्वव्यापकता के सामने ऐसे संकुचित विचार अधूरे और अभारतीय मालूम पड़ते हैं। जिस देश में हरिदास स्वामी के परम शिष्य मियां तानसेन थे और जहां हिन्दू और मुसलमान संगीतज्ञों ने एक साथ शिक्षा प्राप्त की और साथ मिलकर गाया-बजाया वहां पर संगीत को जात-पांत के सिद्धांत पर विभाजित करना बड़ी मूर्खता है। जिस देश में जायसी, अब्दुल रहीम खानख़ाना, शेख़, आलम, नेवाज़ आदि मुसलमान कवियों ने हिन्दी में कविता लिखी और जहां सुखदेव प्रसाद बिसमिल, चकबस्त, रघुपति सहाय फिराक और आनन्द नारायण मुल्ला ने उर्दू कविता के स्तर को ऊंचा किया उस देश में आधुनिक संगीत के मामले में हिन्दू और मुसलिम का प्रश्न उठाना बड़ी भारी भूल है। परन्तु यह अभारतीय भावना एक विशेष वर्ग तक ही सीमित है। सारा भारतवर्ष हिन्दुस्तानी संगीत की हिन्दू-मुसलिम एकता पर गर्व करता है। यह एकता हमारे संगीत की विश्वव्यापकता का भी एक सुन्दर प्रतीक है। इसीलिए हिन्दुस्तानी संगीत पूरे देश की एक अमर निधि है जिसकी सुरक्षा सारा देश करता है। यह अमूल्य देन सारे भारतवर्ष की है।

यह जानना भी आवश्यक है कि यह संगीत नियमबद्ध है और प्राचीन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। कोई भी संगीतज्ञ क्यों न हो वह संगीत के सिद्धान्तों का परित्याग नहीं कर सकता। इस मामले में हिन्दू और मुसलमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायक और वादक संगीत के प्राचीन नियमों और सिद्धान्तों का श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं और सरस्वती की आराधना सब करते हैं। प्राचीन संगीत के पुनीत विचारों के आगे सब अपना सिर झुकाते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत की सैद्धान्तिक मर्यादा और उसकी नियमबद्धता उसके दो अनिवार्य गुण हैं। इनके बिना हम इस संगीत की कल्पना नहीं कर सकते। परन्तु आश्चर्यजनक बात तो यह है कि नियमों से जकड़े हुए इस संगीत में गायक और वादक दोनों के लिए पूरी स्वतन्त्रता है। संगीत के सिद्धान्त उसकी कल्पना और भावुकता में कोई बाधा नहीं डालते। कलाकार को पूरी-पूरी स्वतन्त्रता है कि वह उत्तमता और सुन्दरता से अपनी संगीत-कला को श्रोतागण के सामने प्रदर्शित करे। हमारे संगीत का यह निराला गुण उसकी शोभा को बहुत अधिक बढ़ाता है। यह गुण संसार के हर संगीत में नहीं पाया जाता। गायक अथवा वादक केवल अपनी शिक्षा ही को नहीं गाता और बजाता, उसके संगीत में उसका अपना व्यक्तित्व भी होता है। इसी से एक गायक अथवा वादक के व्यक्तित्व से उसकी कल्पना और भावुकता का पता चलता है।

संगीत स्वरों पर अवलम्बित है। हिन्दुस्तानी संगीत के सात शुद्ध स्वर हैं और पांच विकृत स्वर। यह सब मिलाकर बारह स्वर होते हैं जो बाइस श्रुतियों से निकले हैं। इन श्रुतियों के बिना हम तीन सप्तकों की, जिनका नाम है मंद, मध्य और तार, स्थापना नहीं कर सकते। बहुत ही कुशल गायक जिसने वर्षों अपने गले को साधा है, इनमें से कुछ श्रुतियों को अपनी आवाज में दिखा सकता है। मामूली तौर से गायक बारह स्वरों ही से काम लेते हैं और स्वरों के इन सूक्ष्म दर्जों को वह कण्ठ से आसानी से नहीं दिखा पाते। संगीत-शिक्षा में तीनों सप्तकों के अभ्यास कराने की सुविधा होती है। परन्तु यह तो गले पर निर्भर होता है। कुछ गायक तीसरी तार सप्तक आसानी से ले सकते हैं। शायद इसलिए कि उनकी आवाज पतली होती है। पर प्रत्येक गायक को मन्द्र सप्तक के मध्यम या पंचम सुर तक जाने की आदत डालना चाहिए। कुछ रागें ऐसी हैं जिनमें मंद्र सप्तक के स्वर बिना कहे राग का रूप ठीक सामने नहीं आता है। उदाहरण के लिए जैसे दरबारी और पूरिया है। पतली और बारीक आवाज वाले गायक के कण्ठ से राग दरबारी का गाम्भीर्य नहीं दिखाया जा सकता। इसी तरह जिसने मध्य सप्तक और तार सप्तक के स्वरों का ठीक अभ्यास नहीं किया है उसके कण्ठ से सोहनी और बसन्त ऐसी रागें सुन्दर न लगेंगी। पर अलग-अलग गले की अलग-अलग शक्ति होती है। आवाज के नीचे ऊपर की पहुंच के अनुसार गायक अपने कण्ठ की साधना करता है। ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवाजें बहुत कम सुनने में आती हैं जो तीन सप्तकों पर आसानी से घूम-फिर सकें। शुद्ध और तीव्र स्वरों के अभ्यास के साथ कोमल स्वरों का सही अभ्यास करना भी बहुत आवश्यक है।

रागें तीन प्रकार की होती हैं—सम्पूर्ण, षाडव, औडक, सम्पूर्ण राग में सात स्वर होते हैं, षाडव में छ: और औडव में पांच। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में दस ठाट माने गये हैं। वैसे तो हिसाव के अनुसार बहत्तर ठाट भी हो सकते हैं। परन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की रागें इन दस ठाटों में ही विभाजित हैं। इन ठाटों के नाम दस विशेष रागों पर पड़े हैं जिनके नाम हैं इमन, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और टोड़ी। इन्हीं दस ठाटों से रागें और उनके मिश्रित रूप निकले हैं।

प्राचीन संगीत के सिद्धान्त के अनुसार छ: राग और छत्तीस रागिनियां हैं। रागों के अलावा राग पत्नी, राग-पुत्र और राग-वधू भी होते हैं। आधुनिक संगीत प्रचीन संगीत की तरह इस बात पर जोर नहीं देता कि छ: आदि राग हैं जिनके नाम हैं भैरव, श्री, मालकोश, दीपक, मेघ, और हिंडोल। इनमें से पहली तीन रागें सुबह, शाम और रात को गाई जाती हैं। यही तीन प्रहर हैं जब संगीत प्राय: गाया और बजाया जाता है। बाकी तीन रागें मौसमी रागें हैं। दीपक ग्रीष्म ॠतु में गाया जाता है। मेघ वर्षा में और हिण्डोल शीत काल में। शायद तानसेन के बाद राग दीपक गाने का रिवाज खत्म हो गया था। आधुनिक गायक दीपक गाना नहीं जानता और न उसको इस राग को गाने की इच्छा भी है। जिस प्रभाव के लिए यह राग मशहूर हो गया है वह अब हमारे संगीत में शायद नहीं है। दीपक एक कल्पित कहानी बनकर रह गया है और इस अंधविश्वास के कारण आज के गायक इस राग की न परवाह करते हैं और न उसके बारे में सोचते हैं। यह एक प्रकार से ठीक ही है।

रही पुत्र-राग, पत्नी-राग और पुत्र-वधू राग की बात, इसको भी आजकल लोग नहीं मानते। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में राग अब पुरुष और स्त्री के रूप में नहीं सोचे जाते हैं। पर वह इसी सम्बन्ध में एक दूसरे सारगर्भित तत्व पर विश्वास ला सकते हैं। वह किसी प्रकार से ठीक ही लगता है। वह यह है कि कुछ रागों में पुरुषत्व का भाव होता है और कुछ में नारीत्व का भाव होता है। इस बात पर यदि हम कुछ ठोस बात कह सकते हैं तो यह अभी हो सकता है जब हम अपने प्राचीन साहित्य के रसों की छानबीन करके देखें कि किस हद तक रागों का भावों और रसों से सम्बन्ध है। ऐसा करने ही पर हम किसी ठीक नतीजे पर पहुंचेंगे। बहुत सुरीली आवाज वाला प्रतिभा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शील, भावुक गायक ही इस बात पर अपने संगीत-प्रदर्शन से प्रकाश डाल सकता है। हम यह तो मानते हैं कि कुछ रागें मर्दाना और जोशीली होती हैं जिनमें हम वीर रस का भाव पाते हैं इसी तरह कुछ रागों में कोमल भावना होती है अथवा हृदय को स्पर्श करने की शक्ति होती है। तो रागों में पुरुष भाव और नारी प्रभाव की बात असम्भव नहीं मालूम पड़ती।

हिन्दुस्तानी संगीत के रागों का अस्तित्व स्वरों पर निर्भर है। इन स्वरों का भी विशेष अर्थ होता है यदि हम इस बात पर विचार करें कि उनसे एक अलग-अलग भाव उत्पन्न होते हैं। किसी भी राग के स्वर उस राग के भावात्मक वातावरण को प्रकाशित करते हैं। जिस ढंग से स्वर एक राग में लगाये जाते हैं उसीसे उस राग के असली रूप का पता चलता है। किस स्वर पर सबसे अधिक ज़ोर देना है और किस पर उससे कम अथवा बहुत कम यह बात तो एक योग्य शिक्षक ही अपने शिष्य को बता और समझा सकता है। केवल उन विशेष स्वरों के नाम जान लेना काफी नहीं है। उनको गाकर या बजाकर ही देखना चाहिए कि उनकी विशेषतायें क्या हैं। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार सामान्य रूप से चार मुख्य स्वर माने गये हैं। पहले वादी स्वर जिसको स्वरों में राजा के समान अथवा सर्वश्रेष्ठ स्वर माना गया है। दूसरा है सम्वादी स्वर जिसकी तुलना प्रधान मंत्री से की गई है। राजा के बाद उसी का स्थान होता है। और अनुवादी स्वर वह होता है जो वादी और सम्वादी स्वरों का मित्र समझा जाता है। परन्तु एक चौथा स्वर भी होता है जिसे विवादी स्वर कहते हैं और वह स्वर एक शत्रु के समान होता है। वह राग के चरित्र और उसके रूप को बिगाड़ता है। इन स्वरों का सही प्रयोग करके ही गायक या वादक अपने राग प्रदर्शन में पूर्ण रूप से सफल होता है। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार स्वरों के छः प्रकार और माने गये हैं जिनके नाम हैं ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, सन्यास और विन्यास।

इसी तरह जैसे दस ठाट माने गये हैं उसी तरह तीन ग्राम भी माने गये हैं जो प्राचीन बाईस श्रुतियों से स्थापित किये गये थे। इनके नाम हैं खरज ग्राम, मध्यम ग्राम और गंधार ग्राम। रागों के इस सूक्ष्म विभाजन में सात मूर्छनायें भी मानी गयी हैं। मूर्छना का सिद्धांत भी प्राचीन संगीत का सिद्धांत है।

परन्तु इस विषय में यह कह देना आवश्यक है कि इन स्वरों के प्रकारों और भेदों को पढ़कर जान लेना एक बात है। मगर उन्हें व्यावहारिक रूप से किसी गायक से समझना दूसरी बात है। वादी स्वर की परिभाषा जान लेना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही काफी नहीं है। असली बात तो यह है कि किसी राग में उसका प्रयोग कैसे किया जाय। गुरू ही अपने शिष्य को बतायेगा कि राग ललित में उसके वादी स्वर मध्यम को कैसे लगाना चाहिए। और फिर इस राग में धैवत का प्रयोग कैसे करना चाहिए। यह भी एक योग्य गुरू ही बतायेगा और तभी शिष्य को इस राग का पूरा आनन्द आयेगा। हमने ऐसे गायकों के बारे में भी सुना है जो रागों के सही नाम तक तो जानते नहीं थे मगर जब उन्हें गाते थे तो बहुत उम्दा गाते थे। इस प्रसंग में एक ऐसे गायक के बारे में बताकर ही हम इस बात का उदाहरण दे सकते हैं। एक मशहूर ठुमरी गायक, जिनका भारतवर्ष भर में नाम था, रागों का भी शौक करते थे और सामान्य रागों को बहुत ही अच्छा गाते थे। एक दिन वह बड़ा सुन्दर गाये और सुनने वालों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। कुछ घण्टों के बाद एक उनके जान-पहचानवाले ने उनसे उनके संगीत की प्रशंसा करते हुए कहा—"आज सुबह तो आप टोड़ी बहुत ही खूब गाये। क्या कहने हैं।" इस प्रशंसा को सुनकर वह प्रतिभाशील, कुशल गायक बोले—"मैं क्या जानूं टोड़ी वोड़ी क्या होती है ? मैं तो कांकरिया जिन मारो लंगर, वाली अस्थायी गाया था।" यह सच था कि उनको रागों का कोई विशेष ज्ञान नहीं था और न उन्होंने रागों की शिक्षा प्राप्त की थी। रागों के नाम सुन रखे थे मगर उनके वादी और सम्वादी स्वरों की परिभाषा नहीं मालूम थी। और न वह यह जानते थे कि राग टोड़ी के नाम से एक ठाट भी होता है। वह यह बात भी नहीं जानते थे कि टोड़ी के प्रकार भी होते हैं। मगर जब वह गाये तो वह इस राग को बहुत सही और बहुत सुन्दर गाये। यह एक सच्ची घटना है और इसीलिए इसका उदाहरण यहां दिया जा रहा है।

यह गायक संगीत से अवश्य अनभिज्ञ थे और उनकी जानकारी भी बहुत कम थी। वादी और सम्वादी स्वर की बात तो बाद में आती है उन्हें तो रागों के सही नाम भी नहीं मालूम थे और न वह यह जानते थे कि टोड़ी ठाट से और भी रागें निकली हैं या टोड़ी के कई प्रकार होते हैं। परन्तु यह न जानना कि वह कौन सी राग गाये इसको सुनकर आश्चर्य होता है। मामूली तौर से गायक इतने बेखबर नहीं होते। परन्तु देखने की बात यह है कि यह सब न भी जानते हुए वह राग टोड़ी बहुत ही अच्छा गाये। रागों के स्वरों के बारे में शास्त्रीय ज्ञान होना बड़ी अच्छी बात है। उससे एक व्यक्ति की जानकारी का पता चलता है। मगर बगैर यह सब जानें किसी राग को कलात्मक ढंग से गाना बड़े मार्के की बात है। राग के असली तत्व को जानना और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसको कुशलता और कलात्मक ढंग से गाना ही सबसे बड़ी चीज है। परन्तु फिर भी हम यह कहेंगे कि आधुनिक युग में संगीत की ऐसी सामान्य जानकारी आजकल के एक पढ़े-लिखे गायक या वादक के लिए जरूरी है। यह बात तो सबको मानना ही पड़ेगी कि संगीत का शास्त्रीय या कितावी ज्ञान और बात और उसके नियमों और सिद्धांतों का गायन अथवा वादन में व्यावहारिक ढंग में प्रदर्शन करना बिल्कुल दूसरी और ऊँची बात है। संगीत पढ़ने की चीज नहीं है। संगीत तो गाने-बजाने की कला है। शास्त्रीय ज्ञान होना दूसरी बात है मगर संगीत में—गायन या वादन में—उस ज्ञान का प्रयोग करना ही असली बात है।

रागों के विषय में यह भी जानना आवश्यक है कि कुछ राग पूर्वांग होते हैं और कुछ उत्तरांग। इसके साथ-साथ यह भी जानना चाहिए कि कुछ ऐसी रागें हैं जिन्हें हम संधि प्रकाश राग के नाम से पुकारते हैं। इनका समय सूर्योदय और सूर्यास्त है। इसी समय यह राग अच्छे मालूम पड़ते हैं।

मगर रागों की सामान्य व्याख्या की कसौटी ही एक राग की परिभाषा है। क्या सामान्य रूप से हम यही कहेंगे कि राग कुछ विशेष स्वरों का समूह है जिसमें कुछ स्वर कुछ खास ढंग से लगाये जाते हैं जिनसे हमें एक विशेष भावात्मक वातावरण का आभास होता हैं? परन्तु इसके पहले, कि हम कुछ और बात इन रागों के विषय में कहें, यह कहना बहुत आवश्यक है कि भारतीय संगीत ही संसार का ऐसा संगीत है जिसमें राग-पद्धति है। और किसी संगीत में ऐसा नहीं है। ईरानी संगीत में "नग़मा" था जो थोड़ा-बहुत हमारी रागों में मिलता-जुलता था। परन्तु ईरान के संगीत में कोई विशेष राग-सिद्धांत अथवा राग-पद्धति नहीं थी। विश्व के संगीत में हम ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं पाते। पाश्चात्य के लोग राग को मैलोडी के नाम से पुकारते हैं मगर यह भी गलत है। इससे भ्रम होता है कि राग और मैलोडी एक ही चीज है। पाश्चात्य संगीत में मैलोडी का सिद्धांत हारमनी से सम्बन्धित है। हमारी रागों की व्याख्या बिल्कुल दूसरी है। संसार के संगीत के सिद्धांतों में हमारी रागों की व्याख्या कहीं और नहीं पाई जाती। कर्नाटक संगीत में भी हमारे संगीत की तरह रागें होती हैं। मगर फिर भी हमारी रागों की व्याख्या उनकी रागों की व्याख्या से बहुत कुछ अलग है।

तो फिर हम अपनी रागों के विषय में क्या विशेषतायें बतायें। परन्तु इसके पहले हमें यह जानना चाहिए कि राग क्या है। यह तो एक कामचलाऊ एक छोटी सी परिभाषा है यदि हम कहें कि राग स्वरों का समूह है जिसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर एक विशेष ढंग से लगाये जाते हैं। इससे कोई बात बनती नहीं। ऐसा कहने से हम बात को अधूरा ही समझते हैं। और यदि हम कहें कि राग स्वरों का चित्र है तब भी हम पूरी बात नहीं कहते हैं। यथार्थ में राग स्वरों की एक सजीव मूर्ति है या एक जीती-जागती चीज़ है जिसमें जान है, जीवन है और जिसके हृदय में धड़कन भी है। वह एक ज़िन्दा और जीवित मूर्ति है जो मूक नहीं है पर जिसमें बोल चाल भी है। राग में प्राण है, जीवन है और उसके जीवन में कंपन है, शक्ति है, गति है। प्रत्येक राग का निर्माण उसके स्वर ही करते हैं। स्वर संगीत की मूक भाषा नहीं है परन्तु वह उसकी अलौकिक वाणी है। स्वरों में जान है और जीवन है और उनमें एक राग के दिल की हरकत भी है। यह जीती-जागती सजीव मूर्ति तो है मगर उसके हाथ-पैर भी हिलते-डुलते हैं और उसकी आंखें भी कुछ बोलती हैं और जिसकी वाणी को गायक या वादक ही समझता है, दूसरा नहीं। राग अब सामने आकर खड़ी हो जाती है और तो उसकी भाव भंगी को, उसके सूक्ष्म संकेतों, उसकी कोमलता और उसकी भावुकता को और उसकी चंचलता और उसके गाम्भीर्य को संगीतज्ञ ही समझता है या फिर एक सहृदय, भावुक श्रोता ही जानता है। कभी-कभी कोई कलाकार एक राग के ढांचे को हमारे सामने खड़ा कर देता है और उसकी हड्डियों तक को हम वैज्ञानिक ढंग से गिन भी सकते हैं और उसके पूरे शरीर का सूक्ष्म निरीक्षण भी कर लेते हैं। परन्तु वह एक मृतक शरीर के समान है जिसमें जान नहीं है। वह संगीत के नियमों से जकड़ी हुई एक निर्जीव मूर्ति के समान है और उसमें जान नहीं है। जो गायक या वादक ऐसी मूक मूर्ति को हमारे सामने खड़ा करता है वह उस राग के जीवित रूप को नहीं जानता। हम उस राग को पहचान जरूर लेते हैं मगर वह जीवित नहीं है और न वह हमसे बातचीत करता है।

यदि सुबह की टोड़ी और कोमल रिखब की आसावरी को सुनकर हमारे रोंगटें न खड़े हो जायें और यदि हमारी आखें डबडबा न जायें तो हमने इन रागों को जीवित और बोलते-चालते देखा ही नहीं। इनको हमारे सामने सजीव लाना एक प्रतिभाशील और सुयोग्य और भावुक गायक अथवा वादक ही का काम है। आधुनिक युग में भी ऐसे संगीतज्ञ हुए हैं जिन्होंने श्रोताओं को रुलाया है और बेचैन किया है। ऐसे ही गायकों ने रागों को सजीव बनाया है। दूसरे संगीतज्ञ ऐसा नहीं कर पाते।

यदि हम रागों से प्रेम करते हैं और यदि हम उनके स्वरों को सुनकर आनन्द से भर जाते हैं तो इसका श्रेय उस संगीतज्ञ को है जो उस राग को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे सामने गाता है परन्तु हम उस राग को इतनी अच्छी तरह से इसलिए जानते हैं क्योंकि हम उसके व्यक्तित्व से परिचित हैं। प्रत्येक राग का अपना व्यक्तित्व होता है क्योंकि वह जीवित है और उसमें जान है और उसमें जीवन की अद्‌भुत शक्ति भी है। अगर ऐसा न होता तो रागों का प्रभाव भावुक श्रोता के हृदय पर न पड़ता। गायक अथवा वादक रागों की व्याख्या करता है और उनके स्वरों से जो भाव प्रदर्शित होते हैं उनका अनुवाद भी वह अपने संगीत से अपने श्रोताओं के लिए करता है। रागों के भावों और रसों की व्याख्या गायन अथवा वादन में करना प्रत्येक कुशल और भावुक संगीतज्ञ का कर्तव्य है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता तो यह उसकी कला का दोष है, रागों का नहीं।

यदि इस विषय पर बात करते हुए हम किसी ख्याल-गायक ही का उदाहरण लेते हैं तो हमें जानना चाहिए कि स्वरों से अलग-अलग भावों की व्याख्या करने के लिए उसके पास दो ही साधन हैं। पहला साधन तो 'नोम तोम' की क्रमबद्ध ध्रुपद की शैली है और दूसरा साधन है ख्याल की रचना जिसके स्थायी और अन्तरे के द्वारा वह एक राग का विस्तार और कलात्मक विशेषण करता है। पहले साधन अथवा 'नोम तोम' में शब्द नहीं होते, स्वर ही होते हैं। सुरीली और बहुत सधी हुई आवाज के द्वारा ही एक गायक किसी राग के आलाप से अपने श्रोतागण को भाव या रस से प्रभावित कर सकता है। मगर वह तभी ऐसा कर सकता है जब उसे आलाप की आदत है और वह उसके बाद एक धमार की बंदिश भी कायदे से गा सकता है। ख्याल-गायकों में हजार में एक ऐसा होता है जो आलाप से अपने श्रोताओं को मना सकता है और मोहित कर सकता है। इसलिए अधिकतर ख्याल-गायक ख्याल की रचना ही के द्वारा रागों के भावों और रसों का आनन्द अपने श्रोताओं को देते हैं। रचना के शब्द, जो बहुत रोचक और उपयुक्त होते हैं, गायक की बहुत सहायता करते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई गायक राग बागेश्वरी गा रहा है तो "कौन गत भई मोरी रे, पिया न पूछे कोई बात" ऐसे भावुक और उपयुक्त शब्द गायक की इस बात में बड़ी सहायता करेंगे। यदि वह एक ऊँचा प्रतिभाशील गायक है तो वह राग का 'खंडिता नायिका' वाला भाव भी स्वरों के कलात्मक और प्रयोग के जरिये दिखा सकता है। यहाँ पर शब्दों का ही नहीं, स्वरों का भी सही उच्चारण और उनका भावुक लगाव ही काम देगा। मगर जहां तक ख्याल की बंदिश का सम्बन्ध है, गायक उसके शब्दों की मदद से इस राग के स्वरों द्वारा जो करना चाहता है कर सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत और भाषा

तो इसलिए अब हमें इस बात पर भी थोड़ा-बहुत संक्षेप में विचार करना चाहिए कि शब्दों का संगीत में क्या स्थान और महत्व है। यह एक सारगर्भित तत्व है जिसका गहरा सम्बन्ध हमारे आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत से है। संगीत तो स्वरों पर अवलम्बित है परन्तु शब्द भी इसके लिए अनिवार्य हो जाते हैं। यदि स्वरों की भाषा मूक होती है तो शब्द स्वरों को वाणी दे देते हैं और उनकी आत्मा को प्रकट करते हैं। जैसा अभी कहा गया कि बिना शब्दों के केवल आलाप के सहारे ही एक राग प्रसारित किया जा सकता है। नोम-तोम का आलाप "अनन्त हरी नारायन" ऐसे शब्दों को लेकर किया जाता है ईन शब्दों की तोड़-मरोड़ से गायक एक राग के स्वरों को इस प्रकार से गाता है कि उस राग का असली रूप आँखों के सामने आ जाता है। आलाप के अटपटे निरर्थक शब्द ही आलाप की भाषा बन जाते हैं और श्रोता स्वरों के सूक्ष्म संकेतों के सहारे ही बहुत आनन्द लेते हैं। परन्तु आलाप से एक राग का रसात्मक विश्लेषण ही किया जाता है और स्वर यहाँ पर प्रधान माने जाते हैं और भाषा अप्रधान होती है।

परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि किसी भी राग के स्वर भी अपने सही अनुवाद के लिए शब्दों के लिए लालायित रहते हैं। मानों वह चाहते हैं कि भाषा उनकी मूक आत्मा को किसी तरह वाणी प्रदान करे। इसलिए ध्रुपद-गायक यदि भावुक है और उसमें कल्पना शक्ति है तो वह स्वरों के ही सहारे श्रोताओं से बातचीत करता है और राग की अपनी निजी बात भी उन्हें बताता है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि उसके स्वरों को भी शब्दों की जरूरत है और उनकी प्रबल इच्छा होती है। कभी-कभी ऐसा मालूम पड़ता कि बिना शब्दों के स्वरों का दम घुटता है। वह अपनी पूरी बात बगैर उनके कह नहीं पाते। इसलिए नोम तोम की भाषा से ही वह अपना काम चलाते हैं। मगर हमें यह याद रखना चाहिए कि स्वर स्वयं नहीं गाते हैं, गायक उन्हें गाता है। और गायक इंसान है। वह भावों और कल्पनाओं वाला भावुक मनुष्य है जो सदैव शब्दों का मुहताज होता है। उसके सामने बैठे हुए श्रोता उसके चेहरे की आकृति और उसकी भाव-भंगी से भी उसके आन्तरिक भावों का कुछ न कुछ पता लगा लेता है। मगर यह काफी नहीं है। बगैर शब्दों के उसका संगीत गूंगा ही सा होता है तो फिर वह ध्रुपद-गायक क्या करता है ? अपना आलाप समाप्त करने के बाद वह एक धमार की चीज शुरू हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है जिनको सुनकर उसके श्रोताओं के कान तृप्त हो जाते हैं। होरी धमार की रचना के शब्द और उनकी मधुर कविता राग के स्वरों के अनुवादक बन जाते हैं। इसके पश्चात् वह दो-एक ध्रुपद की रचनायें भी सुनाता है। और इस तरह स्वरों और शब्दों का मिलन फिर से हो जाता है। राग के माधुर्य को और उसकी सूक्ष्म कल्पनाओं को किसी विशेष संगीत की रचना के जरिये गायक अपने श्रोताओं के सामने कलात्मक ढंग से रखता है। इस कारण उस रचना अथवा बंदिश के शब्द उस राग के स्वरों को नये आभूषणों से सजाते हैं और उसके भावात्मक आकर्षण को भी उत्तेजित करते हैं। यदि शब्द न होते तो कविता कहाँ से होती ? और यदि कविता न होती तो संगीत कहाँ से होता ? एक प्रकार से स्वर नंगे ही से लगते हैं यदि उन्हें मधुर और कोमल शब्दों के वस्त्र न पहनाये जायें। शब्द स्वरों की आत्मा को केवल जगाते ही नहीं, उसे प्रकाशित भी करते हैं।

प्रायः संगीत को हम शब्दों में अलग नहीं करते और न कर सकते हैं। यदि स्वर किसी राग के प्राण होते हैं तो शब्द उसका जीवन होते हैं। शब्दों के सही और मधुर उच्चारण से राग के स्वरों की आत्मा जाग उठती है। प्रत्येक कुशल गायक का धर्म है कि वह अपने संगीत में चाहे वह ध्रुपद हो या ख्याल, शब्दों का सही और सुन्दर उच्चारण करे। केवल राग के स्वरों को प्रधान समझकर शब्दों को फिजूल समझना गायन-कला की दृष्टि से बहुत बड़ी गलती है। कभी-कभी हम किसी गायक के गाये शब्दों को ठीक समझ नहीं पाते। वह उनका उच्चारण सही और साफ-साफ नहीं करता। या तो वह उनको बड़े भद्दे और असभ्य ढंग से कहता है या वह उन्हें खा जाता है और वह ठीक से सुनाई नहीं देते। यह एक गायक के गायन का बहुत बड़ा दोष है। ऐसा गायक शब्दों के महत्व और उनके मूल्य को नहीं समझता। या फिर वह यह समझता है कि शब्द केवल स्वरों का सहारा है और उनकी अपनी कोई अलग विशेषता नहीं है। यह उसकी बड़ी भारी भूल है। यदि राग किसी विशेष भावों से प्रेरित होती है जो उस राग में गायक की रचना के शब्द भी अनुकूल होते हैं। किसी निर्धारित विषय की ओर उस विशेष प्रबन्ध का संकेत होता है। तो इस प्रसंग में यदि गायक शब्दों का ठीक और उपयुक्त उच्चारण न करे तो हमें उसकी उस उदासीनता पर खेद होता है। यदि वह अपने शब्दों पर ध्यान नहीं देता और उसकी तरफ से लापरवाह है तो वह अपने संगीत में उनके महत्व को नहीं समझता। इस कारण वह किसी बंदिश की रचनात्मक शोभा को नहीं जानता। वह यह नहीं जानता कि शब्दों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहारे राग के स्वरों को भी ढंग से प्रसारित किया जाता है। शब्दों को ठीक ढंग से कहने ही में उसके स्वर सुन्दर लगेंगे। यदि वह संगीत में शब्दों की तोड़-मरोड़ और उनके मधुर, स्वाभाविक और संगीतमय उच्चारण से परिचित नहीं है तो उसका गाना फीका लगेगा। शब्दों को नीरस ढंग से कहना इतना ही बुरा है जितना उनका गलत-सलत उच्चारण करना। तो यह कहना अनुचित न होगा कि जो गायक रचना के शब्दों का आनन्द नहीं लेता वह राग के स्वरों को भी उनके सहारे कलात्मक ढंग से नहीं कह पाता है। कुछ गायक जो शब्दों को खा सा जाते हैं अपने श्रोताओं को कविता का कोई भी आनन्द नहीं दे पाते। यदि शब्द हैं "भोर भई पिहरवा जागे" और यदि कोई गायक उन्हें गाये 'भोर भई पेहरवा जागे" 'तो श्रोता पिहरवा' शब्द की जगह 'पेहरवा' यांने किसी पहरेदार की ही कल्पना करेगा। और वह समझ नहीं पायेगा कि गायक क्या कह रहा है ? अनपढ़े अथवा अशिक्षित गायक इस प्रकार की दर्जनों गलतियाँ करते हैं। सुनने वालों को इस बात से सावधान रहना चाहिए।

मगर यह तो हुई एक बात। दूसरी बात है शब्दों का बेजान और नीरस उच्चारण। यदि कोई गायक सूरदास और मीरा के पदों का नीरस उच्चारण करे तो इसका अर्थ तो यही होगा कि वह यह नहीं समझता कि संगीत में कविता का क्या विशेष स्थान है। और यदि वह अपने स्वरों को भी नीरस ढंग से कहे तब तो उसका गायन बहुत गिर जायेगा। शब्दों का सही और भावुक उच्चारण करने से गायक को अपने गायन में एक और बड़ी सहायता उनसे मिलती है। वह यह है कि यदि उसको किसी विशेष राग पर पूरा कलात्मक अधिकार न हो और वह इसके स्वरों को बहुत सुन्दरता से न करने पाये तो उसका गायन शिथिल हो जायेगा। उसकी बचत इसी में है और वह अपने इस दोष को थोड़ा-बहुत छिपा भी सकता है, उस पर पर्दा सा डाल सकता है अगर वह अपनी रचना के शब्दों को बड़ी रोचकता और बहुत भावुक तन्मयता से कहकर अपने श्रोताओं का ध्यान रचना के सौंदर्य की ओर आकर्षित करे। यह गुण उसके स्वरों की व्याख्या की कमी को पूरी कर देगा। किसी संगीत की रचना के स्थायी और अन्तरे को कलात्मक ढंग से किसी विशेष ढंग से भावुकता से गाना और महफिल में रंग जमाना यह भी एक बड़ा गुण है। स्थाई के शब्दों को नई-नई तरकीबों से कहना और उनका अर्थ कलात्मक ढंग से श्रोताओं को समझाना एक ऐसी कला है जिसमें शैली की रोचकता ही सबसे बड़ी चीज़ होती है। यदि उसकी राग की व्याख्या में ज्यादा गहराई नहीं है तो प्रत्येक श्रोता इस कमी को भूलकर शब्दों के सुन्दर उच्चारण और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके माधुर्य का आनन्द लेकर तृप्त हो जाता है। मगर यह कमी को पूरा करने ही की बात नहीं है। शब्दों को सुन्दर ढंग से कहना और उनके अर्थ को स्वरों के सहारे धीरे-धीरे कलात्मक ढंग से समझाना यह कोई मामूली बात नहीं है। अगर हम संगीत को गायन कला की कसौटी पर कसेंगे तो समझ जायेंगे कि यह गुण किसी भी गायक में एक बड़ा गुण माना जायेगा। शब्दों को भावुकता से किस तरह कहना बहुत से गायकों को नहीं आता है। एक कुशल और प्रतिभाशील गायक की गायन कला का गुण यह भी है कि वह अपनी रचनाओं के शब्दों को किसी राग की बंदिश में बड़े सुन्दर ढंग से कहे। इसको आधुनिक संगीत की एक महत्वपूर्ण बात समझना चाहिए। संगीत शिक्षकों का भी यह धर्म है कि वह अपनी संगीत शिक्षा में इस बात पर ज़ोर दें।

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की मुख्य अलग-अलग शैलियों में भाषा के स्थान का बहुत महत्व रहा है। चाहे वह हमारा रागों का शास्त्रीय संगीत हो या हमारा लोकप्रिय संगीत, दोनों में हम संगीत और कविता अथवा स्वर और शब्द का सुन्दर मिलन और भावुक सहयोग पाते हैं। चाहे वह रचना ध्रुपद की हो या होरी धमार की, या ख्याल, या सादरे की, इन सब भिन्न-भिन्न शैलियों की रचनाओं में उत्तम कविता ही का गुण प्रधान रहा है। चाहे वह हिन्दी की किसी शैली में क्यों न हो—व्रजभाषा, अवधी, संस्कृत गर्भित हिन्दी, भोजपुरी, अपभ्रंश, या हिन्दी की ग्रामीण पदावली। सोलहवीं शताब्दी से लेकर अब तक हिन्दुस्तानी संगीत की भाषा हिन्दी ही रही है, वह उसका कोई प्रकार क्यों न हो। इन बहुत सी प्राचीन रचनाओं में कभी-कभी उर्दू और फारसी का पुट भी होता था। मगर भाषा हिन्दी ही होती थी। और सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दू गायकों के साथ भारतीय मुसलमान गायकों ने भी इसी हिन्दी भाषा में संगीत की अपनी रचनायें और बन्दिशें लिखीं। जैसा पहले कहा जा चुका है, हिन्दुस्तानी संगीत की तीन सौ से अधिक वर्षों की पुरानी परम्परा हिन्दू-मुसलिम एकता का सबसे उत्तम उदाहरण है। इस बात में वह हमारे सांस्कृतिक संश्लेषण का केवल प्रमाण ही नहीं है परन्तु सुन्दर प्रतीक भी है। यह एक ऐसा सारगर्भित तत्व है जिसे हमें कभी भूलना नहीं चाहिये परन्तु उसे बार-बार दुहराना चाहिये और उस पर और अधिक जोर देना चाहिए। हमारा संगीत हिन्दू-मुसलिम एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है।

परन्तु यह पूछा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी संगीत ने हिन्दी ही को क्यों अपनाया ? ऐतिहासिक दृष्टि से तो इसका समझना आसान है। परन्तु एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कारण है जिसे हमें जानना चाहिए। इस भाषा में हमारी पौराणिक कथाओं के अलावा हमारा सांस्कृतिक इतिहास, हमारी विचारधारा, हमारे भावों, कल्पनाओं और विचारों की परम्परा भी मौजूद है। कृष्ण और राधा का प्रेम, मथुरा, बरसाना, वृन्दावन, कुब्जा, गोपियाँ, जमुना का तट, कृष्ण की बांसुरी, प्रेम, विरह और सैकड़ों प्रसंग और कथायें, राम, सीता, लक्ष्मण, वनवास, दया, सात्विक, प्रेम, भक्ति इन सब बातों का वर्णन इस भाषा ही में है। यह सब हमारे संगीत की सामग्री है जो इसी भाषा में मिलती है। भाषा भावों और विचारों और कोमल कल्पनाओं का संग्रह है। हिन्दुस्तानी संगीत के लिए इससे अधिक उपयुक्त भाषा और कौन सी हो सकती है ?

इसलिए यहाँ हम देखते हैं कि संगीत और भाषा की गंगा और जमुना साथ-साथ बहती हैं, और हिन्दुस्तानी संगीत की प्राचीन और पुनीत परम्परा त्रिवेणी के समान है जहाँ मिलन और सहयोग दोनों आकर मिल जाते हैं। इस कारण शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत की अमर आत्मा का अनुवाद इसी भाषा में हो सकता है और बहुत समय से होता रहा है। जिस तरह अंग्रेजी भाषा ही में शेक्सपियर, मिलटन, ब्लेक, और शैली का काव्य लिखा जा सकता था। किसी और भाषा में नहीं, और तुलसीदास का "रामचरितमानस" अवधी ही में लिखा जा सकता था और सूरदास का कृष्ण-काव्य केवल ब्रजभाषा में, इसी प्रकार हमारे इस संगीत की भाषा केवल हिन्दी अथवा ब्रजभाषा ही हो सकती थी। इस संगीत का विशिष्ट स्वभाव अथवा चरित्र और उसकी आत्मा, सब इसी भाषा में अंकित हैं। यह भाषा हमारे संगीत ही के लिए बनी थी। दूसरी और कोई भाषा इतनी सहृदय, भावुक, उदारचित, और व्यापक नहीं हो सकती थी। यह भाषा हमारे संगीत का वस्त्र ही नहीं, उसका शरीर भी है। इस कारण जिस हिन्दी का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हमारे संगीत के साथ इतनी सदियों तक रहा है उसकी जगह दूसरी और कोई भाषा नहीं ले सकती। न ऐसा पहले हुआ है और न ऐसा अब कभी होगा।

ब्रजभाषा इतनी महान् और व्यापक भाषा है कि हमारे मुसलमान संगीतज्ञों ने इसी भाषा को पूर्ण रूप से अपनाया और अपने गले लगाया। संगीत का सैद्धान्तिक अध्ययन करने के लिए हमारे बहुत से मुसलमान संगीतज्ञों ने बड़े चाव और परिश्रम से संस्कृत भी सीखी। सैकड़ों मुसलमान संगीतज्ञों ने परम्परागत संगीत के लिए हिन्दी ही को अपनाया। इतना ही नहीं, उनकी आत्मायें भावात्मक और रसात्मक रूप में इस भाषा की आत्मा से मिल गईं घुल-मिल गईं और उसमें डूब गईं। उन्होंने इस भाषा को अपनी ही भाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझा और उसी में वह सोचने भी लगे। उन्होंने उर्दू और फ़ारसी और अरबी के शब्दों को नहीं अपनाया। इसका कारण यह था कि उनकी आत्मा भारतीय थी और उनके संस्कार भी भारतीय थे। अगर ऐसा न होता तो वह कृष्ण की मुरली, राधा के प्रेम और गोपियों के विरह का वर्णन इतनी भावुकता और तन्मयता से अपनी लिखी रचनाओं में न कर पाते। उनका धर्म कुछ सही, वह कृष्ण और राधा के प्रेम और विरह ही की बात करते थे। वह हिन्दुस्तानी संगीत के सच्चे पुजारी और सेवक थे। वह हिन्दुस्तानी थे, भारतीय थे। और वह कोई भाषा संगीत के सम्बन्ध में नहीं जानते थे। यही कारण है कि उनकी संगीत की मौलिक रचनाओं में उनकी भारतीय आत्मा अंकित है और जिसकी छाप को कोई ताकत मिटा नहीं सकती। ऐसा पहले भी था और अब भी है और भविष्य में भी ऐसा रहेगा।

ब्रजभाषा और संगीत

ब्रजभाषा और हिन्दुस्तानी संगीत का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध बहुत समय से है। सोलहवीं शताब्दी के ध्रुपद युग से आधुनिक युग तक ब्रजभाषा का क्षेत्र हिन्दुस्तानी संगीत का क्षेत्र रहा है। यह सम्पर्क ऐतिहासिक है और इस बात पर किसी प्रकार की शंका नहीं की जा सकती। ब्रजभाषा और आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का पालन-पोषण साथ-साथ हुआ है। संगीत और कविता की इस प्रतिष्ठित परम्परा के अन्तर्गत बहुत सी सांस्कृतिक शक्तियाँ आकर एकत्र हो जाती हैं। लगभग एक ही व्यापक और प्रतिभाशील काल के आस-पास अकबर, तुलसीदास, तानसेन, हरिदास स्वामी, सूरदास, अष्टछाप के कवि और ब्रजभाषा के और भी बहुत से कवि और संगीत के क्षेत्र के संगीतज्ञों, विद्वानों और रसिकों का यहाँ पर साथ होता है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। यह महान् व्यक्ति इस काल के स्तम्भ हैं और उनकी अमूल्य निधियाँ हैं। उन्होंने ही इस संगीत और कविता के बड़े युग को स्थापित किया। यह सब अपनी-अपनी जगह युग-प्रवर्तक महान् पुरुष थे। इस बड़े काल के अमर प्रतीक कृष्णकाव्य, रामकाव्य, तानसेन के ध्रुपद और हरिदास स्वामी का अलौकिक गान बने थे। संगीत और कविता की प्रतिभा के इतने अद्भुत चमत्कार एक साथ एक ही लम्बे काल में कभी और नहीं दिखाई दिये।

तानसेन के युग से लेकर अब तक हिन्दुस्तानी संगीत और ब्रजभाषा का चोली दामन का साथ रहा है। ब्रजभाषा ही हमको हिन्दुस्तानी संगीत की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम्परा का माध्यम बनी। संगीतज्ञों, कवियों, गायकों और प्रबन्ध लिखने वालों ने इसी की कोमल पदावली को अपनाया। वह केवल गेय ही नहीं थी। उसमें एक विशेष प्रकार की सांस्कृतिक शक्ति और स्फूर्ति भी थी। हिन्दुस्तानी संगीत की रचनाओं के लिये इससे ज्यादा भावुक और मधुर भाषा और कोई नहीं हो सकती। व्यापक हिन्दी के इस विशेष प्रकार को यह श्रेय था कि वही संगीत की सबसे अच्छी और सुन्दर वाणी बनी। पहले ध्रुपदों की रचना अधिकतर संस्कृत में होती थी अथवा उस मिश्रित भाषा में जिसमें संस्कृत का बाहुल्य होता था। संस्कृत को देववाणी ठीक कहा गया था। मगर उन्नतिशील और परिवर्तनशील हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा को एक रोचक और लोकप्रिय भाषा की खोज थी। ब्रजभाषा ने इस कमी को पूरा किया। संगीत राज-दरबारों से निकलकर जब बाहर आया तो उसने इसी भाषा को अपने विचारों, भावों और अपनी कोमल कल्पनाओं को प्रकट करने के लिए चुना। धीरे धीरे संस्कृत ऐसी महान् देववाणी की जगह ब्रजभाषा ने ही ली जो आम लोगों की लोकप्रिय और सर्वप्रिय भाषा थी।

संगीत के इस प्रतिभाशाली युग में संगीत के क्षेत्र में ब्रजभाषा ही प्रथम भाषा समझी गई। ब्रजभाषा को इस नये स्थान को ग्रहण करना एक तरह से हमारे आधुनिक संगीत के इतिहास में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। प्राचीन शास्त्रीय संगीत ने जब ध्रुपद युग में अपना आधुनिक रूप धारण किया तो इसका बहुत कुछ श्रेय ब्रजभाषा को ही था। हिन्दुस्तानी संगीत के आधुनिक बनने में ब्रजभाषा का बहुत कुछ हाथ था। इस कारण पूरे देश के सांस्कृतिक जीवन में यह एक मार्के की प्रभावशाली घटना थी। संगीत अब लोगों के बीच में आ गया। अकबर के दरबार से निकलकर संगीत ने ब्रजभाषा के सहारे और उसके प्रोत्साहन से जनता में प्रवेश किया। वह यथार्थ में सच्चे रूप से आधुनिक बन गया। ब्रजभाषा जनता की भाषा थी और उसमें गाया गया संगीत भी अब लोगों के अधिक निकट आने लगा।

इसीलिए ब्रजभाषा ही आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के लिए सबसे अधिक उपयुक्त भाषा साबित हुई। यदि उसमें साहित्य के नौ रसों का समावेश था तो उसमें संगीत के भिन्न-भिन्न भावों को प्रदर्शित करने की आश्चर्यजनक प्रतिभा भी थी। गायकों ने अपनी रचनाओं के विषय में ब्रजभाषा की इस अनोखी शक्ति को पहचान लिया। जिस भाषा में वह बात करते थे और लिखते-पढ़ते थे वही उनके संगीत की भी भाषा बनी। यह मामूली बात नहीं थी कि हरिदास स्वामी-तानसेन ध्रुपद-परंपरा ने ब्रजभाषा ही को अपनाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके कई कारण हो सकते हैं, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक। परन्तु जब कोई संगीत-परंपरा किसी भाषा को अपनी विशेष भाषा बनाती है तो उसके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही कारण होते हैं। अगर हमें दो-चार शब्दों में ही इस बात को बताना चाहिए तो हम यही कहेंगे कि हिन्दुस्तानी संगीत का हृदय इसी भाषा को सर्वश्रेष्ठ मानता था और है। उसका कारण यह है जब किसी संगीत की अनुपम, प्रभावशाली और शक्तिशाली प्रतिभा का समुचित और भावुक प्रदर्शन किसी भाषा के माध्यम से होता है तो वह भाषा केवल लिखने-पढ़ने और बोलने ही की भाषा नहीं होती। वह उसकी विशाल और महान् व्यापक आत्मा की भाषा होती है। भाषा अक्षरों से नहीं बनती। भाषा विचारों, भावों और गंभीर और सूक्ष्म कल्पनाओं के प्रभावशाली सहयोग से बनती है। वह नदी के प्रवाह की तरह होती है जिसमें बहुत सी लहरें होती हैं। वह एक देश की मानसिक, आध्यात्मिक, और आन्तरिक निधि होती है जिसमें हजारों विचार, भाव और सूक्ष्म भावनायें छिपी होती हैं। वह हमारा सबसे बहुमूल्य धन होता है जिसे हमने सैकड़ों वर्षों के परिश्रम से जमा किया है।

तो संगीत की प्राचीन परंपरा का इस नये युग में सही अनुवाद करने के लिए ब्रजभाषा ही हर प्रकार से उपयुक्त साबित हुई। वह संगीत की रचनाओं को भावुक और प्रभावशाली माध्यम इस कारण भी बनी कि उसमें यह शक्ति थी कि वह उसकी बहुमूल्य परंपरा का भी प्रदर्शन बड़ी भावुकता और तन्मयता से कर सकती थी। वह हमारे हिन्दुस्तानी संगीत की प्रभावशाली परंपरा का दर्पण बनी जिसमें हमारे संगीत का अपना सौंदर्य प्रतिबिम्बित था। संगीत की समूची परंपरा को अपनी मधुर रचनाओं के द्वारा ब्रजभाषा ने प्रदर्शित किया। यह उसका एक महान् कार्य था। कवियों और गायकों ने उसकी अपनी प्रिय भाषा बनाई। हिन्दुस्तानी संगीत की सर्वश्रेष्ठ रचनायें ब्रजभाषा में लिखी जाने लगीं। संगीत की नई रचनाओं का निर्माण इसी भाषा के द्वारा हुआ। ऐसा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि अवधी और हिंदी के और प्रकारों में संगीत की रचनायें नहीं हुईं। हुईं मगर बहुत कम। इस मामले में ब्रजभाषा ही को प्रथम स्थान मिला और गायकों, कवियों और प्रबन्धकों ने भी इसी को प्रधानता दी।

ब्रजभाषा में कुछ ऐसे गुण हैं जो संगीत की रचनाओं के लिए बहुत उपयुक्त हैं। विभिन्न रसों की व्याख्या भी इस भाषा में बहुत सुन्दर ढंग से की गयी है। भक्ति और शृंगार के लिए यह भाषा विशेष रूप से उपयुक्त है। संगीत में जिन और भी रसों का समावेश होता है उन सबके लिए भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रजभाषा बहुत उपयुक्त साबित हुई है। दूसरी भाषा में न तो वैसी मिठास है और न वैसा माधुर्य और न वैसी व्यापक भावुकता। संगीत के लिए इस भाषा के शब्दों को जितनी स्वतन्त्रता और आसानी से बदला जा सकता है कि वह कानों को अच्छे लगें उतना और किसी भाषा में नहीं हो सकता। उसका कारण यह है कि ब्रजभाषा के शब्दों की तोड़-मरोड़ आसानी से हो सकती है। व्याकरण के हिसाब से उसके कुछ अशुद्ध रूप भी संगीत के लिए अक्सर भावुक और अधिक गेय बन जाते हैं। संगीत का विशेष सम्बन्ध कान से है। कर्णकटु, कर्कश, ध्वनियां जिन शब्दों में होती हैं उनका प्रयोग संगीत में नहीं होता। व्याकरण की दृष्टि से शब्दों के अशुद्ध और अपरिमार्जित रूपों को ठीक नहीं माना जा सकता। परन्तु गायन-कला की विशेष आवश्यकताओं के हिसाब से बहुधा शब्दों के अशुद्ध और अपरिमार्जित रूप ही अधिक मधुर और गेय माने जाते हैं। उदाहरणार्थ "परमेश्वर" "परमेसुर और लक्ष्मण लखन" हो जायेगा। गायक लक्ष्मी शब्द का उच्चारण "लछमी" ही करेगा और कृष्ण न कहकर "कान्हा" ही कहेगा। और कृष्ण की बांसुरी को "बंसुरिया" ही कहके पुकारेगा। यह पूरी आज़ादी कवि और गायक को है।

यह तो हम जानते ही हैं कि ब्रजभाषा कितनी मधुर और कोमल है। ध्रुपद, होरी, ख्याल, दादरा, ठुमरी कुछ भी हो, ब्रजभाषा प्रत्येक गायन की शैली की रचनाओं को मधुर बनाती है। आश्चर्य इस बात का है कि मुसलमान गायकों ने इसी भाषा में बड़ी सुन्दर रचनायें लिखीं। इस आधुनिक युग में कुछ विशेष मुसलमानों ने इस भाषा का सदुपयोग करके बड़ी-बड़ी अच्छी रचनायें लिखीं जो अब तक दूसरे गायक बड़े चाव से गाते हैं। राग आनन्दी की रचना "हे बारे सैंया सकल बन ढूंढू" अथवा "अजहूं न आये श्याम बहुत दिन बीते। पलखन डगर बहारूं और मग झाकूं आये मोरे धाम।" आज बहुत से गायक गाते हैं। दोनों कविता और संगीत के बड़े अच्छे उदाहरण हैं। खुर्जे के स्वर्गीय जहूर खां ने, जिनका उपनाम "रामदास" था, बड़ी अच्छी-अच्छी रचनायें लिखीं। अतरौला के स्वर्गीय महबूब खां ने, जो "दरस पिया" के नाम से भारतवर्ष भर में मशहूर थे, बहुत सी रागों में बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें बनाईं। उनकी तिलक-कामोद की चीज "गुन की चर्चा करते भाई, गायक गुनिकरूजन बैस बैस कर," अथवा जौनपुरी का ख्याल "परिये पांय न वाके सजनी जो न माने गुनि जन की रीत" आज भी गायक गाते हैं। मथुरा के काले खां 'सरस' का राग परज के ख्याल को स्वर्गीय फैय्याज खां ने गाकर भारत भर में धूम मचा दी। कितने सुन्दर शब्द हैं—"मन मोहन ब्रज को रसिया। जात हती मैं तो बृज की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गलियां। मुरली बजाय मेरो मन मोह लेत।" या फिर स्वर्गीय फैयाज खां की इसी राग में अपनी रचना जिसके शब्द हैं "आ जा रे स्वामी मोरे द्वारा, कबतें, करत हूं पुकार। प्रेम पिया तोरे दरसन भूखी। नहीं मानत जिया हमार।" स्वर्गीय फैयाज खां ने, जिनका उपनाम "प्रेम पिया" था, दर्जनों गाने की रचनायें बृजभाषा ही में लिखीं। इसके अलावा ब्रज भाषा के प्रमुख कवियों के सैकड़ों पद उन्हें जबानी याद थे। देव, भूषण, मतिराम, सूरदास इत्यादि के सैकड़ों पद उन्हें याद थे। बृज भाषा के शब्दों का जैसा सुन्दर उच्चारण वह करते थे दूसरा कोई गायक अब नहीं करता। ऐसी रचनाओं की चर्चा करते हुए हमें बंबई के स्वर्गीय विलायत हुसेन खां भी याद आते हैं। उनका उपनाम "प्राण पिया" था और इमन कल्यान में उनकी मशहूर चीज "पिया की नजरिया जादू भरी" बहुत से गायक अब तक गाते हैं।

वैसे भी हिन्दुस्तानी संगीत के ख्याल शैली की सैकड़ों रचनायें ब्रजभाषा ही में लिखी गई हैं। गाने के लिए उनके शब्द बहुत मधुर और सुन्दर हैं। श्रोतागण इनको सुनकर बेचैन हो जाते हैं और उनके कान भी तृप्त हो जाते हैं। बहुत से रागों में इस भाषा में कवियों और गायकों ने संगीत की रचनायें लिखीं और उन्हें गाया भी। हम उनके कुछ उदाहरण यहां पर देते हैं जिनसे पता चलेगा कि ब्रजभाषा हमारी संगीत की रचनाओं के लिए कितनी उपयुक्त है। यह सब उन रचनाओं के शब्द हैं जो भिन्न-भिन्न रागों में हैं और जिन्हें गायकों ने गाया है।

"कहां ते अलसाने लालन आये
टूटे हार बार मुख पर बिखरे।
लोचन लोल ललाने॥"

"मैं तो प्रेम बावरी। उन बिन मैं का चैन न आवे। रात नागिन सी कारी।"

"पिया बिन कैसे कटे मोरी रतियां,
बिरहा की मारी निसदिन तरपूं,
तरपत हूं मोरी धरकें छतियां।
"दरदिया न जानी पिया ने
मोरी बाईं छुंगलिया में पीर।"
"खेल नंद कुमार बृज के लोगन में
अबीर गुलाल के बादर छाये
रंग की परत फुहार। खेलत नंद कुमार"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"बारा जोरी करे रंग डार।
वे जो कहलावत हैं नंद के छोर कारे कारे।
रंग की परत फुहार।"
"होरी खेलत मोंसो नई रे नई।
अब तो लाज गई रे गई"
"होली आज जले चाहे काल जले।"
"फगवा वृज देखन को चलो री।
फगवे में मिलेंगे किशन कान्ह।

"बाट चलत बोले कगवा—जा फगवा देखन को" इत्यादि ऐसी सैकड़ों रचनायें हैं जिनको गाकर गायकों ने अपने श्रोताओं को संगीत के आनन्द से भरा है। ऊपर दिये हुए पद केवल थोड़े से उदाहरण हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत की मुख्य आधुनिक शैलियों में प्रथम स्थान ध्रुपद का है।

ध्रुपद

दूसरे अध्याय में ध्रुपद की प्राचीन शैली और उसकी तानसेन परम्परा के बारे में थोड़ा-बहुत बताया गया है। इस प्राचीन शैली के बारे में कुछ मुख्य बातें जानना चाहिए। पहली बात तो यह है कि हमारा प्राचीन संगीत ध्रुपद ही का संगीत था। उसके परिमार्जित रूप को हम अकबर के युग में पाते हैं और उसी काल में उसकी चार बानियां भी सामने आती हैं। जहां तक आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास की बात है, तीन सौ वर्ष से कुछ अधिक काल से यह शैली संगीत में रही है और सारे संगीतज्ञों ने उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखा है। अभी भी उसके इस अवनति काल में भी उसके प्रति लोगों की श्रद्धा की भावना है।

हम यह ठीक-ठीक नहीं बता सकते हैं कि नायक गोपाल, नायक बैजू, हरिदास स्वामी और तानसेन के पहले उसका क्या निश्चित रूप था। पर यह हम जानते हैं कि इन नायकों और गायकों के काल तक ध्रुपद ने एक उत्तम शैली का रूप धारण कर लिया था। इसकी चार बानियां भी इस समय तक विशेष रूप से निर्धारित हो चुकी थीं। ध्रुपद-गायक इनके विशेषज्ञ अलग-अलग ढंग से बन चुके थे। मगर उनमें से कुछ ऐसे धुरन्धर गायक भी थे जिनको अपनी विशेष एक बानी के अलावा और भी बानियों पर अधिकार था। तानसेन ध्रुपद-परंपरा के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न गायकों और बानियों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समावेश हो गया। इसलिए कई सौ वर्ष तक सोनिया घराने के ध्रुपद गायकों के संगीत का प्रभुत्व और प्रभाव संगीत के क्षेत्रों में रहा। इस विशाल और वैभवशाली परंपरा की कुछ अधूरी और धुंधली स्मृतियां ही अब इधर-उधर कभी-कभी दिखाई देती हैं। अब इस अप्रचलित शैली का धीरे-धीरे अन्त सा हो रहा है।

परन्तु ध्रुपद-गायन की प्रथा अभी भी हमारे संगीत में मौजूद है और कहीं-कहीं इस प्राचीन शैली को थोड़ा-बहुत प्रोत्साहन भी मिल रहा है। जहाँ तक शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध है, इस शैली के अन्त से उसको हानि ही पहुंचेगी, कोई लाभ न होगा। ध्रुपद के जीवित रहने से प्राचीन संगीत के गुणों की थोड़ी-बहुत रक्षा होगी।

सामान्य रूप से हम इस प्राचीन शैली की किन विशेषताओं से परिचित हैं? पहली बात तो यह है कि इस प्रबन्ध के चार विशेष अंग हैं जो हमें अपनी प्राचीन गायन शैली की याद दिलाते हैं। यह हैं स्थाई, अंतरा, संचारी, आभोग। अधिकतर आजकल के ध्रुपद-गायक स्थाई और अंतरा ही गाते हैं और संचारी और आभोग को प्रायः या तो छोड़ जाते हैं या उन्हें जानते ही नहीं। ध्रुपद रचना के इन चार हिस्सों में उस राग के स्वरों का तरह-तरह से प्रयोग किया जाता है। यह ध्रुपद की गायन कला का पूरा महत्व था कि इन चार हिस्सों में ध्रुपद गाया जाता था। और यह वही कर सकता था जिसको किसी योग्य गुरु से शिक्षा मिली हो। इस काल में जब ध्रुपद शिक्षा में बहुत कमी आ गई है, लोग ध्रुपद रचना की स्थाई और उसका अंतरा ही गाते हैं। यह सरल और आसान रास्ता है। अब तो लोग ध्रुपद की शिक्षा नहीं लेते परन्तु अपने आप किताबों में स्वर-लिपि में दिये हुए ध्रुपदों को बाजे पर निकाल कर गा लेते हैं। ऐसा करने में ध्रुपद की रचना के शब्द तो अवश्य याद हो जायेंगे, परन्तु उसकी गायन-शैली नहीं आयेगी।

प्राचीन काल में संस्कृत ही में ध्रुपद हुआ करते थे। अकबर और तानसेन के युग के बाद ध्रुपदों की रचना हिन्दी या ब्रजभाषा में होने लगी। अभी लोग शुद्ध हिन्दी अथवा ब्रजभाषा इत्यादि में ध्रुपदों की रचना करते हैं। मुसलमान गायकों और कवियों की रचनाओं में कभी-कभी उर्दू और फारसी के शब्दों का पुट भी होता है। प्रायः ध्रुपद की रचनाओं में कविता का बहुत चमत्कार होता है। या तो यह गायक कवियों की अपनी मौलिक रचनायें होती हैं और यह वह कवियों के काव्य से ली गई हैं। तुलसीदास के पदों से बनाया गया राग तिलक कामोद का मशहूर ध्रुपद "तू दयाल दीन को है तू

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दानि तू दयानी" इत्यादि को गायक आज भी गाते हैं। प्राचीन ध्रुपदों की रचनाओं में कविता का अपूर्व आनन्द है।

ध्रुपद-गायन में संगीत की कुछ विशेषतायें हैं जो ख्याल-गायन की विशेषताओं से बिल्कुल अलग हैं और उनके प्रतिकूल हैं। ख्याल शैली में ध्रुपद शैली के प्रति एक विरोध की भाषा है। इसलिए आधुनिक ख्याल को कुछ लोगों ने विद्रोही और बाग़ी माना है। मगर ध्रुपद-गायन की विशेषतायें हैं क्या ? प्रत्येक शैली का अपना अलग स्वभाव, चरित्र और वातावरण होता है। उदाहरण के लिए, ठुमरी अपने बोल बनाव के श्रृंगार, लोच और भावुकता और नजाकत के भावों के लिए मशहूर है। परन्तु ध्रुपद गम्भीर शैली है और प्राचीन काल में इसका और वीणा का साथ रहा है। इसको जरा समझ लेना चाहिए। वीणा भारतवर्ष का सबसे प्राचीन वाद्य है, चाहे वह सरस्वती वीणा हो या रुद्र वीणा। वीणा और ध्रुपद-गायन का पुराना साथ रहा है। ध्रुपद परम्परा के वाद्यों में रबाब और सुरसिंगार को भी सेनिया घराने ने उचित स्थान दिया है। इसी तरह हम कह सकते हैं कि ख्याल परम्परा के वाद्य पिछले सौ वर्षों से अधिक काल में सरोद, सितार, सारंगी और तबला ही रहे हैं। पिछले पचास-साठ वर्षों में हारमोनियम की गिनती भी इन बाजों में होने लगी है। परन्तु ध्रुपद के साथ तबला नहीं पखावज या मृदंग ही बजी है। ध्रुपद के साथ तंबूरा ही होता था। न बाजा और न सारंगी।

वीणा और ध्रुपद के संगीत का वातावरण एक सा है। उनका चरित्र अथवा स्वभाव भी एक सा है। उसको हम सात्विक ही कहेंगे। प्राचीन काल में ध्रुपद की रचना संस्कृत में हुआ करती थी। यह देववाणी पुनीत और सात्विक विचारों और भावों को प्रकट करती थी। ध्रुपद की कविता में भी एक सात्विक भावना होती थी। यदि हम उसे धार्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना भी कहें तो मतलब और साफ़ हो जाता है। क्योंकि श्रृंगार रस के ध्रुपदों का चलन बाद में होता है। ईश्वर की वन्दना, स्तुति गान, धार्मिक और सात्विक विचार और भाव और अध्यात्म, इनसे ही यह रचनायें प्रेरित और प्रोत्साहित होती थीं। क्रियात्मक रूप से संगीत एक साधना थी। स्वरों की आराधना और तपस्या थी। और वह संगीत अपने शुद्ध रूप ही में था। उसमें किसी प्रकार के विकार का अंश नहीं था। वह भक्ति का एक रूप था। उसकी आत्मा शान्त और पवित्र थी। उसमें गाम्भीर्य था, वासना की चंचलता नहीं। उसमें तेज था, केवल दिखावट की चमक नहीं थी। उसमें आनन्द था, चंचल हंसी नहीं थी। वह समुद्र की तरह गहरा और अथाह था। उसमें नालों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और नदियों की चंचलता और उनका शोर नहीं था। यह वह संगीत था जिसमें गायक नाद-ब्रह्म में लवलीन हो जाता था और अपनी वासना को भुला बैठता था। इस संगीत में संयम था, सन्तुलन था और शान्ति थी। इसमें गंधर्वों के संगीत का आभास था, उसकी छाया थी। इस संगीत का भेद स्वरों की सच्ची साधना थी, उनकी बड़ी तपस्या थी। अगर संस्कृत देववाणी थी तो ध्रुपद तपस्वी गायकों, गंधर्वों और देवताओं का संगीत था। यह संगीत शुद्ध था, पवित्र था, सात्विक था और वासनारहित था। इन ध्रुपद की रचनाओं में पुनीत भाव थे और उनमें मनुष्य के भावों और विचारों को परिष्कृत करने की भी शक्ति थी।

इसलिए ध्रुपद की आत्मा शांत और निर्लिप्त थी। उसमें उथलापन, चंचलता और कृत्रिमता का भाव नहीं था। उसके स्वरों के शुद्ध उच्चारण में ही उसका गौरव था और उसकी मर्यादा थी। उसमें एक प्रकार का संयम था जो और प्रकार की शैलियों में नहीं पाया जाता था। यही बात वीणा में भी थी। वीणा भी ध्रुपद के नियमों और सिद्धान्तों का पालन करती थी। उसकी आत्मा भी विशुद्ध और शांत थी। यही कारण है कि वीणा में और वाद्यों की चंचलता और दिखावटी भावुकता नहीं है। उसके बाज की शैली में भी ध्रुपद शैली का संयम है और उसका गाम्भीर्य भी है। इस वाद्य में भी स्वरों की साधना भी सच्ची होती है। श्रोता को केवल उत्तेजित करने के लिए इस वाद्य में स्वरों के साथ यों ही खेला नहीं जाता, परन्तु उनका सही और सच्चा उच्चारण ही किया जाता है। वीणा की तानें कायदे से उसकी शिक्षा की परम्परा के हिसाब से ही ली जाती हैं। नियमों और सिद्धान्तों पर ही इसकी प्राचीन शैली निर्भर है। इस वाद्य में कलाकार की स्वतन्त्रता की सीमाएं नियमित और निर्धारित हैं। वह अपने बन्धनों को अपने आप जैसे चाहे और जब चाहे आसानी से तोड़ नहीं सकता। उसका बाज उसके राग की शुद्धता का खण्डन कभी नहीं करता। जो कुछ एक बीनकार बजाता है वह उसके संगीत के नियमों से बंधा हुआ है। वह ध्रुपद-गायक की तरह शैली के मूल सिद्धान्तों के खिलाफ विद्रोह नहीं कर सकता। यदि ऐसा करेगा तो उसकी कला में बड़े दोष आ जायेंगे और वह अपने बाज के साथ पूर्णरूप से न्याय नहीं कर सकता।

सैद्धान्तिक रूप से इसे वेद-वाक्य ही समझना चाहिए कि ध्रुपद-गायन और वीणावादन में शैली के नियमों के साथ खेला नहीं जा सकता। हिन्दुस्तानी संगीत में सबसे बड़ी अचम्भे की बात यह है कि नियमों और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिद्धान्तों से कुशल और प्रगतिशील कलाकार जकड़ नहीं जाता। परन्तु वह अपनी स्वतन्त्रता को पूरी तरह से प्रयोग कर सकता है और उसका पूरा आनन्द भी ले सकता है। देखने की बात तो केवल यही है कि उन नियमों और बंधनों के रहते हुए भी कलाकार को पूर्ण स्वतन्त्रता मिलती है। यह बंध नहीं जाता किन्तु उसे अपने लिए और अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है। उसके व्यक्तित्व के लिए कोई भी रुकावट नहीं होती। वह बड़ी आज़ादी में अपनी कोमल कल्पनाओं को अपने संगीत में प्रसारित कर सकता है। उसकी कला उस पर कोई भी प्रतिबंध नहीं लगाती। वह भावुक और प्रतिभाशील हर रूप में हो सकता है क्योंकि वह अपनी सीमाओं को पहचान कर अपने बंधन नहीं तोड़ता परन्तु अपने पंखों को और फैलाकर ऊपर उड़ता है। वीणा की वादन-शैली और ध्रुपद की गायन-शैली में कला के पूर्ण विस्तार के लिए पूरी आजादी है। बाधा तो उसके लिए होगी जो राग नहीं जानता और जिसे बाज या गायन की ठीक शिक्षा नहीं मिली है। परन्तु जिसको उत्तम गुरु से उत्तम शिक्षा मिली है वह हाथी की मस्त चाल भी चल सकता है और एक पक्षी की तरह आकाश में विचर भी सकता है। न तो उसके पैरों में बेड़ियां डाली जाती हैं और न उसके पंखों में कैंची लगाई जाती है। वह स्वतन्त्र इस-लिए है कि वह स्वतन्त्रता के मूल सिद्धान्तों को जानता है।

ध्रुपद-गायन में गला नहीं हिलाया जाता है और न तानें ही ली जाती हैं। ख्याल गायन शैली के आभूषण ध्रुपद पर नहीं लादे जाते। शब्दों को और स्वरों को गम्भीर और सही उच्चारण के साथ कहा जाता है। ध्रुपद में मुर्की, फंदा, सपाट तान इत्यादि नहीं होते हैं। ध्रुपद गम्भीर शैली है जिसका प्रभाव केवल सच्चे स्वरों के लगाने में ही है। शब्दों को सच्चे ढंग से सुर में कहना और गमक इत्यादि का प्रयोग कलात्मक ढंग में करना ध्रुपद-गायक का धर्म है। स्वरों और शब्दों को कहने के लिए लम्बी सांस की भी जरूरत है। ध्रुपद की शैली में पारंगत होने के लिए उत्तम शिक्षा और निरन्तर परिश्रम की बड़ी आवश्यकता है।

इस ख्याल, ठुमरी, गजल और फिल्मी संगीत के युग में कुछ थोड़े से लोग ही ध्रुपद सीखते हैं। गायकों में भी अब कुछ थोड़े से ही बचे हैं जो इस शैली के रक्षक कहे जा सकते हैं। पिछले पचास-साठ वर्षों में भारतवर्ष में अच्छे ध्रुपद-गायक हुए। भारत-विख्यात बहराम खां के घराने में ज़ाकिरुद्दीन खां और अलाबदे खां ऐसे महान् और धुरन्धर धुरपदिये हुए जिनको लोगों ने उन्नीस सौ बीस और पच्चीस के बीच में सुना था। अलाबदे खां के सुपुत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गीय नसीरुद्दीन खां भी बड़े अच्छे ध्रुपद गायक थे जिनका गला बहुत सुरीला था। उनके भाइयों में तानसेन पाण्डे (हुसैनुद्दीन खां) प्रतिभाशील गायक थे। उनके एक और भाई रहीमुद्दीन खां अब इस घराने के प्रमुख गायक माने जाते हैं और वह बहुत अच्छा गाते हैं। पिछले पन्द्रह वर्षों में नसीरुद्दीन के दो सुपुत्रों (डागरबन्धु) ने काफी नाम कमाया। अब उनसे छोटे दो भाई काफी परिश्रम कर रहे हैं और उनमें थोड़ी-बहुत प्रतिभा भी है। रहीमुद्दीन खां के सुपुत्र भी बहुत होनहार हैं।

इस घराने के अलावा इस जमाने में और भी ध्रुपद-गायक हुए हैं। कच्छ के नसीर खां भी बहुत योग्य धुरपदिये थे। मुजफ्फरपुर के स्वर्गीय काले खां का समझदार और विद्वान् ध्रुपद-गायकों में शुमार था। दरभंगे के राम-चतुर मलिक का भी आजकल बहुत नाम है। वह आलाप और ध्रुपद दोनों के पण्डित हैं और रेडियो में उनका गायन अक्सर प्रसारित किया जाता है। चालीस-पचास वर्ष पहले जिन लोगों ने मथुरा के चंदन चौबे को सुना था वह बता सकते हैं कि वह कितना अच्छा गाते थे। जिस भावुकता से वह गाते थे अब कम गायक गाते हैं।

ध्रुपद की शैली कमजोर जरूर पड़ गई है मगर अभी इस देश में वह जिन्दा है। वह हमारे प्राचीन संगीत की बहुमूल्य देन और यादगार है। और इस शैली की रक्षा करना और उसे जीवित रखना हम सबका धर्म है।

ख्याल

ध्रुपद जब अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था तो वह हिन्दुस्तानी संगीत की सबसे महान् और श्रेष्ठ गायन शैली हो गई थी। उस काल में गायक और नायक ध्रुपद-पद्धति ही के अनुयायी थे और वह इसकी प्राचीन परम्परा को ही अपने युग में उन्नति की ओर ले जा रहे थे। तानसेन ऐसे महान् गायक ने ध्रुपद-गायन ही को पराकाष्ठा तक पहुंचाया था और उसकी रगों में नया रक्त बहाया था। ध्रुपद ही तब संगीत की पूंजी थी। उसकी चार बानियाँ उसकी विलक्षण कला के रूप और प्रकार थे। उनसे ही पता चलता था कि ध्रुपद-गायन का कितना बड़ा महत्व है और उसकी व्यापक शैली का कलात्मक विस्तार कितनी दिशाओं में हो सकता है। परन्तु जब ध्रुपद उच्च शिखर पर विराजमान हो चुका था और उसका राज्य संगीत संसार में चारों ओर फैल गया था तब दो-ढाई सौ वर्षों के पश्चात् ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन संगीत के संसार में होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है जो एक बड़ी प्रतिक्रिया के रूप में हमारे सामने आता है। अठारहवीं शताब्दी में ख्याल की शैली का जन्म होता है। ध्रुपद परम्परा ने उसको नहीं अपनाया और न उसने उसे शैली के रूप में स्वीकार किया था। यह स्वाभाविक था। परन्तु यह परिवर्तन भी ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक था क्योंकि प्राचीन अमिट और अचल सिद्धान्तों के विरोध में इस प्रकार की प्रतिक्रिया का होना आश्चर्यजनक नहीं था। ध्रुपद शैली के शांत वातावरण में एक हलचल सी मच गई। संयम, शांति और सन्तुलन के क्षेत्र में एक नई विलक्षण कल्पना का प्रवेश हुआ। ऐसा मालूम पड़ा जैसे एक सैकड़ों वर्ष पुराने, मज़बूत किले पर कुछ बागियों ने आक्रमण कर दिया। यह हमारे संगीत का ग़दर था और फिर उसमें भगदड़ मच गयी। क़िले का विध्वंस तो न हो सका मगर गोलाबारी जारी रही। और संगीतज्ञों ने अब घबराकर चारों तरफ देखा तो क्या देखा कि संगीत की एक नई शैली अपना सिंगार कर रही थी और देखने-सुनने में भी वह आकर्षक थी। इस शैली का नाम था "ख्याल।"

ख्याल-शैली के आविष्कार करने वाले नियामत खाँ थे जिन्हें मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार से "शाह सदारंग" की उपाधि मिली थी। यह ध्रुपद परम्परा ही के अनुयायी थे। वह वीणा-वादक थे और ध्रुपद-पद्धति ही को मानते थे। उनके जीवन में ध्रुपद और वीणा ही के लिए स्थान था। वह और उनके सहयोगी अदारंग और किसी शैली को इतना ऊँचा आदर नहीं देते थे। मगर आश्चर्य तो इस बात का है कि इन दोनों ने मिलकर ख्याल की सैकड़ों रचनाओं को बनाया जिनमें से कुछ आज भी लोग बड़े गर्व और चाव से गाते हैं और उन दोनों को स्मरण करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि सदारंग ने इस नई शैली का आविष्कार किन परिस्थितियों में किया ? ख्याल का जन्म कैसे हुआ ? इन प्रश्नों का कोई सधा-बधा उत्तर नहीं है। हम केवल संगीत के इस नये परिवर्तन को ठीक से समझने का प्रयत्न कर सकते हैं। यदि प्राचीन ध्रुपद में चार बानियाँ हो सकती थीं और ध्रुपद के घरानों का जन्म हो सकता था तो यह क्रान्तिकारी परिवर्तन भी हो सकता था। कला में तो उन्नतिशील युगों में प्रतिक्रिया की भावना सदैव बहती है। प्रत्येक जीवित कला में परिवर्तन होता है और वह परिवर्तनशील होती है। जिस शैली का प्रभुत्व होता है उसके विरोध में कुछ समय के बाद प्रतिक्रिया अवश्य होती है। और सच पूछा जाये तो उन्नति का कारण भी यही होता है। कोई भी कला क्यों न हो वह परिवर्तन से मुंह नहीं मोड़ सकती। किसी भी उन्नतिशील और प्रगतिशील कला में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिवर्तन होना आवश्यक है। प्रत्येक कला की गति इसी सिद्धान्त पर निर्भर है।

नियामत खां शाह सदारंग वीणावादक और ध्रुपद पद्धति के अनुयायी अवश्य थे मगर इसके साथ-साथ उनके पास कवि का हृदय भी था और उसके साथ एक कलाकार की भावुकता भी थी। चारों तरफ़ संगीत की नई लहरें बह रही थीं। कव्वाली संगीत का प्रादुर्भाव तो बहुत पहले हो चुका था। ईरानी संगीत ने भी कई रास्तों से भारत में प्रवेश किया था। उसके प्रभाव को कोई नहीं रोक सकता था। और न कोई प्रगतिशील, भावुक, कलाकार, विशेषकर एक मुसलमान कलाकार और संगीतज्ञ, इस प्रभाव से बच सकता था। ध्रुपद-शैली की सात्विकता उसकी रोक-थाम और उसके बड़े अनुशासन और प्रतिरोध के विरोध में एक प्रतिक्रिया का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। कल्पना-शक्ति पर कोई सैद्धान्तिक रूप से प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता था और न कलाकार के हृदय की स्वाभाविक भावुकता की कोई रोक-थाम हो सकती थी। सीमा बांधना और सीमा लाघंना दो विपरीत और प्रतिकूल क्रियायें हैं। ध्रुपद के संयम का बांध अचानक टूट गया और कल्पना की प्रबल शक्तियों की बाढ़ आ गयी जिसको कोई रोक न पाया। ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे एक तपस्वी के आश्रम में एक बांका, सजीला, भावुक नौजवान अचानक घुस आया।

हिन्दुस्तानी संगीत में ख्याल की शैली का प्रवेश कल्पना ही का प्रवेश था। 'ख्याल' शब्द ही का अर्थ है 'कल्पना' जिसकी कोई सीमा न हो और जो पूर्ण रूप से विलक्षण और स्वतन्त्र है। ध्रुपद के कड़े अनुशासन का विरोध संगीत की कल्पना-प्रसूत नई भावनाओं ने आरम्भ कर दिया। परिवर्तन की आंधी का झोंका आया और पुरानी नीवों के साथ पुरानी दीवारें भी हिल गईं। ख्याल की शैली में दिल को लुभाने वाला आकर्षण था और संगीत के विद्यार्थी उसकी तरफ झुक पड़े। यदि ध्रुपद संगीत के विद्वानों और प्रतिष्ठित ध्रुपद गायकों की अनूठी और रहस्यमयी कला थी जिस पर एक साहसी और प्रतिभाशील संगीत विद्यार्थी ही अधिकार पा सकता था और जिसकी गायन शैली के अनुशासन का पालन हर व्यक्ति नहीं कर सकता था और जिसका संगीत सर्वश्रेष्ठ था, तो ख्याल एक लोकप्रिय शैली थी जो किसी विशेष वर्ग की सम्पत्ति नहीं थी और जिसका आनन्द सब ले सकते थे। उसमें प्रजातान्त्रिक भावना थी। परन्तु ध्रुपद एक अनन्य शासक के समान था और उसका देश राजतन्त्र देश था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु यह परिवर्तन भूचाल की तरह अचानक एक दिन नहीं आया। जिस तरह से ध्रुपद एक दिन अचानक संगीत के मैदान में टूट नहीं पड़ा उसी तरह ख्याल-शैली का प्रवेश भी अचानक नहीं हो गया। पहले से कुछ ऐसी हवायें चल रही थीं कि मालूम पड़ता था कि आंधी आयेगी। इस बड़े परिवर्तन की प्रेरणा और उसका संकेत पहले ही से मौजूद था। विदेशी संगीतों के स्वर और उनकी शैलियां इस देश में अपना घर बना रही थीं। यह कैसे हो सकता था कि हिन्दुस्तानी संगीत के गायक और वादक विशेषकर वह जो भावुक मुसलमान कलाकार थे परन्तु जिनकी आत्मा भारतीय थी, इन विलक्षण प्रभावों से बच सकें ? उन स्वरों में कोई तो ऐसा आकर्षण था जो हमारे संगीतज्ञों के कानों को अच्छा लगा। परन्तु इसके अलावा संगीत में इस नई प्रयोगवाद की स्वतन्त्रता का जन्म ध्रुपद के विरोध में ही हुआ। यह भी हो सकता है कि ध्रुपद के अनुशासन में शिथिलता आ गई थी और तानसेन ध्रुपद परम्परा के बाहर के ध्रुपद-गायक विरोध की भावना से प्रोत्साहित होकर एक नई स्वतन्त्रता का आनन्द लेना चाहते थे जो उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती थी। बिना इन नये विचारों के आन्दोलन से प्रभावित हुए इस परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता लोगों में न होती।

यह नहीं माना जा सकता कि ख्याल-शैली के आविष्कारक और प्रवर्तक सदारंग और अदारंग अपनी ईजाद से प्रसन्न नहीं हुए और न उनको उस पर कलाकार होने की हैसियत से कोई गर्व था। माना कि उन्होंने अपने दृष्टिकोण को साफ ज़ाहिर नहीं किया। उसका कारण यह था कि सदारंग संगीत के विद्वान् और कलाकार, जिनकी प्रतिभा विलक्षण थी और वह सैद्धान्तिक रूप से ध्रुपद की प्राचीन परम्परा के परम भक्त और अनुयायी थे। इसलिए वह खुले आम ख्याल की प्रशंसा नहीं कर सकते थे और न इसका समर्थन ही कर सकते थे। इन्होंने अपने घराने के शिष्यों को वीणा ही की शिक्षा दी, ख्याल की नहीं। उनकी यह तटस्थ भावना स्वाभाविक थी। वह प्राचीन ध्रुपद परम्परा के अनुशासन का परित्याग किसी क़ीमत पर नहीं कर सकते थे। उस नियन्त्रण का विरोध करना उनके लिए असम्भव था। नैतिक दृष्टि से भी यह बड़ा अनुचित होता यदि वह इस नई शैली का निर्माण बगैर सोचे-समझे करते और उसमें अपना दिमाग न लगाते और न उसमें उनकी अपनी कोई हार्दिक रुचि थी, ग़लत है। क्या यह सम्भव था कि जब अंग्रेजी के विद्वान् लेखक बेकन ने लैटिन भाषा छोड़कर अंग्रेजी भाषा में अपने निबन्ध लिखे तो खुले आम लैटिन ऐसी प्राचीन भाषा की, जो संसार के विद्वान् महारथी प्रयोग में लाते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब वह स्वयं इसी भाषा में लिखते थे, वह उपेक्षा करते ? उनकी सबसे बड़ी कृति लैटिन ही में थी और एक वैज्ञानिक विचारक और लेखक होने की हैसियत से वह लैटिन का बड़ा आदर करते थे। जब अंग्रेजी ऐसी 'असभ्य और अशिष्ट भाषा' में उन्होंने अपने निबन्ध लिखे तो वह अपने पाठकों के आगे क्षमा-प्रार्थी के रूप में थे। मगर क्या अपने अंग्रेजी के निबन्धों से मन ही मन वह खुश और सन्तुष्ट नहीं थे ? आज संसार बेकन की विद्वता और उनकी विचारधारा को याद नहीं करता। परन्तु आज संसार बेकन के सोलहवीं शताब्दी में लिखे गये बेजोड़ निबन्धों को अब तक पढ़ता है और उनकी भाषा पढ़कर आनन्द से भर जाता है। वह अंग्रेजी भाषा के निर्माण करने वालों में थे। हम बेकन की वैज्ञानिक विचारधारा से परिचित नहीं हैं और न उसकी खोजबीन करने की हमको कोई इच्छा है। परन्तु उनके अंग्रेजी के निबन्धों को हम बार-बार पढ़ते हैं और खुश होते हैं। विश्व साहित्य में वह अमर हो गये हैं।

इसी प्रकार सदारंग के वीणा-वादन का कोई पता नहीं और न हम यह जानते हैं कि ध्रुपद-परम्परा के बारे में उनके अपने क्या विचार थे। हम इतना ही जानते हैं कि वह ख्याल के आविष्कारक थे और उन्होंने इस शैली में बड़ी-बड़ी सुन्दर रचनायें लिखीं। इसके लिए संगीत संसार आज भी उनका आभारी है। सदारंग और अदारंग ने ख्याल-शैली और उसकी सुविख्यात-सम्मानित परम्परा को दो सौ वर्ष पहले स्थापित किया था जो अब तक हमारे सामने है।

यदि ख्याल की शैली ध्रुपद की प्रतिक्रिया थी तो उसमें क्या विशेषतायें थीं जिनको संगीत संसार ने पूर्ण मान्यता दी ? ख्याल की शैली है क्या ? उसमें क्या विशेष गुण हैं ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने ही से हम ख्याल की शैली से परिचित हो सकते हैं। उसकी केवल परिभाषा से क्या लाभ जब हम उसकी विशेषताओं को नहीं जानते ? सबसे पहली बात जो हमें याद रखना चाहिए वह यह है कि ख्याल में कल्पना की प्रधानता है। सच तो यह है कि प्रत्येक जीवित और रोचक कला में कल्पना-शक्ति का बड़ा हाथ होता है। किसी संगीत शैली का अनुयायी होना और बात है परन्तु उसमें जान डालना और उसको अपनी प्रतिभा की शक्ति से जीवित रखना बिल्कुल दूसरी बात है। केवल सिद्धान्तों और नियमों का पालन करने से संगीत में जीवन नहीं पैदा होता। कल्पना-शक्ति के बिना कोई भी संगीत की शैली जिन्दा नहीं रह सकती। इसलिए अनुशासन और कल्पना एक दूसरे के प्रतिकूल होते हैं। ख्याल की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मा को कल्पना-शक्ति ही जीवित रखती है। इसका क्या अर्थ है ?

ध्रुपद-गायन में कला के हिसाब में गायक यदि चौताल में कोई ध्रुपद रचना गा रहा है तो पखावज अथवा तबले की संगत के साथ वह दुगुन चौगुन करेगा या ताल के कुछ और चमत्कार दिखायेगा। ताल के अन्दर ही वह ताल की कला दिखा सकता है और सम आने पर वह रचना की पहली पंक्ति को दुहरायेगा। वह अपने शब्दों का सही उच्चारण ठीक-ठीक स्वरों में करेगा और उसकी आवाज में न तान होगी न मुरकी। उसके गायन में कल्पना का कोई काम नहीं है। वह नियमों की परिधि ही में घूमेगा और जो कुछ प्रभाव वह अपने श्रोतागण पर डाल सकता है वह केवल अपने स्वरों के द्वारा डालेगा, जिनमें वह अपने शब्दों को विठाता है। कल्पना इसमें उसकी कोई सहायता नहीं कर सकती।

ख्याल-गायक के राग-विस्तार और उसकी बढ़त में यदि कल्पना नहीं होगी तो वह बार-बार अपनी तरकीबों को दुहरायेगा और उसकी शैली में कोई मौलिकता नहीं होगी। स्वरों के नाजुक और भावपूर्ण बहलावे, शब्दों का मधुर और भावुक उच्चारण जिसको ठुमरी में बोल बनाव कहते हैं, शब्दों के साथ राग की बढ़त और स्वरों के साथ शब्दावली का विस्तार, छोटे-छोटे स्वरों के टुकड़े, बोल-तान, तानें, मीड़, सूत, मुरकी, कन, स्वरों की भावुक और मौलिक व्याख्या, सम को सुन्दरता और आसानी से दिखाना, स्थाई और अन्तरे को संवारना और सजाना, स्वरों का आनन्द लेना और अपनी कल्पना-शक्ति की सहायता से राग के स्वरों की नई-नई व्याख्या करना और अपनी गायकी को रोचक, भावपूर्ण और प्रभावशाली और वज़नदार बनाना—यह सब गायक अपनी प्रतिभा ही के भरोसे करता है और अपने व्यक्तित्व को अपनी गायन-कला में उंडेलता है।

ख्याल-गायन में सबसे मुख्य बात है स्थाई और अन्तरे को सही-सही कलात्मक ढंग से कहना। "स्थाई अन्तरा भरना" एक कुशल और प्रतिभाशील गायक ही जानता है। यदि वह अपनी चीज की रूपरेखा ही को ढंग से कहे तो इसका बहुत बड़ा प्रभाव उसके श्रोताओं पर पड़ेगा। अगर उसका स्थाई अन्तरा शानदार है, रोबीला है और उसमें कलात्मक तेवर है तो उसका दो घण्टे का गाना सफल और प्रभावशाली ही नहीं अत्यन्त आकर्षक भी होगा। अगर एक प्रतिभाशील गायक अपना स्थाई और अन्तरा कहकर छोड़ दे तो दूसरा गायक उसको उसी तरह शायद नहीं कह सकता। वह मुशकिल और लम्बी तानें ले सकता है मुशकिल जगह से परन्तु उसकी चीज के भराव में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आलस और ढीलापन होगा। यदि उसकी गायकी में वज़न और गंभीरता नहीं होगी तो उसमें कोई लाग-डाँट भी न होगी। गवैये की असली गायकी और चीज़ है और बगैर तालीम और अनुभव के गायक का गायन कुछ और बात होती है। जिस तरह से गायक अपने स्थाई और अन्तरे के शब्दों को ताल में सही तरीके से कहता है उसी से पता चल जाता है कि वह उस श्रेणी का गायक है। इसलिये स्थाई और अन्तरा ख़याल-गायन की कसौटी है। अक्सर किसी घराने के गायक के गाने में स्थाई और अन्तरे के पूरे शब्द नहीं सुनाई देते हैं। उसकी बंदिश की कविता का भी कोई आनन्द नहीं आता और कुशल और रियाज़ी गायक को एक शब्द ही को लेकर राग के स्वरों की उलट-पलट में इतना व्यस्त हो जाता है कि अपनी बंदिश के इरादे को भूल जाता है। वह हर स्वर को बढ़ा सकता है और यदि वह दो-तीन स्वरों के समूह को लेकर राग का विश्लेषण करने लगता है तो उसका संगीत गणित शास्त्र बनकर रह जाता है। हमें पता नहीं चलता कि वह किस स्वर को राग का वादी स्वर मानता है। यह भी नहीं पता चलता कि वह किस भाव अथवा रस की व्याख्या कर रहा है। वह ख़याल-गायन में स्थाई और अन्तरे को कोई महत्व नहीं देता। ख़याल की शैली के हिसाब से यह बात गलत और असंगत है। जब गायक स्थाई और अन्तरे को भर लेता है तभी वह अपने ख़याल को कला के आभूषणों से सुशोभित करता है। जब उसका राग जीवित हो जाता है और जब उसकी बन्दिश में जान आ जाती है तभी तो हम उसकी रचना को पहचानने लगते हैं। और जब हमें उसके गायन की पहचान हो जाती है तभी हमें उस पर पहनाये गये आभूषणों की पहचान भी हो जाती है। यदि गायक अपने गाने की मुर्दा पत्थर की मूर्ति पर ज़ेवर लादेगा तो उससे क्या लाभ परन्तु यदि वह अपने गायन को सजीव और जीता-जागता बनाकर उसको कला के आभूषण पहनायेगा तो हमारे रोंगटे खड़े हो जायेंगे। स्थाई और अन्तरे को कलात्मक ढंग से कह कर वह हमें बता देता है कि उसके संगीत में जान है और वह जीवित है।

केवल कला के नकली आभूषणों से अपने गायन को सजाना एक योग्य और कुशल गायक का काम नहीं है। और यदि कोई गायक अपनी राग के चेहरे को इतना भद्दा कर दे कि वह पहचानी न जाये, और अपनी चीज़ के पूरे शब्दों को ठीक ताल में न गाकर केवल दो-तीन शब्दों ही को लेकर स्वरों की बीजगणित का अभ्यास करने लगे तो चाहे गला उसका सुरीला हो और तानें उसकी साफ और दानेदार हों, श्रोताओं को न तो उसकी बन्दिश का चमत्कार दिखाई देगा और न उसकी राग-व्याख्या में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनको कोई आनन्द आयेगा। ख्याल-गायक सही गायकी की कसौटी ही पर कसा जाता है। यही उसकी कला की कड़ी परीक्षा है। केवल विलक्षण स्वरों और तानों के चमत्कार से वह अपने गाने को पाल-पोस नहीं सकता। वह ख्याल-शैली के नियमों का परित्याग इस आसानी से नहीं कर सकता है चाहे वह किसी घराने का गायक क्यों न हो।

यदि ध्रुपद-शैली का अनुशासन कड़ा है तो यह नहीं समझना चाहिए कि ख्याल-गायन में किसी अनुशासन की पाबन्दी नहीं हैं। उदाहरण के लिए यदि गायक झुमरा, तिलवाड़ा, आड़ा चौताल अथवा एकताल में किसी राग की स्थाई गा रहा है तो उसका गायन पहले विलम्बित लय में होगा। इसी लय में वह अपना राग बढ़ायेगा और अपनी चीज की भी बढ़त करेगा। शब्दों के माधुर्य और उनके गाम्भीर्य के द्वारा ही वह अपनी कलाकार वाली प्रकृति का प्रमाण देगा। उसके संगीत के स्वभाव का पता भी इसी से चल जायेगा। उसकी लय धीरे-धीरे बढ़ेगी और इसी प्रकार वह अपनी कला के नये-नये चमत्कार राग के अन्दर ही दिखायेगा। राग का विस्तार और चीज़ की बढ़त साथ-साथ चलेंगे। यहाँ पर उसकी कल्पना के नये-नये चमत्कार दिखाई पड़ेंगे। उसकी प्रतिभा जितनी विलक्षण होगी उतना ही सुन्दर उसका गायन होगा। किस तरह अपने गायन को किन आभूषणों से सजाना यह गायक की योग्यता और उसकी कल्पना-शक्ति का काम है। कभी-कभी चेहरे पर एक तिल होने से उसकी सुन्दरता बढ़ जाती है। परन्तु अगर चेहरे पर मुहासा या मस्सा हो तो चेहरा बिगड़ जाता है। कुशल गायक तिल को मस्सा नहीं बनायेगा। प्रखर और तीव्र बुद्धि वाला गायक लकीर का फकीर नहीं होता। वह केवल अभ्यास अथवा रियाज़ को हर चीज़ नहीं मानता। जिसके पास प्रखर बुद्धि नहीं है और न कल्पना और भावुकता है उसके संगीत से परिश्रम का ही पता चलेगा, रोचक कला का नहीं। गायक अपना गाना अपने को नहीं सुनाता परन्तु अपने श्रोता को सुनाता है। इसलिए उसको बुद्धि और कल्पना से पूरा पूरा काम लेना है। श्रोता उसका रियाज़ नहीं सुनना चाहता, उसका कला-सुशोभित गाना ही सुनना चाहता है और उसका पूरा आनन्द भी लेना चाहता है। गायक के दिमाग के झोले में बहुत से ज़ेवर पड़े हैं और यदि वह चाहे तो उन सबका प्रयोग कर सकता है और उनको अपने गायन पर लाद सकता है और थोप सकता है। मगर इससे यह भी तो हो सकता है कि उसका गायन बदसूरत और भद्दा बन जाये। वह अपने गायन को कल्पना और बुद्धि से सजा सकता है, सँवार सकता है परन्तु जल्दी में भद्दा और कुरूप भी बना सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस गायक में न बुद्धि होती है और न कल्पना वह अपनी गायन शैली को तरह-तरह के भद्दे गहनों से सजाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कान की बाली नाक पर होती है और नाक की लौंग कान पर। या फिर गले का हार हाथ पर होता है और पायज़ेब सिर पर होती है। जहाँ स्थाई के बोलों को कलात्मक ढंग से कहना है वहाँ वह तान लेता है और सम पर आसानी से आने के बदले वह उस पर धड़ाम से गिर पड़ता है। और जहाँ स्वरों के बहलावे लेना चाहिये वहाँ वह तेज़ रफ्तार वाली सरगम कहने लगता है और जहाँ पर उसको एकताल की बारह मात्राओं में अपने शब्दों को बांटकर लय के दर्जे दिखाना होता है वहाँ पर वह तिहैय्ये बिठाकर अपने ताल ज्ञान का परिचय देने लगता है और इस बीच में तबलिये से उसकी झड़प भी हो जाती है। उसके संगीत की रामायण केवल लंकाकाण्ड बनकर रह जाती है। यह केवल एक उदाहरण है जिससे पता चलता है कि कभी-कभी गायक अपनी बुद्धि और कल्पना से काम नहीं लेते और इसलिए अपने गायन को वह किसी जादूगर का तिलस्मी चमत्कार बनाते हैं और या किसी नट की कलाबाजी। प्रत्येक गायक का यह कर्तव्य है कि वह अपनी गायन-शैली को रोचक बनाये और मनमानी न करे। गायक के गायन की परीक्षा उसके श्रोता लेते हैं और उन्हीं की सही प्रशंसा उसके संगीत की अच्छी कसौटी होती है।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि सदारंग और अदारंग ने एक सुन्दर और अनोखी गायन-शैली का आविष्कार किया जिसने अपनी एक अलग परंपरा स्थापित की। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि ख्याल के ध्रुपद के मुकाबले में आने से कोई विशेष प्रतियोगिता की भावना नहीं थी और न उसमें कोई बैर था। अभी भी ख्याल का नाता ध्रुपद से जुड़ा हुआ है। अभी भी सर्वश्रेष्ठ ख्याल शैली वही मानी जाती है जिसे हम ध्रुपद अंग का ख्याल कहते हैं। ध्रुपद-गायक और अलापिये भारत विख्यात उस्ताद नसीरुद्दीन और उनके पिता अलाबदे खां और चाचा ज़ाकिरुद्दीन खां यही कहा करते थे कि जो ख्याल गायक ध्रुपद अंग की शानदार और गंभीर ख्याल-शैली को कुशलता से गा सकता है वही सर्वश्रेष्ठ ख्याल-गायक है। यह बात बहुत हद तक सच है और सैद्धांतिक भी है। मगर आजकल के बहुत से ख्याल-गायक इस ऊँचे आदर्श को नहीं मानते और अपने गायन में ख्याल की प्राचीन मर्यादा को सुरक्षित नहीं रखते।

सदारंग और अदारंग के नाम साथ-साथ स्मरण किये जाते हैं। उन्होंने अपनी परंपरा अलग-अलग स्थापित कर दी थी। इसमें ख्याल की रचना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिखने वाले ही अधिक संख्या में थे। इनमें से बहुतों के नाम के आगे "रंग" शब्द होता था। उदाहरण के लिए ऐसे बहुत से गायक और कवि थे जिन्होंने इस प्रकार की रचनायें लिखीं जैसे मनरंग, हररंग, सबरंग, पैसारंग, कौड़ीरंग, नीकोरंग, सुररंग, पीतमरंग, प्रेम रंग इत्यादि। आधुनिक युग में संगीत की रचना लिखने वालों के नाम के पहले "पिया" शब्द लगने लगा है। पहले तो ठुमरी गायकों ने ही ऐसा किया जैसे सनद पिया, क़दर पिया, ललन पिया, मदन पिया, रसिक पिया इत्यादि। बाद में गायकों ने भी इस प्रथा का पालन किया। आधुनिक युग के प्रमुख उदाहरण हैं दरस पिया, सरस पिया, प्रेम पिया, प्रान पिया, रसिक पिया इत्यादि। इन लोगों की बहुत सी लिखी रचनायें अभी भी गाई जाती हैं। किताबों में स्वरलिपि में लिखी गयी सैकड़ों रचनाओं के होते हुए भी इन रचनाओं का रिवाज अभी भी संगीत संसार में मौजूद है और आशा है भविष्य में भी रहेगा।

आधुनिक ख्याल गायक दो भागों में विभाजित है। पहला वर्ग तो घरानेदार गायकों और उनकी शिष्य-परंपरा का है। दूसरे वर्ग में वह गायक हैं जो पेशेवर नहीं है परन्तु वह किसी घरानेदार गायकी के नियमों का पालन नहीं करते। इनमें बहुत अधिक संख्या उनकी है जिन्होंने संगीत विद्यालयों में सभ्य, थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे सनदयाफ्ता शिक्षकों में स्वरलिपि के माध्यम से गायन सीखा है और प्रमाण पत्र भी प्राप्त किये हैं। इन्हीं दो वर्गों के हाथ में आधुनिक ख्याल-शैली की बागडोर है। पहले वर्ग में शिक्षित और पढ़े-लिखे लोग भी हैं मगर वह बहुत कम हैं। यह वही लोग हैं जिन्होंने संगीत की शिक्षा किसी और जगह पाकर फिर घरानेदार गायकों में भी सीखा। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें किसी विशेष घराने की गायकी का अभ्यास हो गया है और जो बड़े अच्छे ढंग से गाते हैं। परन्तु अधिक संख्या उन लोगों की है जो और संगीतज्ञों से गाना सीखते हैं और या फिर किसी अच्छे संगीत विद्यालय में जाकर गाना सीखते हैं। यह जो गायन इन विद्यालयों में सिखाया जाता है और उसकी आधुनिक पद्धति क्या है, इसके बारे में आगे चलकर संक्षेप में कुछ बताया जायेगा।

जो बात अभी हम यहां कहना चाहते हैं वह है कि ख्याल संगीत का क्या भविष्य है ? आजकल संगीत में इतनी उथल-पुथल मची हुई है और शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में अव्यवस्था है कि हम ठीक से नहीं बता सकते कि ख्याल का भविष्य क्या है। यह तो सबको मालूम है कि प्राचीन शास्त्रीय संगीत के प्रति आम जनता तटस्थ और उदासीन है। प्राचीन हिन्दुस्तानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत की आधुनिक जागृति के आन्दोलन का प्रभाव लोगों पर काफ़ी पड़ा है, इसमें कोई शक नहीं। मगर इसके होते हुए भी इस संगीत के प्रति लोगों के मन में एक तरह की उदासीनता का भाव भी है। परन्तु शास्त्रीय संगीत के व्यापक क्षेत्र में भी बहुत से गायकों के गायन में ख्याल की प्राचीन पद्धति के विरोध में एक प्रतिक्रिया की भावना मिलती है। कुछ लोग अपनी अलग गायकी अथवा शैली गढ़ने में लगे हुए हैं। इसको हम अनुशासन का अभाव ही कहेंगे। बात कड़वी जरूर है मगर उसका कहना भी आवश्यक है। जब तक हम इस अव्यवस्था का बहिष्कार और विरोध न करेंगे तब तक हम ख्याल-शैली के सिद्धांतों की रक्षा नहीं कर पायेंगे। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस वर्ग में कुछ गायक ऐसे भी हैं जो मनमानी करते हैं और एक नई गायन-शैली का निर्माण करके प्राचीन सिद्धान्तों का परित्याग ही नहीं करते परन्तु उनका तिरस्कार भी करते हैं। ऐसे प्रयोगवादियों पर कोई रोकथाम नहीं है। और न इस देश में ऐसी कोई प्रभावशाली और शक्तिशाली संस्था है जिसके सदस्य केवल गुणीजन हों और जिनके पास अधिकार हो कि वह ऐसी अव्यवस्था को रोकें। इस विषय में परम्परागत संगीत के विद्वान्, गायक और समालोचक ही अपनी आवाज़ उठा सकते हैं। यदि जनकल्याण की भावना वाले सच्चे और साहसी लोग इस प्रश्न को उठायेंगे तो ध्रुपद की तरह ख्याल भी अवनति के मार्ग पर चलने लगेगा। यही इस बड़े प्रश्न का उत्तर है। यदि ख्याल-शैली की पूर्ण रूप से रक्षा करने में संगीतज्ञों, समालोचकों, समाज-सुधारकों और जनता और सरकार का पूरा सहयोग होगा तो हमें पूर्ण आशा है कि ख्याल का भविष्य उज्जवल होगा। परन्तु हमें सावधान रहना चाहिए।

अंत में हम इस युग के कुछ प्रमुख ख्याल-गायकों के नाम देते हैं, जो अब नहीं हैं और उनका भी जो हमारे बीच में हैं और जिनसे हमें बहुत कुछ आशा भी है कि वह ख्याल-शैली को सुरक्षित रखने में कोई कसर न उठा रखेंगे। परन्तु यह सूची अधूरी ही समझना चाहिए।

स्वर्गीय उस्ताद फैयाज़ खां (बड़ौदा), उस्ताद अब्दुल करीम खां (बंबई), उस्ताद अल्लादिया खां (बम्बई), उस्ताद रज्जब अली खां (देवास), पंडित भास्कर राव बखले (पूना), उस्ताद मुश्ताक हुसैन (रामपुर), उस्ताद विलायत हुसैन खां (बम्बई), पंडित ओंकार नाथ (बड़ौदा) इत्यादि।

अब हम कुछ गायकों के नाम देते हैं जो अभी मौजूद हैं और जिनके गायन का आनन्द हमने अक्सर लिया है। यह सूची भी अधूरी ही समझी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायेगी।

केसर बाई, मोगूबाई, हीराबाई, गंगूबाई हंगल, श्री भीमसेन जोशी, उस्ताद अमीर खां, श्री शराफत हुसैन, पंडित विनायक राव पटवर्धन, श्री नारायण राव व्यास, श्री कृष्ण राव पंडित, श्री कृष्ण नारायण रतनजनकर और बहुत से होनहार तरुण गायक जिनका भविष्य उज्जला है।

इस विषय में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती कि भविष्य में क्या होगा। जनता की उदासीनता को यदि गायकों की उदासीनता का भी सहयोग प्राप्त हो जायेगा तब तो ख्याल-गायन में अराजकता होगी और वह ठीक से पनप नहीं सकता। अनुशासनहीनता ही हमारा सबसे बड़ा खतरा है। परन्तु ऐसा शायद नहीं होगा क्योंकि आशावादी ऐसा नहीं सोचते।

होरी-धमार

ध्रुपद-गायन की प्रथा में आलाप जरूरी है। पहले ध्रुपद-गायक किसी राग को आलापता है और बाद में उसका ध्रुपद गाता है। मगर इसके पहले कि वह कोई ध्रुपद की रचना शुरू करे, आलाप के बाद होरी-धमार गाना भी उसके लिए अनिवार्य है। ध्रुपद-गायक को तीन अलग-अलग शैलियों पर अधिकार प्राप्त करना है। पहली बात तो यह है कि उसका रागालाप उत्तम और दोषहीन होना चाहिए, उसको उसके नियमों से भलीभाँति परिचित होना चाहिए। जो उसका क़ायदा है, जो उसकी रीति और पद्धति है उसी का पालन करना होता है इसके लिए उत्तम शिक्षा और अभ्यास दोनों की जरूरत है। उसका राग भी सच्चा होना चाहिए और उसके राग के चरित्र में कोई दोष न होना चाहिए। इसके लिए भी शिक्षा आवश्यक है। यह अनिवार्य है कि गायक कायदे से किसी राग को आलापे और उसके अपने विशेष शब्दों का ही सही उच्चारण करे। "तेरे नैंने" की जगह "तेरे ड़ेड़ें" न हो और 'ण णें' की ध्वनि भी बार-बार न सुनाई दे। यह छोटी बात नहीं है और याद रखने योग्य है। आलाप की मर्यादा को भंग नहीं करना चाहिए।

आलाप के बाद गायक के लिए होरी-धमार गाना अनिवार्य ही समझा जाना चाहिए। ध्रुपद इसके बाद ही गाना चाहिए। मगर जिसको इसकी आदत नहीं है वह ध्रुपद ही की रचना गायेगा। इसका कारण उसकी अधूरी शिक्षा ही है। धमार गाने की आदत बहुत से ध्रुपदियों को नहीं होती। ध्रुपद के साथ की बारह मात्रा की चौताल फिर भी आसान है और उसमें वह दुगुन, चौगुन इत्यादि आसानी से कर लेता है मगर धमार ताल एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुश्किल ताल हो जाती है अगर गायक को उसके ऊपर अधिकार नहीं है। वह ऐसी मुश्किल ताल है कि उसका आरम्भ सम ही में होता है। इस ताल में एक कुशल पखावजिया अच्छी संगत करता है। तबलियों को प्रायः इस ताल की आदत नहीं होती। मगर अच्छा तबला-वादक भी धमार की बढ़िया संगत करता है और पखावज का सा आनन्द देता है।

होरी-धमार की रचनायें बड़ी सुन्दर होती हैं। होली और फाग और रंग ही पर अधिकतर रचनायें लिखी गयी हैं। मगर प्रेम, विरह, मिलन, रूठना, शिकायत, मनाना, रिझाना इत्यादि विषयों पर भी बहुत सी रचनायें हैं। कुशल और भावुक गायक धमार की रोचक कविता के शब्दों का उच्चारण बड़े उत्तम ढंग से करता है और ताल के मुश्किल से मुश्किल दर्जे दिखाकर अपने सम पर बड़े अचानक ढंग से आता है। गायक वही प्रतिभाशील है जिसका सम दूर से आता दिखाई दे। तबलिया यदि होशियार न हो तो बजाने में धोखा खा सकता है। यदि शब्द है "भंवरा रे पीतम कहां गंवाये" तो सम पहले ही शब्द पर होगा। कुशल गायक अपने गायन में अपने शब्दों के साथ ताल की ऐसी कठिन बोल बांट दिखा सकता है कि संगत करने वाला तबलिया अथवा पखावजिया घबराकर सम को ठीक से न दे पाये। धमार-गायन में ताल के विलक्षण चमत्कार दिखाये जाते हैं। मगर शर्त यही है कि गायक और वादक दोनों इस ताल के पण्डित हों। ऐसा जरा देखने में कम आता है।

ध्रुपद घरानों के कुछ गायकों को छोड़कर, जिनको धमार का अभ्यास और उसकी आदत रही है, ख्याल-गायकों में इसका चलन बिल्कुल नहीं रहा है। मगर एक ही ऐसा ख्याल का घराना है जिसमें धमार भी बहुत अच्छी गाई गई है। और यह है आगरा घराना। उसका एक विशेष कारण है। इस घराने के पूर्व पुरुष हाजी सुजान खाँ ने, जो अकबर के युग में थे, धमार परंपरा को अपने घराने में स्थापित किया। प्राचीन घरानों की ऐतिहासिक समीक्षा करते समय पता चलता है कि हाजी सुजान खाँ आगरे घराने की इस प्राचीन परंपरा के अन्वेषक थे। इस घराने में बाद में घग्घे खुदाबक्श ने आगरा घराना की ख्याल-शैली का आविष्कार किया। इसलिए ध्रुपद धमार परंपरा का खून इस घराने की रगों में बहुत समय में दौड़ता रहा है। और यही कारण है कि ख्याल-गायकों में केवल आगरे घराने के स्वर्गीय उस्ताद फैय्याज खाँ ही ऐसे गायक थे जो जितना सुन्दर आलापते थे उतनी ही सुन्दर धमार भी गाते थे? उनकी गाने की विशेषता यह थी कि वह संगीत के न जानने वालों को भी इस प्रकार के गायन से मना लेते थे और खुश कर देते थे। कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों का कहना है कि इस जमाने में ऐसे धमार किसी और गायक ने नहीं गाईं। यह राय बहुत हद तक ठीक है।

दूसरा ख्याल-गायक जिसने भी धमार बहुत अच्छी गाई वह थे बंबई के स्वर्गीय विलायत हुसैन खाँ। यह भी आगरा घराने के सुप्रसिद्ध गायक थे। आधुनिक युग में अच्छे-अच्छे ख्यालिये हुए हैं जिनमें अलादिया खां, हैदर खाँ, नत्थन खाँ, अब्दुल करीम खाँ, रजब अली खाँ, भास्कर राव बखले इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह सब ख्याल के बेजोड़ गवैये थे। मगर इनमें से किसी को भी होरी-धमार से कोई विशेष प्रेम न था। ऐसा कहने का केवल अभिप्राय यह है कि धमार की शैली ख्याल की शैली से बिल्कुल अलग है और उसका विशेष सम्बन्ध आलाप और ध्रुपद ही से है। इस शैली के दो एक विशेषण ही अब शायद बाकी रह गये हैं। आलाप और ध्रुपद की तरह इसका विशेष स्थान भी हमारे आधुनिक संगीत में है।

सादरा

यह शैली भी ध्रुपद और धमार की शैलियों के साथ है। इसके गाने के ढंग में भी ताल की बोल बांट का आनन्द आता है। यह झपताल की दस मात्राओं में गाया जाता है और इसमें भी दुगुन, चौगुन कहने का रिवाज है। इसके अलावा आड़ी-तिरछी बोल बांट भी इस प्रबंध में अच्छी लगती है। ध्रुपद और धमार गाने के लिए जैसे गला सुरीला और दमदार होना चाहिए और उसमें रोशनी होनी चाहिए उसी तरह सादरा गाने के लिए गायक का कण्ठ सुरीला और रोबीला होनां चाहिए। ऊँची और पतली आवाज में यह सब शैलियां अच्छी नहीं मालूम पड़तीं और न उनका कोई प्रभाव किसी श्रोता पर पड़ता है। इन तीनों शैलियों में ख्याल की तानें और फंदे नहीं होते। सुर में सीधे-सीधे शब्दों को रोचक ढंग से ताल में कहना ही सबसे जरूरी है। ताल का विशेष ज्ञान और अनुभव इन तीनों में अनिवार्य है। जो गायक ताल में चौकस नहीं होता उसके कण्ठ से सादरा कभी अच्छा नहीं लगता। इस शैली में हर बात नपी-तुली और भारी-भरकम होती है। गले को स्वतन्त्रता से इसमें हिलाना-डुलाना मना है। सच्चे स्वरों को सुरीली आवाज में साफ-साफ शब्दों में कुशलता से कहना इस शैली का प्रथम सिद्धान्त है।

ध्रुपद और धमार की तरह इस शैली का रिवाज भी अब धीरे-धीरे गायब हो रहा है। एक तरह से यह ध्रुपद और धमार से आसांन है मगर इसमें कला की दृष्टि से विशेषता प्राप्त करना कुशल गायक ही का काम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मगर खेद इस बात का है कि आजकल गायक सादरे का अभ्यास नहीं करते। संगीत विद्यालयों के विद्यार्थी तो अवश्य अपनी पाठ्यपुस्तक से इसके बारे में कम से कम इसकी परिभाषा जान लेते हैं। मगर सामान्य रूप से न तो गायक सादरा गाते हैं और न श्रोता उसे सुनते हैं। यदि संगीत-शिक्षक इस ओर ध्यान देंगे तो सम्भव है कि तरुण गायकों को इसका शौक़ हो।

सादरा गाना बच्चों का खेल नहीं है। जिन्होंने इस शैली के विशेषज्ञों को सुना है वह जानते हैं कि इसका गाना कितनी मेहनत और प्रतिभा का काम है। जिन्होंने तीस-चालीस बरस पहले मुरादाबाद के उस्ताद नज़ीर खाँ को सुना था वह जानते हैं सादरा कितनी उत्तम और विलक्षण शैली है। यह गायक जयपुर के उस्ताद कल्लन खाँ और अलवर के अलावन्दे दोनों के शिष्य थे और बाद में वह स्वर्गीय भातखण्डे जी के भी संगीत शास्त्र में शागिर्द हो गये थे। वह बड़े नामी और प्रतिभाशील गायक थे। उनका एक बहुत मशहूर सादरा राग शाहाना में है जिसके बोल हैं "अवगुन भरो सकल हौं दास तेरो, अपनो समझ माफ़" इत्यादि।

पुराने मशहूर गायकों में लखनऊ के दुल्हे खाँ का नाम भी सादरा गाने में चारों तरफ़ फ़ैल गया था। यह इस शैली के धुरन्धर गायक थे। उनके सुपुत्र स्वर्गीय अहमद खाँ जो, बीस-तीस वर्ष पहले लखनऊ के प्रमुख विद्वान् गायकों में थे, सादरा बड़े अच्छे ढंग से गाते थे। उन्हें धमार भी बहुत अच्छा गाने की आदत थी और मैरिस म्यूजिक कालेज और आम जनता में उनके कुछ अच्छे होनहार शिष्य भी थे।

तराना

एक पुराने गायक ने आजकल के तराने को सुनकर कहा था "इसमें सुर का क्या काम ? यह तो ज़बांदराजी है।" लोग अक्सर उस तराने की प्रशंसा करते हैं जो बहुत तेज़ रफ़्तार में गाया जाता है। तराने की पुरानी पद्धति को देखते हुए यह कसौटी ग़लत है। सच तो यह है कि बहुत तेज़ रफ़्तार, जिसमें गायक राग का आनन्द नहीं ले पाता, तराने की रोचक कला के लिए घातक है। तराना-गायक का काम यह नहीं है कि वह अपनी तेज़ गति से तबलिये को पराजित करे। जब वह तेज़ रफ़्तार की उधेड़-बुन में रहता है तो वह "दिर्रे दिर्रे" की डाक-गाड़ी छोड़ देता है और उसकी ज़बान मशीन की तरह हवा में भागने लगती है और वह तराने के और शब्दों को ठीक से नहीं कह पाता। उसके और तबला-वादक के बीच में युद्ध को देखकर श्रोता आश्-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाग्र हो जाते हैं और खुशी में आकर प्रशंसा की तालियां बजाने लगते हैं। परन्तु ऐसे गायन में राग के स्वरों का पता नहीं चलता। तराने के एक विशेषज्ञ, जो अच्छे और नामी ख्यालिये भी हैं, इस प्रकार के चमत्कार को दिखाकर श्रोताओं से बड़ी वाह-वाह लेते हैं। उसको अपनी जबान की तैयारी पर बहुत गर्व भी है। थोड़ी ही देर में वह सितार या सरोद की नक़ल करने लगती है।

तराने के शब्द निरर्थक होते हैं मगर उसमें उसके राग और ताल का पूरा आनन्द आता है। गमक इत्यादि के साथ कहे गये तराने में बड़ा आनन्द होता है। परन्तु अतिशयोक्ति हास्यजनक होती है। कुशल गायक के गायन में राग के स्वरों का अनोखा आनन्द होता है और वह तरह-तरह से अपने राग की व्याख्या करता है। तानों का इस शैली में निषेध नहीं है मगर वह साफ-सुथरी हों तो अच्छा है। जो गायक इसमें गमक की अतिशयोक्ति करते हैं वह केवल अपने गले का रियाज़ करते हैं। और जो "दिर्र दिर्र की झड़ी बाँधते हैं वह कभी-कभी सितार वादन की भद्दी नकल करते हैं। तराने की स्थाई और उसके अन्तरे की बंदिश को एक संगीत की रचना की तरह गाना चाहिए। उसमें राग का आनन्द आना चाहिए, रफ्तार का ही नहीं। इसकी भी अपनी विशेष गायकी है जो अब सुनने में नहीं आती। बहुत से तरानों की रचना बड़ी सुन्दर है। उदाहरण के लिए बहादुर हुसैन खाँ का राग देश का मशहूर तराना या राग बागेश्वरी का वह मशहूर तराना जिसके शुरू के बोल हैं "और तना दिरे ना" इत्यादि।

तराना गाना भी एक कला है जिसमें सन्तुलन ही सबसे बड़ा गुण है। इसमें भी तिल को मस्सा नहीं बनाया जाता।

लक्षण गीत

इस प्रबन्ध में राग का संक्षेप में वर्णन होता है और उसकी मुख्य विशेषतायें बताई जाती हैं। कुछ पुराने लक्षण गीत बड़े ही सुन्दर हैं जिनमें स्वरों और शब्दों का संयोग विलक्षण है। विद्वान् गायकों के रचे हुए बहुत से ऐसे अच्छे लक्षण गीत हैं। इस जमाने में 'चतुर पण्डित' के लक्षण गीत बहुत मशहूर हुए। 'चतुर पण्डित' स्वर्गीय भातखण्डे जी ही का नाम था और वह संगीत के अद्वितीय विद्वान् होने के अलावा स्वर में डूबे हुए बड़े रसिक और महान् संगीत-प्रेमी और संगीत-प्रचारक भी थे। वह बड़े-बड़े गायकों के सम्पर्क में रहे और उन्हें बरसों सुना। उन्हें सैकड़ों चीजें याद थीं। इसलिए उनकी संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रचनाओं से पुरानी चीजों की याद ताजा हो जाती थी। उनकी सूर मल्हार की रचना 'बरखा ऋतु बैरी हमारे' बहुत मशहूर हुई। परन्तु उनके बहुत से लक्षण गीत अधिक प्रसिद्ध हो गये हैं।

उनके लक्षण गीतों ही से हमें उनकी प्रतिभा का पता चलता है। उन्होंने बहुत अच्छे-अच्छे लक्षण गीत लिखे जिनमें संगीत के किसी विद्यार्थी को बहुत सी रागों की ठीक-ठीक परिभाषा मिल जाती है। एक बार तो पंजाब के एक मशहूर ख्याल-गायक उनका राग खंबावती का लक्षण गीत बड़े प्रेम से बड़ी देर तक गाते रहे और जब उनसे पूछा गया कि उस लक्षण गीत के लिखने वाले कौन हैं तो वह बड़े भोलेपन में बोले—"यह किसी पुराने बुजुर्ग की बंदिश है।" भातखण्डे जी उस समय जीवित थे मगर गायक को नहीं मालूम था कि वह लक्षण गीत उन्हीं का है। उस लक्षण गीत के पहले शब्द हैं "चतुर खंबावती के गुन गा गयो।" उनका बागेश्वरी का लक्षण गीत "गावत राग बागेश्वरी" भी बहुत से लोग गाते हैं। या फिर उनका राग कालिंगड़ा का लक्षण गीत "गावत कालिंगड़ा" भी बहुत अच्छा है। और बहुत से उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

लक्षण गीत के लेखक को कवि, संगीतज्ञ और विद्वान् सब एक साथ होना पड़ता है। लक्षण गीतों से संक्षेप में रागों का अच्छा-ख़ासा ज्ञान हो जाता है। कुछ कुशल पढ़े-लिखे घरानेदार गायकों ने भी बहुत से अच्छे लक्षण गीत लिखे हैं जिनसे उनकी विद्वता का पता चलता है। संगीत के विद्यार्थी इन लक्षण गीतों से बहुत लाभ उठा सकते हैं। इन लक्षण गीतों का आनन्द उनको सुर में सीधे-सीधे गाने में ही आता है। इसके गाने में गायकी का कोई प्रश्न नहीं उठता। लक्षण गीत तो राग की सारगभित परिभाषा ही होती है। परन्तु उनको हर गायक नहीं लिख सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय चार

लोकप्रिय संगीत

एक बार एक प्राचीन शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत के कट्टर विद्वान् और पक्षपाती ने कहा 'जहां तक लोक प्रिय संगीत की बात हैं मैं मानने को तैयार हूं कि वह लोकप्रिय है। मगर वह संगीत नहीं है।' यदि इस वाक्य में तीखे व्यंग की भावना है तो इसमें किसी और तर्क की आवश्यकता नहीं है। और यदि यह एक तरह का फैसला है तो हमें इस पर विचार करना पड़ेगा। इस विषय में एक और संगीत शास्त्रों के विद्वान् की बात याद आती है जो एकांत की निजी महफिल में तो ठुमरी पर बेचैन होकर सिर हिलाते थे और बड़ी वाह-वाह करते थे और यहां तक कि उमंग में आकर हारमोनियम पर उसके बोल भी बजाने लगते थे। मगर आम जनता के बीच में जब संगीत पर भाषण देते थे तो ठुमरी को बहुत भला-बुरा कहते थे और शास्त्रीय संगीत की दुहाई देते थे। तो अगर लोग सारे लोकप्रिय संगीत की तीव्र आलोचना करते हैं और संगीत के क्षेत्र में उसे एक गिरी हुई, निम्न श्रेणी की चीज समझते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में एक प्रकार की भ्रान्ति है और लोगों के मन में बड़े भ्रममूलक विचार हैं। शायद लोग, जिसको हम लोकप्रिय संगीत कहते हैं, ठीक से समझते नहीं कि उसका क्या अर्थ है। उसकी परिभाषा देने की कोशिश न करके हम संक्षेप में समझने की कोशिश करेंगे कि वह वास्तव में है क्या।

प्राचीन शास्त्रीय संगीत, जो राग-पद्धति पर निर्भर है, हर तरह से बहुत ऊंचा संगीत माना जाता है जो आम जनता समझ नहीं पाती। एक मामूली आदमी उसका आनन्द नहीं ले पाता। जब कभी वह अपना रेडियो खोलता है तो विविध भारती ही को सुनता है। पर फिर उसको गज़ल और ठुमरी में ही आनन्द आता है। वह हल्के-फुल्के गानों को भी लोकप्रिय संगीत ही मानता है। वह गीत ऐसी चीज जो हद से ज्यादा भावुकता से भरी रचना है उसका भी बहुत आनन्द लेता है और झूमने लगता है। मगर इसके साथ-साथ वह बनारस के दादरे को या लखनऊ की ठुमरी को भी बड़े प्रेम से सुनता है। और वह अगर धार्मिक विचारों का व्यक्ति है तो वह जितना कीर्तन और भजन में आनन्द लेता है उतना ही कव्वाली और नात में भी ले सकता है। भक्ति रस की हर रचना उसे अच्छी मालूम देती है। उसे सांसारिक और सात्विक भावनायें दोनों अच्छी लगती हैं। वह फिल्मी गीत और कीर्तन दोनों को प्रेम से सुनता है। संगीत उसके लिए कोई ऊँचे किस्म की कला नहीं है। वह केवल मनबहलाव का सहारा है।

हम ऐसे श्रोता की रुचि को समझते हैं और उसकी आलोचना नहीं करते। लोकप्रिय संगीत सबको अच्छा मालूम देता है। उसमें कौन सी विशेष शैली किसे अच्छी लगती है यह अपनी-अपनी पसन्द है। मगर हम ऐसे श्रोताओं को भला-बुरा नहीं कहते यदि वह शास्त्रीय संगीत को नहीं सुनते। सच तो यह है कि हमको अधिकार नहीं है कि हम इस प्रकार की तीव्र सात्विक आलोचना करें। यदि हम शास्त्रीय संगीत के अनुयायी और परम भक्त हैं तो हमें लोकप्रिय संगीत के प्रति किसी प्रकार की असहिष्णुता की भावना नहीं रखना चाहिए। संगीत में पक्षपात और कट्टरता से काम नहीं चलता। सच्चा संगीत-प्रेमी उदार चित्त और कुशल हृदय होता है।

इसके अलावा हर ऊंची प्राचीन कला के विरोध में एक प्रकार की प्रतिक्रिया की भावना होती है जो स्वाभाविक है और उसमें कोई हिंसा का भाव नहीं होता। हर देश में ऊंचे और महान् साहित्य के बाद लोकप्रिय साहित्य आता है। क्या यह सच नहीं है कि जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' के बाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बच्चन की 'मधुशाला' की भी गुंजाइश थी ? क्या ग्रीस और रोम के साहित्यिक सिद्धान्तों और नियमों के विरुद्ध अंग्रेजी कविता में प्रतिक्रिया नहीं हुई ? अगर ऐसा न होता तो अठारहवीं शताब्दी के अंत में वड्सवर्थ, कोलरिज, शैली और ब्लेक की कविता का क्रान्तिकारी प्रचार कैसे होता ? क्या तानसेन की ध्रुपद-परम्परा के विरोध की प्रतिक्रिया में ख्याल-शैली का जन्म नहीं हुआ ? क्या फिल्मी संगीत ने शास्त्रीय संगीत के विरोध में प्रतिक्रिया का भयंकर रूप धारण नहीं किया है ? प्रतिक्रिया का होना आवश्यक है चाहे वह हानिकारक हो या लाभदायक।

एक बात इस प्रसंग में और समझना चाहिए जो यहां पर लागू होती है। किसी भी कला, कविता या साहित्य के कड़े अनुशासन की कठोरता में कुछ समय के बाद एक प्रकार की नरमी, सहृदयता अथवा सुकुमारता की भावना किसी रूप में आ जाती है। श्रद्धा, मर्यादा और संयम की जगह मेल-जोल, आपसदारी और लोकप्रियता के भाव और विचार आ जाते हैं। विद्या और ज्ञान और कला के बड़े ऊंचे आदर्श, जो अपने उच्च शिखर पर विराजमान होते हैं, नीचे उतरकर लोगों के बीच आ जाते हैं और उनकें होकर उनके बन जाते हैं ऐसा होने में न तो उनकी मर्यादा भंग हुई और न उनकी उत्तमता और श्रेष्ठता में कई विशेष कमी आई। केवल लोगों की सुविधा के लिए उनका एक नया अनुवाद लोगों तक पहुंच गया और जिसे वह आसानी से समझ गये। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारा अधिकांश लोकप्रिय संगीत—ठुमरी, दादरा, गजल इत्यादि-हमारी संगीत परंपरा से जुड़ा हुआ है और उसके अन्तर्गत है और उसमें सम्मिलित भी है। वह उससे अलग नहीं किया जा सकता। और न हमें यह सोचना चाहिए कि प्राचीन परंपरागत संगीत के संसार से लोकप्रिय संगीत का देश निकाला हुआ है। जहां शास्त्रीय संगीत का संसार बसा हुआ है वही उसका अपना घर भी है। इसलिए हम लोकप्रिय संगीत को एक बाहर की अनजानी शैली नहीं समझ सकते। वह उसके अन्तर्गत है और उसको उससे अलग करना एक बालक को अपनी जननी से अलग करना है। पूछा जा सकता है कि जब एक ग्रामीण गायक अपने अपरिमार्जित, बेउस्तादाना ढंग से बरसात की अंधेरी रात में गुनगुनाता आ गाता है 'महराजा किवड़िया खोल रस की बूंदें पड़े' तो क्या वह हमारे कानों को अच्छा नहीं लगता ? क्या उसके गाने में किसी भी राग के स्वर नहीं लगते ? क्या शास्त्रीय संगीत का पंडित उस संगीत को जभी मानेगा जब वह सीधा-सादा ग्रामीण गायक एक सट्टे की तान ले या तेज रफ्तार का सरगम करे ? क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके गाने के स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के स्वरों से बाहर हैं? 'वह ग्रामीण गायक 'गवैया' न कहलाया जाये परन्तु क्या उसके स्वर अभारतीय हैं और हमारे अपने स्वर नहीं हैं? हमें इन प्रश्नों का उत्तर ईमानदारी से सही-सही देना चाहिए।

शास्त्रीय संगीत के विद्वान् को समझना चाहिए कि हमारा लोकप्रिय संगीत, जिसका व्यापक क्षेत्र है, हमारे परम्परागत संगीत की अपनी निधि है और किसी दूसरे संगीत की नहीं। संगीत के इस मौलिक सिद्धान्त को समझने के बाद हम लोकप्रिय संगीत का तिरस्कार किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते। प्रश्न तो यह है कि क्या लोक संगीत लोकप्रिय संगीत के अन्तर्गत नहीं है क्या लोक संगीत देश के संगीत का बहुमूल्य खजाना नहीं है? क्या ग्राम काव्य कविता के अन्तर्गत नहीं आता? क्या रहस में रासलीला की भावना नहीं है? क्या कृष्ण-संगीत और भाव-नृत्य में आधुनिक कथकनृत्य के चिन्ह नहीं मिलते? क्या लोक संगीत की धुनों और तर्जों में 'पीलू' सारंग, मींड़ और दुर्गा और देस के थोड़े-बहुत स्वर नहीं मिलते? क्या कलायुक्त अलंकृत संगीत ही यथार्थ में संगीत होता है? क्या शास्त्रीय संगीत और लोकप्रिय संगीत के बीच में सहयोग की भावना नहीं हो सकती? और क्या आधुनिक युग में शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थियों को लोकप्रिय संगीत गाने का कोई भी अभ्यास न होना चाहिए? इन सब प्रश्नों का सही उत्तर देकर ही लोकप्रिय संगीत की थोड़ी-बहुत व्याख्या कर सकते हैं।

लोकप्रिय संगीत क्या है इसे हम जभी समझ सकते हैं जब हम उसकी कुछ विशेष शैलियों के बारे में कुछ जानें।

ठुमरी

कभी-कभी कोई ख्याल-गायक बड़े गर्व से और झिड़ककर भी एक बड़े हाल में संगीत सम्मेलन की किसी गोष्ठी में अपने श्रोतागण से कह बैठता है 'मैं ठुमरी नहीं गाता। आप जानते हैं मैं ख्याल-गायक हूं।' इतना कहकर वह राग भैरवी में 'जोगी मत जा मत जा मत जा' का गायन बड़े उत्साह से शुरू कर देता है या फिर कोई और भजन सूरदास या मीरा का। इस भजन को वह अपनी राग जौनपुरी के अन्त में गाता है कि उसे वाह-वाह मिले। वह जान-बूझकर इस प्रकार के लोकप्रिय संगीत को अंत में गाता है जिससे उसके श्रोता आनन्दित हों। मगर देखना इस बात को है कि वह ठुमरी को लोकप्रिय संगीत के अन्तर्गत नहीं मानता। और यदि वह ठुमरी को निम्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रेणी की शैली समझकर उसकी फरमाइश होने के बाद भी नहीं गाता और 'जोगी मत जा' वाली चीज़ या कोई और भजन गाता है तो क्या वह यह समझता है कि ठुमरी गाना आसान है ? गायकों की यह बड़ी भूल है अगर वह ठुमरी गाना आसान समझते हैं। एक ख्याल-गायक बहुत ही कुशल ख्याल-गायक हो सकता है मगर यह जरूरी नहीं है कि वह ठुमरी भी कुशलता से गा सके। इसके अलावा वह धीमा तिलवाड़ा, झूमरा, आड़ा, चौताल ऐसी तालों को तो आसानी से गा सकता है मगर पंजाबी टेका तेवरा, दादरा या कहरवा उससे आसानी से नहीं गाया जायेगा। कहरवे में कलायुक्त ढंग से गायन करना धमार और सवारी ऐसी तालों के विशेषज्ञों को भी बहुत बार दूभर हो जाता है। क्या बात है कि धमार तालपर गाने वाला गायक दादरे को मजे में नहीं गा सकता ? यह वही बात है कि जरूरी नहीं है कि एक निपुण ध्रुपदिया या ख्यालिया ठुमरी भी अच्छी गा सके। यह भी हो सकता है कि वह ठुमरी बिल्कुल न गा सके। इसी से समझ लेना चाहिए कि ठुमरी गाना कितना मुश्किल है। शायद जिनमें यह क्षमता नहीं होती है कि वह ठुमरी गा सकें वही लोग इस कमी को छिपाने के लिए अक्सर कहा करते हैं हमें ठुमरी से क्या मतलब है हम न कोई कव्वाल हैं और न कोई बनारस की बाई। वह यह कह तो जाते हैं मगर मन में जानते हैं कि ठुमरी गाना कोई दिल्लगी नहीं है।

शासकीय संगीत के गायकों और विद्वानों को न तो ठुमरी का और न बाजे का बहिष्कार करना चाहिए। इस प्रकार की कठोर कट्टरता से हमारे आधुनिक संगीत का कोई भला नहीं होगा। उदाहरण के लिए, ठुमरी ऐसी शैली लोकप्रिय संगीत की सर्वश्रेष्ठ शैली है। ठुमरी है क्या ? उसमें कौन सा ऐसा गुण है जो लोगों को अपनी तरफ खींचता है ? इसी बात को समझना है। किसी ने ठीक कहा कि ठुमरी मुसव्विरी या चित्रकारी है। छोटी सी जगह में एक बड़े चित्र को अंकित करना, जिसके अन्दर बहुत से गहरे भाव हों, ठुमरी गाने के समान है। एक अंगूठी पर बारीक, महीन चित्रकारी के समान ही ठुमरी है। गागर में सागर ठुमरी की एक अच्छी परिभाषा है जिसे हम भूल नहीं सकते। कल्पना कीजिये कि बोल हैं "कोई सैंया को ले आओ।" इन शब्दों में जो भाव हैं उसको ठुमरी गायक अपने बोलों के स्वरों से ही बताता है। कहने वाले की लाचारी, बेबसी और दीनता और विनती, इन चार शब्दों "सैंया को ले आओ" के द्वारा दिखाये जायेंगे। मगर भावों के पहले जो बात आवश्यक है वह है शब्दों का स्वाभाविक और भावुक उच्चारण। "सैंया" को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सैंया "ही कहना है।" सैंइया "और सांइयां" अथवा "सौइंया" नहीं कहना है। ठुमरी के शब्दों का सही और भावुक उच्चारण गायक के लिए बहुत जरूरी चीज है। जिस गायक का उच्चारण सही नहीं है वह ठुमरी नहीं गा सकता। इसके बाद जो बहुत जरूरी चीज़ है वह है "बोल" अथवा बोल बनाव। ठुमरी की तो जान बोल है। जो बोल नहीं बना सकता उसे ठुमरी नहीं गाना चाहिए। ख्याल में जिस तेवर से शब्द कहे जाते हैं वह ठुमरी में शोभा नहीं देते। गायक को सावधान रहना है कि उसकी ठुमरी द्रुतलय का हल्का ख्याल न बन जाय।

पूरब की ठुमरी याने लखनऊ और बनारस की ठुमरी का निराला और विशेष आकर्षण बोल बनाव ही में है। और ठुमरी की शैलियों में इस तरह का निराला बोल बनाव सुनने में नहीं आता। ठुमरी गायक स्वरों की अद्‌भुत करामात दिखा सकता है और जो चाहे तो छोटी-छोटी सपाट तानें भी ले सकता है और अपनी आवाज से करुणा भी पैदा कर सकता है। मगर यह सब बेकार है अगर वह बोल नहीं बना सकता। फिर यह कि जो बोल एक दफ़े कहे उसे दोहराये नहीं। नये-नये बोल कहे और नई-नई तरकीबों से कहे। यह वह जभी कर सकता है जब उसमें कल्पनाशक्ति होगी और उसके पास स्वरों का ख़जाना भी होगा। ऐसे गायक की सूझ अनूठी होती है। उसे वह जगहें सूझती हैं कि जहाँ दूसरे का दिमाग नहीं पहुंच सकता। मगर शर्त यह है कि ऐसा करने में उसके बोल बनाव का क्रम या सिलसिला बिगड़ने न पाये। वह जब नई-नई तरकीबों से बोल कहे तो वह शब्दों का कोरा विश्लेषण ही न हो। परन्तु वह एक संगीतमय भावुकता भी लिये हो। किसी बात को बार-बार न दोहराये परन्तु नई-नई बात कहे और नये-नये ढंग से कहे। जिसमें कल्पना-शक्ति का अभाव होगा वह अपने कुछ विशेष बोलों को ही बार-बार दोहरायेगा और उसका गायन भावुक श्रोता को खलने लगेगा। असल में सच तो यह है कि एक सहृदय और भावुक कलाकार ही ठुमरी गा सकता है। जब दिल वाला दिल से ठुमरी गायेगा तो दिल पर चोट अवश्य लगेगी। और अगर वह अपने दिमाग़ पर जोर देकर ही ठुमरी गायेगा तो उसके गायन का श्रोता के दिमाग पर ही असर होगा और उसके दिल पर कोई चोट न लगेगी। ठुमरी का संबंध मस्तिष्क से नहीं, दिल से है। जिसके पास दिल नहीं है उसको ठुमरी के करीब भी न आना चाहिए।

पूरब की ठुमरी लखनऊ में पैदा हुई। लखनऊ ही इसका जन्म स्थान है। लखनऊ के नवाब सादिक अली खाँ ही इसके आविष्कारक थे और इन्होंने ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस नई शैली का सबसे पहले प्रचार किया। कथक नाच और लखनऊ की ठुमरी का साथ-साथ उत्थान हुआ और बहुत समय तक इन दोनों का साथ भी रहा। लखनऊ के बिन्दादीन, जिनको इस पिछले युग में लखनऊ कथक नृत्य का सर्वश्रेष्ठ अन्वेषक और नृतक माना जाता है, बहुत सी लय बोल की ठुमरियों की रचना कर गये हैं जिनमें "बिदा कहते" शब्द आये हैं। कथकों ने इनकी नकल में उनके नाम की बहुत सी ठुमरियाँ गढ़ी हैं जिनमें भी कभी-कभी यह शब्द आते हैं। मगर जिसको लखनऊ की ठुमरी कहते हैं वह ठहरी हुई लय में होती है और प्रायः पंजाबी ठेके, धीमे अथवा चांचर ताल में गाई जाती है। उसके बोल भी सीधे-सादे होते हैं और कानों को बहुत अच्छे लगते हैं। जैसे "सांची कहो मोसे बतियां कहां गवाई रतिया" या 'आंगन में मत सो" या वह वाजिद अली शाह वाली ठुमरी "बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय" जो हिन्दोस्तान भर में मशहूर है। और बहुत सी ठुमरियाँ हैं जो अभी भी लखनऊ में कभी-कभी गाई जाती हैं।

लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन्हीं सादिक अली खां से ग्वालियर के मशहूर और अद्वितीय हारमोनियम-वादक भैया साहब गनपत राव ने ठुमरी सीखी और उसे बाजे पर बजाया। उन्नीस सौ बीस के चार साल पहले तक भैया साहब या भैया जी का नाम सारे भारत में फैल गया था। वह ग्वालियर-नरेश की संतान थे। उनकी माँ का नाम चन्द्रभागा था और उनके एक और भाई थे जिनका नाम बलवन्तराव था। भैया जी ने हारमोनियम ऐसे विदेशी बाजे को इस कलायुक्त ढंग से बजाया कि हारमोनियम का महत्व बहुत बढ़ गया। अच्छी-अच्छी महफिलों में वह अपना बाजा बजाते थे और बड़े-बड़े शास्त्रीय संगीत के उस्तादों से उनको दाद मिलती थी। कलकत्ता, गया, लखनऊ और रामपुर ही यह ज्यादा रहे। शास्त्रीय संगीत शिक्षा उन्होंने जयपुर के उस्ताद बंदे अली खाँ बीनकार से भी ली थी। मगर उन्होंने बाजे ही का शौक किया और उस पर ठुमरी और दादरा ही बेजोड़ बजाया। बाजे में उनके बहुत से शिष्य थे, जिनमें गया के सोहनी बाबू, बम्बई के बशीर खाँ, रामपुर के इब्बन मियाँ और बदायूं के प्यारे मियाँ खास थे। मगर ठुमरी में उनके सर्वश्रेष्ठ शिष्य मौजुद्दीन खाँ थे जो कलकत्ता और लखनऊ ही में ज्यादा रहते थे। पिछले पचास वर्षों में मौजुद्दीन का नाम बहुत हुआ और अच्छे-अच्छे गायकों ने उनकी प्रशंसा की। ऐसी ठुमरी और किसी गायक से नहीं सुनी। दर्जनों गाने वालियां उनकी शिष्या हो गई थीं जिनमें कलकत्ते की गौहर जान और नूरजहाँ का नाम भी था। वह ठुमरी गायन में निराले थे। उनके बाद एक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखनऊ के गायक को ठुमरी-गायन में बहुत ख्याति मिली। उनका नाम था बाबा नसीर खां जो देहली घराने के थे मगर जिन्होंने ख्याल छोड़कर ठुमरी ही गाई और उसमें कमाल दिखाया। लखनऊ के कुछ पेशेवर और शरीफ गायक भी उनके शागिर्द हो गये थे जिनके मशहूर कथक नृतक स्वर्गीय शम्भू महाराज भी थे।

मौजुद्दीन ने जिस ठुमरी को भैया जी से सीखा था वह लखनऊ ही की ठुमरी थी जिसे वह बहुत अच्छा गाते थे। उनकी एक मशहूर ठुमरी भैरवी में थी जिसके बोल थे "सांवरिया ने जादू डारा बाजूबन्द खुल खुल जाये" जो अभी भी गाई जाती है। लखनऊ की ठुमरी के बहुत से विशेष गुण थे जिनके कारण उसकी कला इतनी प्रसिद्ध हुई। तो प्रश्न उठता है कि लखनऊ की ठुमरी की विशेषता क्या थी ? इसका उत्तर है "कलायुक्त बोल-बनावे"। बोल सीधे-सादे होते थे मगर उनको कहना मुश्किल होता था। जैसे लखनऊ की बातचीत में शिष्टता और मिठास थी वैसे ही लखनऊ की ठुमरी के बोल थे। साफ-सुथरे, मीठे और भावुक बोल कहना कोई आसान बात नहीं थी। उसमें मीठी बातचीत का आनन्द आता था। अभी और शहरों में जाकर इस बातचीत का नमूना नहीं मिलता और यह देखकर अक्सर निराशा होती है। लखनऊ के ठुमरी गायकों ने बोल पर ही सबसे अधिक ज़ोर दिया। सीधे-सादे बोल होना चाहिए मगर उन्हें ढंग से कहना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि बोल हैं "जा मैं तोसे नाहीं बोलूं"। इसको इस ढंग से कहना चाहिए कि बोल ही में जा का भाव दिखाई दे। ऐसा कहना आसान नहीं है। दूसरी पंक्ति तो और मुश्किल है—"जिया की बात नाहीं खोलूं" इन बोलों को नज़ाक़त और भावुकता से कहना ही लखनऊ की ठुमरी की जान है। स्वरों को सीधे सीधे शब्दों की मदद से कहना स्वरों के चमत्कार दिखाने में बहुत ज्यादा कठिन है। बोल सीधे होते हैं और उनमें कोई मुश्किल नहीं होती। मगर जब कोई गायक कहने बैठता है तो उसे पता चलता है कि सीधे और भावुक बोल बनाना मामूली कला नहीं है। जिसको इस बात की आदत नहीं है वह बोल को इस भावुक ढंग में नहीं कह सकता। इसीलिए ठुमरी गाना बहुत मुश्किल है। लगती सीधी है मगर कहने में मुश्किल साबित होती है। फिर भी इसका बोल बनाव और किसी ठुमरी में नहीं मिलता। जिन्होंने इस ठुमरी को बरसों सुना है वो ही इन बोलों को आसानी से कह सकता है।

बनारस की ठुमरी लखनऊ की ठुमरी का अनुवाद अथवा पाठ्यान्तर है। बनारस की ठुमरी पर लोक-संगीत का काफी प्रभाव पड़ा है। वह लोक-संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से काफी प्रभावित हुई और उसमें चैती, कजरी, सावन इत्यादि के स्वर भी आ गये हैं। उसकी दिल को लुभाने वाली एक प्रकार की रोचक ग्रामीणता, अल्हड़पन और लोक-संगीत का विशेष अटपटा उच्चारण—यह सब उसके बोल-बनाव बन गये। वह लखनऊ की ठुमरी की तरह शिष्ट और परिमार्जित न हो, मगर लोक-संगीत के भावुक प्रभाव से उसमें एक प्रकार की बेबाक चंचलता और स्वाभाविकता है जो लखनऊ की ठुमरी में नहीं है। "नाहीं परत मंका चैन" ऐसे बोलों का बोल-बनाव लखनऊ की ठुमरी में और होगा और बनारस की ठुमरी में कुछ और। इसका ठीक पता व्यावहारिक संगीत ही से चल सकता है। बनारस की मशहूर बाइयों ने ठुमरी की व्याख्या आधुनिक युग में बहुत अच्छी की। इस ठुमरी की संगत करने वाले तबला-वादकों में स्वर्गीय कण्ठे महाराज और बीरू मिश्र का नाम बहुत हुआ। इस पिछले युग में विद्याधरी, मोतीबाई, रसूलनबाई, सिद्धेश्वरी देवी और गिरजा देवी का काफी नाम हुआ है। पिछले दो नाम शास्त्रीय संगीत में भी कुछ हद तक सम्बन्धित हैं। मगर बनारस की बाइयों ने ठुमरी ही में विशेष प्रतिभा दिखाई। अभी भी बनारस की ठुमरी जिन्दा है जब लखनऊ की ठुमरी का बोल-बनाव अब सुनने में नहीं आता। अब शायद लखनऊ के बाहर के कुछ लोग इसको जीवित रख सकेंगे। रही बेगम अख़तर की बात वह लखनऊ की ख़ालिस ठुमरी न गाकर एक मिश्रित ढंग की ठुमरी गाती हैं जिसमें पंजाबी अंश भी होता हैं। बोल-बनाव उनकी विशेषता नहीं है।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि पूरब की ठुमरी ही असली ठुमरी है चाहे वह लखनऊ की हो या बनारस की। पूरब की ठुमरी एक ऐसी अनूठी और अद्वितीय लोकप्रिय संगीत की शैली है कि वह और कहीं नहीं पाई जाती। एक तीसरी ठुमरी की शैली जिसका आजकल काफ़ी रिवाज है वह है पंजाब अंग की ठुमरी। इस जमाने में बरकृत अली और बड़े गुलाम अली ने पंजाब के लोकप्रिय संगीत की इस विशेष नई शैली को बहुत अच्छा गाया। इसका कारण यह है कि इनके पिता कमूर के उस्ताद अली बख्श, जो पटियाले के मशहूर गायक फतहअली खां के शिष्य थे, उन्नीस सौ चौबीस में लखनऊ आये और लखनऊ अखिल-भारत संगीत-सम्मिलन में उन्होंने भाग लिया। मगर ख़याल-गायन में उनका कोई नाम न हुआ। लोकप्रिय संगीत में उन्होंने इस शहर में काफी नाम पैदा किया। जिन लोगों को याद है वह इस बात को बता सकते हैं कि एक गजल, जिसकी पहली पंक्ति थी "क्या तुम नहीं हो मेरी तमन्ना जवाब दो" ने इनको बहुत मशहूर किया। मगर वह जो कुछ हो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखनऊ की इस यात्रा में उन्होंने यहां की ठुमरी सुनी जिससे वह बहुत प्रभावित हुए। ठुमरी याने पूरब की ठुमरी पूरब की देन थी और पंजाब में उसका अस्तित्व नहीं था। अलीबख्श इस ठुमरी को सुनकर बहुत खुश हुए और वह अपने दिल में उससे बहुत प्रभावित भी हुए। वह उसकी याद अपने साथ ले गये और अपने गाने के द्वारा उन्होंने इस ठुमरी के मूल सिद्धान्त का प्रचार किया। अपने घराने के संगीत-क्षेत्र में उन्होंने इस ठुमरी का बीज बोया। यह तो सम्भव नहीं था कि वह और उनके शिष्य ठुमरी के बोल वैसे ही ढंग से कहें जैसा लखनऊ और बनारस में होता है। तो इसका परिणाम यह हुआ कि पूरब की ठुमरी का अनुवाद उन्होंने पंजाब की ठुमरी में किया जिसमें वहाँ के लोक-संगीत—पहाड़ी और माहिया इत्यादि—का विशेष प्रवेश हो गया। कुछ सालों पहले बड़े गुलाम अली इस पंजाबी ठुमरी को बड़े सुन्दर ढंग से गाते थे। उनके गले में बड़ी लोच थी और वह बड़ी आसानी से हर जगह घूम जाता था। उनमें कल्पना-शक्ति भी थी और उनको बड़ी अच्छी जगहें भी सूझती थीं जिन्हें यह बड़ी भावुकता से और बड़े निराले ढंग से कहते थे। परन्तु उनकी ठुमरी में पूरब की ठुमरी का बोल-बनाव नहीं था। इस दोष को वह अपने लोक-संगीत के भावुक स्वरों के चमत्कार ही से छिपाते थे और उनके श्रोतागणों को इसका पता बिल्कुल नहीं चलता था। यथार्थ में उनका गला पंजाब के हल्के-फुल्के भावुक लोक-संगीत ही के लिए बना था। ख्याल-गायन में भी वह अपनी आवाज से बहुत फायदा उठाते थे। इसीलिए वह पटियाली घराने की गायकी के गुलाम नहीं थे। उन्होंने अपना एक अलग रास्ता ढूंढा और अपनी गायकी अलग बनाई थी। जिसमें वहाँ की पुरानी गायकी के कोई लक्षण नहीं थे। इस युग के प्रमुख घरानेदार ख्यालियों में उनका नाम न लिया जायेगा मगर देश के भावुक गायकों में उनका प्रमुख स्थान था। उन्होंने पंजाब की ठुमरी का बहुत जबरदस्त प्रचार किया मगर उनकी तरह उसको किसी और ने नहीं गाया। उनकी यही विशेषता थी।

ठुमरी ऐसी शैली का हमारे आधुनिक संगीत में विशेष स्थान है। पूरब की ठुमरी की परम्परा का अंत अभी नहीं होगा। हमारे ध्रुपद-गायकों और ख्याल-गायकों को भी सहृदयता से इस लोकप्रिय शैली को अपनाना पड़ेगा और इस विषय में वह तटस्थ और उदासीन नहीं रह सकते। उसका कारण यह है कि ठुमरी हमारे आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के अन्तर्गत है, उसके बाहर नहीं है। वह ऐसी शैली है कि जिसका प्रभाव संगीत के कट्टर पण्डितों और विद्वानों पर भी पड़ता है। उसके बहुत से खुफ़िया प्रेमी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जनता के सामने तो उसका तिरस्कार अवश्य करते हैं परन्तु एकांत में उसका बहुत आनंद लेते हैं।

दादरा

ठुमरी के बाद ही दादरा आता है। मगर इन दोनों का साथ बराबर रहा है। जो ठुमरी गा सकता है वह चाहे तो कुछ अभ्यास के बाद दादरा भी अच्छा गा सकता है। वैसे तो ठुमरी और दादरे का चोली-दामन का साथ है। मगर दादरा गाने की आदत डालना पड़ती है। उसमें ठुमरी से कम जगह और कम गुंजाइश होती है। मगर बोल-बनाव उसमें भी खास चीज है। दादरा ताल छः मात्रे की होती है और इन्हीं छः मात्राओं के अन्दर बोल बनाना पड़ता है। उनके चलन में दादुर (मेंढक) की चाल का पता चलता है। ठुमरी की तालें इनसे बड़ी होती हैं और इस कारण बोल-बनाव में ज्यादा आसानी होती है - ठुमरी की तुलना में दादरे का सम जल्दी आता है और इसलिए छोटी सी जगह में बोल बनाना जरा मुश्किल हो जाता है। यदि ताल कहरवा प्रयोग में लाया जाता है तो उसमें भी चार ही मात्रा होती हैं। मगर इन तालों में उत्तम बोल कहना कला की खूबी है। यह तो मानना पड़ेगा कि दादरे में चंचलता के भाव कुछ अधिक होते हैं इसके साथ-साथ इनके शब्दों के वातावरण को छोटे-छोटे भावुक बोलों से दिखाना पड़ता है।

दादरों के शब्द बड़े मधुर और भावुक होते हैं और उनमें कविता का बड़ा आनंद आता है। जैसे "पानी भरे री कौन अलवेले की नार झमाझम। कांधे रसरिया सिर पर गगरिया, तिरछी नजरों से घायल करे। कौन अलबेले की नार झमाझम।" या "तोरे नैनों ने जदुआ डाल मारा नजर का भाला" अथवा "मोरे सैंया उतरेंगे पार नदिया धीरे-धीरे बहो।" अथवा "चली जा मोरी नैया किनारे-किनारे" या "भंवरा रे हम परदेसी लोग। कब के बिछड़े आज मिलेंगे, नदी नाव संजोग।" या "जरा बोलो सांवरिया प्यारे।" या "तू प्रेम की नजर सों नजरिया मिलाये जा।" या "नदिया किनारे मोरा गांव" "तुम अहियो कान्हरो" या 'किसने चिलमन से मारा नजारा मुझे।" या "मार कटारी मर जाना अब दिल न किसी से लगाना।" या "कतल कर डाला राम।" या "बनाओ बतियां चलो काहे को झूठी।" और वह मशहूर दादरा जो भैया गनपत राव अपने बाजे पर बजाया करते थे—"नजरियों से जी भर दूंगी छूने न दूंगी सरीर।" इत्यादि-इत्यादि।

बनारस के दादरे अपनी तरह के निराले होते हैं और इनमें भावुक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविता और कोमल कल्पनाओं का मिलन होता है। जैसे "मोरे जुबना पर आई बहार बलम परदेश न जइहो।" "या रंग चुए री चुनरिया मोरा सैंया खबरिया न ले।" यह वह दादरा जिसमें लोक-संगीत का भावुक उच्चारण है "राजन गइला कौन देश कोयलिया बन-बन डोले।" इन दादरों को बनारस की बाइयों ने सुन्दर ढंग से गाया है। दादरे की गायन-शैली इतनी ही रमणीक और कठिन और सुहावनी है जितनी ठुमरी की। शास्त्रीय संगीत वाले दादरे को ठुमरी से नीचे श्रेणी ही का समझते हैं। मगर उनको कायल किसी तर्क से नहीं किया जा सकता। एक कुशल और प्रतिभाशील सुरीला और भावुक गायक ही उनको अपनी ठुमरी और अपना दादरा सुनाकर यह साबित कर सकता है कि दादरा की गायन-शैली भी ठुमरी की गायन-शैली के समान भावुक और रोचक है और वह भी कला की दृष्टि से स्वीकार करने योग्य है। गायक का गाना ही उसकी सबसे बड़ी दलील होती है।

ग़ज़ल

लोकप्रिय संगीत में ग़ज़ल का विशेष स्थान है। जो उर्दू भी नहीं जानते वह भी ग़ज़ल सुनने के इच्छुक होते हैं। ग़ज़लें सबको आकर्षित करती हैं। यहाँ तक कि बंगाली गायक भी जो उर्दू और सरल फ़ारसी के शब्दों का भी सही उच्चारण नहीं कर पाते वह ग़ज़ल गाने का प्रयत्न करते हैं। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि ग़ज़लों की कविता में मन को रिझाने की भावुकता होती है और उसके शब्दों में एक अजीब मिठास होती है जो कानों को भली मालूम देती है। वृजभाषा, बंगाली और सरल उर्दू ऐसी भाषायें सुनने में भी अच्छी लगती हैं चाहे हम उनके प्रत्येक शब्द का अर्थ समझें या न समझें। चार-पाँच सौ वर्ष पहले जब एक फ़ारस का कवि अली हज़ी अपनी भारत-यात्रा में मथुरा, वृन्दावन के बीच में से गुज़र रहा था तो उसने देखा कि एक लड़की जो अपनी माँ के पीछे-पीछे देहात में जा रही थी, एक क्षण रुक कर अपनी माँ से बोली "मैया री मैया, मोरे पांव में कांकरी सांकरी सी गरत हैं।" वह यह सुनकर ठिठक कर खड़ा हो गया। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ कि गाँव की एक मामूली देहात की लड़की ऐसी मधुर, संगीतमय भाषा बोल रही है। बाद में उन्होंने ब्रजभाषा का अच्छा अध्ययन किया और वह उसके स्वाभाविक माधुर्य से बहुत चकित भी हुए। ऐसे ही जब एक सहृदय हिन्दी भाषी उर्दू का यह शेर सुनता है तो उसे बड़ा आनन्द आता है:—

"डाली-डाली पत्ता-पत्ता हाल हमारा जाने है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने न जाने गुल ही न जाने बाग़ तो सारा जाने है।"

बाद में उसे पता चलता है कि यह महाकवि मीर का शेर है। उर्दू ने हिन्दी और ब्रजभाषा की कोमल पदावली को अपना बनाकर और उनके मुहावरों को अपने में समेट कर अपने माधुर्य को दस गुना बढ़ा दिया। यह देन हिन्दी ही की है मगर धीरे-धीरे हिन्दी और क्लिष्ट और संस्कृत-गर्भित हो गई और उसने अपने मुहावरों का परित्याग करके अपनी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी। इसी तरह बाउल सुनकर अथवा टैगोर की कविता पढ़कर हमें पता चल जाता है कि बंगाली कितनी सुन्दर और मधुर भाषा है। और भी भाषायें इस तरह की हैं।

सरल उर्दू की ग़ज़लें आसानी से समझ में आ जाती हैं। और जिन ग़ज़लों की भाषा ज़रा मुश्किल और फ़ारसी मिश्रित होती है वह यदि आसानी से समझ में नहीं आती तो सुनने में अवश्य अच्छी लगती है।

लोकप्रिय संगीत की शैलियों में ग़ज़ल सबसे अधिक लोकप्रिय मालूम पड़ती है अगर फ़िल्मी संगीत को छोड़ दिया जाये। मगर हमें जानना चाहिए कि अब ग़ज़ल पुराने ढंग से नहीं गाई जाती। पचास-साठ वर्ष पहले गायक अपनी ग़ज़लों को राग-रागिनियों में गाया करते थे। इस रिवाज़ को मानने वाले अभी भी कुछ गायक इधर-उधर अक्सर मिल जाते हैं। पहले ग़ज़लें अच्छे रागों में गाई जाती थीं। उनकी तालें भी अच्छी होती थीं जैसे सवारी, झपताल, तेवरा, दीपचंदी इत्यादि। गायक जिन ग़ज़लों को गाते थे वह महान् कवियों की रचनायें होती थीं जिनमें ग़ालिब, ज़ौक, ज़फ़र, दाग़, मीर और मोमिन और इक़बाल ऐसे कवि होते थे। ऐसे कवियों की अच्छी रचनायें ही चुनकर गायक उन्हें गाया करते थे। जिन रागों में यह ग़ज़लें गाई जाती थीं वह सही ढंग से गाई जाती थीं और उनमें और रागों की अनाप-शनाप मिलावट नहीं होती थीं जैसा आजकल के संगीत-निर्देशक करते हैं। प्रतिभाशील गायक की ग़ज़ल शास्त्रीय संगीत के अन्दाज से गाई जाती थी। उसमें शब्दावली, स्वर, राग, भाव, ताल सबका आनन्द आता था। उसकी शास्त्रीय रूप-रेखा कभी नहीं बिगड़ती थी। मगर साथ-साथ कमाल यह था कि वह गंभीर अथवा भावुक ग़ज़ल ही होती थी और ध्रुपद और ख्याल नहीं बन जाती थी। गायक उसकी कविता और उसके भावों के वातावरण को किसी राग में गाकर सुरक्षित रखता था और हर ढंग से उसे लोकप्रिय बनाता था।

कुशल और प्रवीण गायक राग दरबारी में ही इक़बाल की उस मशहूर ग़ज़ल को गाते थे जिसका पहला शेर है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"कभी ऐ हक़ीकते मुंतज़र नज़र आ लिबासे-मजाज़ में।
कि हज़ारों मिजरे तड़प रहे मेरी एक जबीने-नियाज़ में।"

वह इसको इस ढंग से गाता था कि सुनने वालों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। किस भावुक श्रोता ने बहादुर शाह 'जफ़र' की उस ग़ज़ल को नहीं सुना जिसके दो शेर नीचे दिये जाते हैं? यह ग़ज़ल राग देस में गाई जाती है :—

"कभी बन संवर के जो आ गये तो बहारे हुस्न दिखा गये।
मेरे दिल को रोग लगा गये एक नया शिगूफा खिला गये॥
लगे क्यों न आंसुओं की झड़ी कि मुहब्बत आके गले पड़ी?
घड़ी कौन सी वह जिस घड़ी मेरे दिल को रोग लगा गये॥"

इस भाषा को तो हर हिन्दी वाला भी आसानी से समझ सकता है और इस ग़ज़ल का आनन्द ले सकता है। या वह ग़ज़ल जिसका पहला दूसरा शेर हर रसिक की ज़बान पर होता है—:

"पी के हम तुम जो चले झूमते मयखाने से।
झुक के कुछ बात कही शीशे ने पैमाने से॥
हमने देखी है किसी शोख़ की मस्ती भरी आंख।
मिलती जुलती है छलकते हुए पैमाने से॥"

यह ग़ज़ल मिश्रित पीलू ही में गाई जाती है।

या मीर की वह ग़ज़ल जिसका पहला शेर जब पीलू के सुरों में भावुकता से कहा जाता है तो सुनने वालों को तड़पा देता है:—

"क्या हाल कहूं दिल जाने का दिल जाने में क्या-क्या होता है।
मैं दिल से लिपट कर रोता हूं दिल मुझसे लिपट कर रोता है॥"

या राग शाहाना में गाई गई राग़ की मशहूर ग़ज़ल जिसका पहला/ शेर है—

"ज़माना तेरा मुबतिला हो रहा है।
तुझे भी ख़बर है कि क्या हो रहा है।"

या गालिब की वह मशहूर और सर्वप्रिय ग़ज़ल जो सारंग के स्वरों में अक्सर गाई जाती है—

"नुक़ताचीं है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने।
क्या बने बात जहां बात बनाये न बने।"

इन उदाहरणों में पता चलता है कि पहले के गायक उत्तम कविता चुनते थे और फिर उस कविता में ग़ज़ल की पंक्तियां चुनकर राग और ताल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में गाते थे। उस समय तक ग़ज़लों का संगीत शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत था। यह पुरानी ग़ज़ल की बात थी। मगर अब इस परंपरा का अंत सा हो गया है।

आजकल की नई गजल बिल्कुल ही अलग है। शकील बदायुनी, साग़र और बेहज़ाद ऐसे आधुनिक कवियों की ग़ज़लों को ही लोग पसंद करते हैं। यह ग़ज़लें कुछ भावुक स्वरों में चलती-फिरती तर्जों और धुनों में बांधी जाती हैं और लोग इन्हें बड़े प्रेम से सुनते हैं। कहरवे का चार मात्रा का ठेका बहुत सी इस किस्म की रचनाओं के लिए बहुत उपयुक्त होता है। सुनने वालों के सिर ही नहीं हिलने लगते, उनके पैर भी हिलने लगते हैं। भावुक संगीत और महाभावुक श्रोता जब इनका दोनों का संयोग हो जाता है तो इस प्रकार के संगीत को पूरी सफलता प्राप्त हो जाती है। आजकल लोग राग मालकोश और राग शंकरा में गाई गयी गजलें नहीं सुनते। आजकल की भावुक ग़ज़लें जितने अधिक सस्ते और भावुक स्वरों में गाई जाती हैं उतनी ही ज्यादा और भी लोकप्रिय और सफल हो जाती हैं। राग और ताल का अब ग़ज़लों में विशेष स्थान नहीं है। ग़ज़ल की धुन, उसकी तर्ज और उसकी शरीर हिलाने वाली मस्त चाल--यही बातें श्रोता पर प्रभाव डालती हैं। कविता भी अब सस्ती और बाजारू होती है जिसको सुनकर मामूली से मामूली आदमी फड़क उठता है। जैसे:—

"कोई उनसे जाकर कह दो मेरा हाल बुरा है अब तो।
जब सारा आलम सोता है मैं रात को रोया करता हूं।" इत्यादि।

फिल्मी गीत और गाने

हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि आजकल के सस्ते, भावुक संगीत में फिल्मी गानों का विशेष स्थान है। चाहे वह सोलह-सत्रह वर्ष का विद्यार्थी हो या कालेज की अठारह वर्ष की छात्रा अथवा अधेड़ उम्र का पढ़ा-लिखा शरीफ इंसान या रिक्शेवाला या दूकानदार, सब फिल्मी गानों पर, झूमते हैं और उन्हें कभी-कभी गुनगुनाते भी हैं। कम से कम अपने गुसलखाने में तो बहुत से लोग छिपकर इन गानों को अक्सर गुनगुनाया करते हैं। किसी ज़माने में फ़िल्मी गीत बहुत चले और रेडियो वालों ने उनकी खूब नकल की और अपने भी अलग गीत बनाये। इन गीतों के विषय प्रेम, विरह, तड़पन, रोना, तड़पना, आशा, निराशा ही हुआ करते थे। और इनके गायक भी तरुण भावुक उभरते हुए कलाकार ही हुआ करते थे जो संगीत को कभी सीखते नहीं थे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मगर गले को दबाकर और आवाज को हलका करके वह अपनी भावुक जनानी आवाज़ों का बहुत फायदा उठाते थे।

फ़िल्मी गानों की बहुतायत और उनके प्रकारों पर लिखना आसान नहीं है। फ़िल्म के संगीत के विशेषज्ञ अपना दिमाग लड़ाया करते हैं कि नई-नई तर्जें कैसे बनायें। गीत लिखने वाले और स्वरकार दोनों का उद्देश्य यही होता है कि ऐसा गाना बने कि लोग उसको सुनकर फड़क जायें और उसकी ख्याति चारों तरफ फैल जाये। जब इक्के-तांगे वाले उस गाने को गुनगुनाने या गाने लगें तो समझ लेना चाहिए कि वह गाना फ़िल्मी संगीत की महानता और सफलता का प्रतीक है। ऐसे ही गाने फ़िल्मी संगीत के मापदण्ड बन जाते हैं। ऐसे ही भावुक और सस्ते गानों से जनता की रुचि का पता चलता है। उसी से आम जनता की नब्ज का भी पता चलता है। इन गानों की गिन्ती बेशुमार है। अच्छी सुरीली आवाजों में यह गाने गाये जाते हैं और इनमें से कुछ की बंदिश में थोड़ी-बहुत समझ भी होती है। मगर यह सब धुनें सस्ती और बाजारू होती हैं।

जब फिल्मी संगीत के निर्माण करने वाले पुरानी चीजों और रचनाओं को चुराकर अपना बनाते हैं तो उनकी पुराने रूप बदसूरत हो जाते हैं और उनकी पुरानी रोचकता का अंत हो जाता है। दादरों और ठुमरियों की दुर्गत तो बन जाती है परन्तु जब ऐसे लोग शास्त्रीय संगीत की रचनाओं को भी नहीं छोड़ते तो संगीत की इस अराजकता पर खेद होता है। ऐसे संगीत गढ़ने का परिणाम यह होता है कि रागों के रूप भी बिगड़ जाते हैं और कहीं के स्वर कहीं लगा दिये जाते हैं। ऐसी अराजकता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता। जिसके जो जी में आता है करता है। कोई भी रोकथाम नहीं है। इस अंधेर नगरी के चमत्कार निराले हैं।

बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि लोग अश्लील फिल्मों के विरोध में अपनी आवाज़ें बहुत बुलन्द करते हैं और भारतीय संस्कृति की दुहाई देकर अभारतीय चीजों के प्रदर्शन पर हाहाकार मचाते हैं। मगर जब संगीत की पुरानी रचनाओं का सत्यानाश किया जाता है और रागों को बिगाड़ा और भद्दा या कुरूप और विदेशी जामा पहनाया जाता है तो लोग चुप रहते हैं और ऐसे अभारतीय प्रयोगवाद के विरोध में कुछ नहीं कहते। यहां तक कि हमारे संगीत संसार के विद्वान् और महारथी भी कुछ नहीं बोलते और अपनी जबानों पर ताले लगा लेते हैं। विदेशी संगीत शैलियों को खंगालना और बात है मगर अपने देश के प्राचीन संगीत के साथ मनमानी करना संगीत में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक निरंकुश शासन के समान है। एक प्रकार से यह भारतीय संगीत के सांस्कृतिक सम्मान का तिरस्कार है। इसमें हमारे संगीत के आत्मसम्मान की भी कमी है।

पुरानी ठुमरी, पुराना दादरा और पुरानी ग़ज़ल हिन्दुस्तानी संगीत की व्यापक परंपरा के अन्तर्गत ही माने जायेंगे। मगर यह फ़िल्मी गाने नये संगीत के नुसख़ों में बनाये जाते हैं और उनका लक्ष्य केवल सस्ती, बाजारू भावुकता ही होता है। हम इन्हें अपने संगीत की परंपरा से किसी तरह से भी नहीं जोड़ सकते।

फ़िल्मी गाने फसली और मौसमी होते हैं। उनका अपना कोई व्यक्तिगत अस्तित्व संगीत में नहीं होता। उनका प्रभाव बहुत दिनों तक नहीं रहता। आज जो गाना लोगों को पसन्द है उसे कुछ दिनों के बाद लोग भूल जायंगे। हर ऐसे गाने के भावों को उत्तेजित करने की शक्ति कुछ ही दिन जीवित रहती है। बाद में उस गाने को लोग हमेशा के लिए भूल जाते हैं। बहुत दिनों तक सहगल, पंकज मलिक और के. सी. डे के गाने बहुत चले। अब उन्हें कोई विशेष रूप से याद भी नहीं करता। आजकल लोग लता मंगेशकर, रफ़ी, मुकेश, किशोर कुमार के गानों ही का ज्यादा आनन्द लेते हैं। लोगों की रुचि इतनी बदल गई है कि बहुत से लोग किशोर कुमार के नये तरह के गानों को सबसे अधिक दाद देते हैं। जिस ऊट-पटांग ढग से यह गाने गाये जाते हैं उनमें भी लोग एक नई बात ढूंढ़ निकालते हैं और उन्हें सुनना चाहते हैं। लोग हर प्रकार के फ़िल्मी संगीत को हज्म कर लेते हैं और फिर उसका समर्थन भी करते हैं।

यह एक नपी-तुली बात है कि फ़िल्मी गानों ने लोगों की रुचि को जितना अव्यवस्थित और आज़ाद बनाया है उतना किसी और लोकप्रिय संगीत की शैली ने नहीं। फिल्मी संगीत के निर्माता सिनेमा देखने वालों की भूख और प्यास को ऐसे संगीत के लिए उत्तेजित करते रहते हैं और फिर उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए हर प्रयत्न भी करते हैं कि तरह-तरह के नये-नये गाने रोज बनायें चाहे उनका सिर और पैर हो या नहीं। जिस संगीत में इतना निरंकुश शासन हो वहां के प्रयोगवाद पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। उदाहरण के लिए, फ़िल्म का युगल गान (डुएट) इतना प्रचलित हो गया है कि शास्त्रीय संगीत में सितार और सरोद, और शहनाई और वाइलिन की जुगलबन्दी का आकर्षक अभिनय भी चारों तरफ़ हो रहा है। हम इसको कला की कलाबाजी कहकर ही पुकारेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भजन और कीर्तन

जहां तक हिन्दुस्तानी संगीत का प्राचीन इतिहास बताता है उससे पता चलता है कि वैदिक काल ही से हमारे संगीत का आध्यात्मिक और धार्मिक वातावरण सुरक्षित रहा है। राग-रागिनियों के संगीत का जन्म सदियों में हुआ और यह भक्ति का सबसे अधिक प्रभावशाली माध्यम बना। जब हम भक्तिकाल में आते हैं तो देखते हैं कि रामानुज, चैतन्य, विद्यापति, वल्लभाचार्य, सूर, तुलसी और मीरा इस पुनीत भक्ति-भावना के मार्गदर्शक बने। हमें अष्ट-छाप के कवि भी याद आते हैं। वैष्णव भक्ति रस के आन्दोलन के प्रवाह ने बहुतों को अपने साथ ले लिया और लोगों ने भक्ति की गंगा में प्रवेश किया। भक्त के लिए कीर्तन और भजन का संगीत अनिवार्य था। भक्ति के पवित्र भावों से उत्तेजित आत्मा को शब्दों और स्वरों का ही सहारा लेना पड़ा। चैतन्य महाप्रभु जैसे भक्त भक्ति से उन्मत्त होकर नाचने लगते थे। उसी प्रकार सैकड़ों छोटे-बड़े भक्त-कवि भी भक्ति के पागलपन में खो जाते थे। मन्दिरों में भगवान का भजन होता था और भक्त भक्ति के पदों को करताल के साथ गाते थे। यहीं से भजन की शैली का प्रारम्भ होता है और उसकी प्रथा अब तक चली आ रही है। सैकड़ों और हजारों लोग रोज भजन गान में सम्मिलित होते हैं और एक भजन को साथ-साथ बड़ी तन्मयता में गाते हैं।

मीरा, कबीर, सूरदास और तुलसीदास के भजन भक्ति और संगीत के दृष्टिकोण से भारत भर में भक्तों के लिये लोकप्रिय बन गये। भक्त की उपासना का माध्यम भजन और कीर्तन है। भक्त एक सा होता है चाहे वह सगुण ब्रह्म को माने या निर्गुण ब्रह्म को माने। इसलिए इस भक्ति की गंगा में कबीर और सूरदास, मीरा, और तुलसीदास सब मिलकर स्नान करते हैं। "घूंघट के पट खोल तोहे राम मिलेंगे", "मैया मैं नहिं माखन खायो," "मेरो तो गिरिधर गोपाल दूसरो नहिं कोई", "मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जाने कोय।" "मैंने राम रतन धन पायो"—इन सब में भक्ति ही की पुनीत वाणी है। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी," वाली भावना यहां सच उतरती है।

इनमें से बहुत से भजन, कविता और भक्ति-भावना दोनों की दृष्टि से अमर कृतियां हैं जिनको गाकर और सुनकर हजारों भक्त जन व्याकुल हुए हैं। सैकड़ों वर्षों से इनका अमृत बरसा है। गायकों ने भी उत्तम से उत्तम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत में इनकी रचना की है। भक्ति काल से लेकर अब तक यह भजन, मन्दिरों में, घरों में और बाहर भी गाये जाते हैं। हजारों की तादाद में एक शहर में लोग इन्हें रोज़ गाते और सुनते हैं।

रेडियो से भी भजन प्रसारित किये जाते हैं। मगर यह कहना पड़ेगा कि बहुत से रेडियो के भजन, जिनके संगीत का निर्माण रेडियो वाले ही करते हैं, शिष्ट और परिमार्जित तो सुनने में अवश्य लगते हैं परन्तु उनकी मौलिक स्वाभाविकता में बहुत कमी आ जाती है। इन भजनों के संगीत की हम प्रशंसा अवश्य करते हैं परन्तु उनसे किसी गहरी तरह से हम प्रभावित नहीं होते। इन भजनों में भक्ति का नहीं परन्तु संगीत ही का आनन्द आता है।

कीर्तन की संगीत-परम्परा का व्यापक क्षेत्र भारत भर में फैला है। बंगाल के कीर्तन की ख्याति सारे देश में है। कीर्तन में अपनी सुध-बुध भूल जाने वालों का भी हमने नाम सुना है। चैतन्य महाप्रभु के बारे में कौन नहीं जानता? मीरा की तन्मयता के बारे में किसने नहीं सुना? "मोरा दरद न जाणे कोय," वाली मीरा को कौन नहीं जानता? कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-काव्य के व्यापक क्षेत्र में वल्लभाचार्य का नाम अमर है। अष्टछाप के कवियों को कौन भूल सकता है। चारों ओर हमको कीर्तन संगीत के उत्तम उदाहरण दिखाई देते हैं। हिन्दूधर्म के भक्ति-आन्दोलन का ऐसा व्यापक प्रभाव था कि भक्तों के कीर्तन-संगीत का बहुत बड़ा प्रभाव सिखों के शबद संगीत पर भी पड़ा। सिखों के गुरुद्वारों में प्रतिदिन भक्तों का कीर्तन सुनाई देता है। उसको सुनकर श्रोता भक्ति के भावों में डूब जाते हैं। इस देश में कीर्तन-संगीत कहां नहीं सुनाई देता? वह कौन सा मशहूर मन्दिर है जहां कीर्तन नहीं होता?

भजन और कीर्तन के संगीत की परम्परा प्राचीन है और सोलहवीं शताब्दी के भक्ति काल से लेकर अब तक वह हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के साथ-साथ बराबर चल रही है। हमारे प्राचीन संगीत ने, जिसकी प्रवृत्तियां आध्यात्मिक और धार्मिक ही थीं, मुसलमानों के आने के बाद एक खास ढंग से अपने लौकिक रूप को धारण किया। ईश्वर की उपासना के साथ-साथ सौंदर्योपासना का आरम्भ भी हमारे संगीत में हुआ। परन्तु संगीत के इन दोनों पारलौकिक और लौकिक पक्षों में आपस में कोई विशेष विरोध नहीं हुआ। यही कारण है कि भक्तों और गायकों ने भजन और कीर्तन की परम्परा को सुरक्षित रखा और उसकी सेवा भी की। इस परम्परा का संगीत हिन्दुस्तानी संगीत ही था जो अकबर और तानसेन के युग से लेकर अब तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी प्राचीन परम्परा की सुरक्षा बड़े साहस और सामर्थ्य से करता रहा है।

क़व्वाली और नात

क़व्वाली का जन्म मज़ार पर हुआ और वहीं पर उसका जीवन-काल व्यतीत हुआ। परन्तु आधुनिक युग में वह मज़ार के बाहर निकल आई है और अब रेडियो और बड़े-बड़े संगीत-समारोहों से वह प्रसारित की जाती है। जैसे भजन की भक्ति-भावना अब बदल गई है और रेडियो ने और संगीत-सभाओं ने उसको संगीत में मनोरंजन ही का साधन बना दिया है उसी प्रकार क़व्वाली का आध्यात्मिक पक्ष अब लौकिक और सांसारिक बन गया है। उसकी हक़ीक़त अब अज़ाज की कोमल कल्पनाओं ही का सहारा ढूंढ़ती है उसके अध्यात्म, धर्म और सूफ़ी मत भी अब प्रेम और विरह, इश्क़ोमुहब्बत और हुस्न और रंग का लिबास पहनकर आते हैं। क़व्वाली को सुनकर अब सूफ़ियों वाला वज्द नहीं आता परन्तु एक दूसरे प्रकार का उत्तेजन होता है जिसका संबन्ध शरीर की शरीफ़ वासनाओं ही से होता है। देहली के मोतीमहल अथवा लखनऊ के क्लार्क अथवा होटलों में क़ीमती भोजन के साथ अब क़व्वाली भी सुनने को मिलती है। मज़ार के एकांत में गाई गई क़व्वाली अब शहरों के कोलाहल में सुनाई देती है। उसका अपना वातावरण अब वैसा नहीं रहा।

क़व्वाली मुसलिम भक्ति-संगीत की प्राचीन शैली है। अमीर खुसरो के समय से क़व्वाली संगीत की प्रथा रही है। शास्त्रीय संगीत के क़व्वाल बच्चों के ख़्याल के घराने के अलावा लोकप्रिय क़व्वाली शैली की परम्परा भी करीब-करीब उसी जमाने से चली आ रही है। इस क़व्वाली संगीत का संबन्ध सूफ़ी मत की परम्परा से अकबर के राज्य काल में रहा है। क़व्वाली मुसलमानों के भक्ति-संगीत का सबसे बड़ा उदाहरण है और मुसलमान धर्म के अन्तर्गत हैं।

क़व्वालों के भी घराने हुए हैं। अभी भी इस देश में बहुत सी जगहों के क़व्वाल अपनी-अपनी क़व्वाली शैली के लिए मशहूर हैं। मशहूर प्यारु क़व्वाल से लेकर आजकल के लोकप्रिय शंकर शम्भू क़व्वाल तक क़व्वाली का रिवाज इस युग में जीवित है। मारफ़त और मजाज़, पारलौकिक और लौकिक की सीमाओं के अन्दर क़व्वाली की रचना होती है। "यारब मेरी क़िस्मत में सिजदे हैं इसी दरके। छूटा है न छूटेगा संगेदरे जानना।" अथवा "उठ जाये अगर पर्दा जलवा ही नज़र आये।"हम तूर समझ कर ही हैं तेरे दर पर आये।" अथवा "बुतख़ाने के ही आगे एक काबा बस रहा है। घूंघट उठा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखा एक जलवा दिख रहा है।" अथवा "किसने यह तजल्ली रुखे रोशन की दिखा दी। मैं मह्वियत के आलम में खुद को भूल बैठा।" यह कुछ कव्वाली रचना के उदाहरण हैं।

नात भी कव्वाली की तरह धार्मिक भावों से पूर्ण रूप से प्रोत्साहित होता है। मारफ़त की गज़लें, कव्वाली और नातें सब भक्ति रस में डूबे होते हैं। इनमें प्रत्येक की अपनी-अपनी निर्धारित शैली है जिसे गायक और क़व्वाल गाते हैं। शास्त्रीय संगीत के गायक भी, जो विशेष मज़ारों और पीरों के भक्त होते हैं, कव्वाली का बहिष्कार नहीं करते। देहली के मशहूर ख्याल-गायक तानरस खां और उनके घराने के गायकों ने कव्वाली गायन को अपनी व्यापक संगीत-परम्परा के बाहर नहीं माना था। रामपुर के ख्याल-गायक स्वर्गीय मुश्ताक हुसैन खां बरेली के अज़ीज मियां के भक्त थे और उनके यहां पर जो मज़ार था वहां जाकर वह कव्वाली-गायन ही करते थे। इसी मज़ार के भक्त ग्वालियर के स्वर्गीय उस्ताद हाफिज अली खां सरोद-वादक भी थे। लखनऊ के पास बाराबंकी के निकट देवे शरीफ के मज़ार पर लखनऊ के ख्याल-गायक नसीर खां अक्सर जाकर कव्वाली गाते थे और चादर भी चढ़ाते थे। देहली के तानरस खां के सुपुत्र वृद्ध उमराव खां भी मज़ारों के दर्शन करते थे।

कव्वाली को गायन-शैली भी गज़ल की गायन-शैली के समान अपने ढंग की होती है। इसमें भी उर्दू और फ़ारसी के शब्दों का सही और भावुक उच्चारण बहुत जरूरी है। क़व्वाली का वातावरण धार्मिक ही होता है और इसलिए उसके गाने में तन्मयता की भावना होना अनिवार्य है। भावपूर्ण गायन ही इसमें सफलता का कारण होता है। कव्वाली की कविता भक्तिरस की पुनीत भावुकता से ही प्रेरित होती है। इसलिए इस कविता के आन्तरिक वातावरण को एक कुशल कव्वाली गायक ही ठीक ढंग से दिखा सकता है। गज़ल गायन में संगीत कला की दृष्टि से गायक को अधिक स्वतन्त्रता मिलती है और वह किसी राग के स्वरों से अपनी गज़ल को सुशोभित कर सकता है। क़व्वाल को इतनी सुविधा नहीं मिलती। उसका कर्तव्य तो यही है कि वह अपनी रचना की ओज और पूर्ण धार्मिक भावना के उत्साह से जोशीले ढंग में सीधा-सीधा शब्दों को बार-बार दुहराते हुए गाये और भक्तिरस में डूबे हुए श्रोताओं को प्रभावित करे और उन्हें धार्मिक भावों से भर दे। कव्वाली की गायन-शैली का चमत्कार इसी में है। स्वरों और शब्दों का आनन्द ताल के साथ दुगुना हो जाता है। कव्वाली के साथ ढोलक के बजने का रिवाज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इसके साथ तबला नहीं बजता।

जब तक भारतवर्ष में मुसलमान धर्म के रीति और रिवाज जिन्दा हैं क़व्वाली भी ज़िन्दा रहेगी। मगर क़व्वाली का आकर्षण मुसलमान श्रोताओं ही के लिए नहीं है। उसे सब सुनना पसन्द करते हैं चाहे इनके धार्मिक विचार कुछ भी हों। उसका जोशीला संगीत सबको आनन्द देता है। सामान्य रूप से उसके पदों की धार्मिक भावना कोई बाधा नहीं डालती। यह कहना भी यहां जरूरी है कि क़व्वाली की तुलना में नातें इतनी लोकप्रिय नहीं होतीं। मगर मुसलमान श्रोताओं में ऐसे लोगों की संख्या काफ़ी है जो इन्हें सुनना पसन्द करते हैं।

भारत ऐसे बड़े देश में क़व्वाली और नात हमारे आधुनिक लोकप्रिय संगीत की परम्परा के अन्तर्गत हैं और रहेंगे। इस बात पर कोई बहस नहीं हो सकती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय पांच

वाद्य और नृत्य

"संगीत" शब्द का अर्थ है उसके तीन विभिन्न पक्ष-गायन, वादन और नृत्य। इस अध्याय में हम संक्षेप में हिन्दुस्तानी संगीत के वाद्य संगीत और उसकी नृत्य कला पर कुछ कहेंगे।

वीणा

हमारे संगीत में प्राचीन और आधुनिक वाद्य दोनों हैं। यह कहना ठीक होगा कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का सबसे प्राचीन वाद्य वीणा है। जैसा पहले कहा गया है कि वीणा और ध्रुपद का साथ कई सौ वर्षों से है। तानसेन और अकबर के युग से लेकर आधुनिक युग तक इन दोनों की शैलियों में पारस्परिक सम्बन्ध रहा है। बीनकार और ध्रुपदिये एक ही संगीत-परंपरा के मानने वाले हैं। वैसे तो कई प्रकार की वीणा हैं—नारद वीणा, रुद्रवीणा, कच्छपी वीणा, विचित्र वीणा इत्यादि। परंतु यहां हम सरस्वती वीणा का ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरण ले रहे हैं।

तानसेन परंपरा के आरम्भ काल में हम सबसे पहले मिस्री सिंह वीनकार का नाम सुनते हैं जो तानसेन के दामाद थे और जिनकी अपनी शिष्य-परंपरा में वीणा-वादन और ध्रुपद-गायन दोनों का बराबर-बराबर चलन था। इसलिए तानसेन की व्यापक परंपरा के काल ही में हम वीणा-वादन के जन्म के बारे में सोचते हैं। उस युग के बाद बहुत समय तक हमें नहीं मालूम कि कौन-कौन से बीनकार हुए। परन्तु पिछले सौ वर्षों का ज्ञान हमको थोड़ा-बहुत है। हम पहले ही तानसेन परंपरा के वादकों के बारे में कुछ लिख चुके हैं। सोनिया घराने के प्यार खां, जाफ़र खां और बासत खां के बारे में भी हमें कुछ ज्ञान है। इस सोनिया घराने के दो प्रमुख वादक बहादुर हुसैन खां और अमीर खां थे। यह दोनों रामपुर दरबार में थे। परन्तु करीब-करीब इसी समय जयपुर में भी दो बड़े मशहूर बीनकार हुए जिनके नाम थे बन्देअली खां और रजबअली खां। रजबअली खां के शिष्य मुशर्रफ़ खां अलवर के मशहूर बीनकार थे और रामपुर के बीनकार वजीर खां के समकालीन थे। इस शताब्दी के आरम्भ में इनकी बड़ी ख्याति थी और यह बड़े ही प्रतिभाशील बीनकार माने जाते थे। अलवर में इनका बड़ा मान-सम्मान था।

सच तो यह है कि अलवर के मुशर्रफ़ खां और रामपुर के वजीर खां के समय तक वीणा-वादन की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इस समय के पश्चात् ही इस वादन-शैली की अवनति शुरू हो जाती है। विचार करने की बात है कि राजस्थान के बीनकारों में बन्देअली खां और रजबअली खां कैसे महान् बीनकार थे। रजबअली खां के बाद उनके शिष्यों में मुशर्रफ़ खां ही ऐसे थे जिनका नाम सारे देश में चमका। उनके बाद उनके सुपुत्र सादिकअली खां थे जिनका भी पिछले कई सालों में बहुत नाम हुआ था और जिनका देहान्त पांच छः साल पहले हुआ। सादिकअली खां तक बीन का पुराना बाज बहुत कुछ सुरक्षित था। रजबअली खां के वीणा-वादन की परंपरा के यह अंतिम प्रतिनिधि थे। उन्हें अपने पिता मुशर्रफ खां में बहुत अच्छी तालीम पहुंची थी। उनके देहान्त से बीन के बाज को काफ़ी धक्का पहुंचा। उनके सुपुत्र असदअली खां से, जो होनहार तरुण कलाकार हैं, हमें बहुत कुछ आशा है।

सादिकअली खां रजबअली खां की वीणा परंपरा के आखिरी वादक थे। उनके जीवन काल तक उस पुराने बाज की यादगार मौजूद थी और लोगों की आशाओं पर पानी नहीं फिरा था। वीणा-वादन की अवनति तो शुरू

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गई थी परन्तु फिर भी लोगों के मनों में आशा थी कि शायद वीणा के दिन फिर से अच्छे आयें। इधर रामपुर में वज़ीर खां ऐसे वीनकार का भी बहुत पहले देहान्त हो चुका था। उनके पुत्रों में कोई भी ऐसा नहीं था जो अपने घराने की संगीत परंपरा को सुरक्षित रख सके। उनके बड़े बेटे सग़ीर खां में, जो आजकल पाकिस्तान ही में रहते हैं, कोई ऐसी प्रबल प्रेरणा नहीं थी कि वह अपने पिता के वीणा-वादन और उनकी ध्रुपद शैली की यादगार को बनाये रखें। वज़ीर खां का जो कुछ नाम रखा वह उनके पौत्र दबीर खां ने रखा जो क़लकत्ते जाकर बस गये थे और जिनका अभी हाल ही में देहान्त हुआ है। इन दबीर खां ने संगीत की शिक्षा अपने कुछ शिष्यों को दी जिनमें कुमार वीरेंद किशोर राय चौधरी का नाम उल्लेखनीय है। दबीर खां को खुद को तो अपने दादा वज़ीर खां से कोई शिक्षा नहीं मिली थी मगर उन्होंने इधर-उधर से अपने घराने के संगीत को अपने ही परिश्रम से सीखा था और उसमें अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी। जहां तक संगीत की शिक्षा का विषय था उनका नाम काफ़ी था। वह संगीत-सम्मेलनों में और रेडियो में भी बजाया करते थे। कलकत्ते में उनका मान बहुत था। विशेषकर इसलिए कि वह सेनिया घराने के वंशज थे।

सादिकअली खां और दबीर खां के अलावा भावनगर के मुहम्मद खां फरीदी भी प्रतिभाशील बीनकार थे। बड़ौदे के स्वर्गीय जमालुद्दीन बीनकार भी, जिन्होंने पटियाले के स्वर्गीय अब्दुल अजीज खां को विचित्र वीणा की तालीम दी थी, बहुत नामी बीनकार थे। उनके भी कई शिष्य थे। उनके सुपुत्र आबिद हुसैन खां गाते भी हैं और बीन भी बजाते हैं। परन्तु उनका अधिक ध्यान गायन की तरफ गया है और उन्होंने अपने पिता के वीणा-वादन की पद्धति को सुरक्षित रखने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। शिक्षित वर्ग में बड़ौदे के हीर जी डाक्टर को भी वीणा का शौक़ रहा है मगर वह किसी घरानेदार बाज के विशेषज्ञ नहीं हैं।

प्रसिद्ध ध्रुपद-गायक जाकिरुद्दीन खां और अल्लाबन्दे खां के बाद उनके घराने की शिष्य परंपरा में कुछ ऐसे लोग थे जिन्होंने वीणा-वादन में कुछ रुचि दिखाई। मगर यथार्थ में सैद्धान्तिक रूप से यह बहराम खां का नामी घराना ध्रुपद-शैली ही का घराना था। वाद्य संगीत इसमें नामचार को था।

लखनऊ के प्रसिद्ध गायक दूल्हे खां भी, जिनका नाम ध्रुपद और सादरे में गदर के बाद के काल से बहुत हुआ था, एक तरह से ध्रुपद परंपरा ही के अनुयायी थे। उनके बड़े सुपुत्र मुहम्मद हुसैन खां भी, जिनका कई वर्ष पहले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखनऊ में देहान्त हुआ, बीन बजाते थे। मगर किसी कारणवश उन्होंने वीणा-वादन छोड़ सा रखा था और सितार-वादन ही की शिक्षा देते थे। वह बड़े पारखी और अनुभवी संगीतज्ञ थे और उन्होंने बहुत से पुराने बीनकारों को सुना था और उनके साथ उठे-बैठे थे। स्वर्गीय भातखण्डे जी ने, जो लखनऊ अक्सर आते थे, कई बार प्रयत्न किया कि इन उस्ताद की वीणा सुनें मगर दुर्भाग्य से कभी ऐसा अवसर नहीं आया।

आजकल बहुत ही कम लोग वीणा की शिक्षा लेते हैं। पहली बात तो यह है कि लोगों की रुचि वीणा में, सरोद और सितार के मुक़ाबले में बहुत कम हो गई है। दूसरी बात यह है कि अब योग्य और प्रतिभाशील वीनकार नहीं रहे। जिन लोगों ने अच्छे वीनकारों से सीखा है या तो उनकी शिक्षा में कुछ कमी रह गई है या उनकी प्रतिभा और उनके परिश्रम में कोई कमी रही। इसलिए उनका मैदान में आना मुश्किल हो गया। जो कुछ भी बीन-कार अब बच रहे हैं उन्हीं से वाद्य-संगीत के प्रतिभाशील विद्यार्थियों को पूरा लाभ उठाना चाहिए। आधुनिक संगीत-शिक्षा के नये आयोजन में वीणा-वादन की शिक्षा के लिए बड़ी गुंजाइश होना चाहिए। अगर हम वीणा को एक प्राचीन अजायबघर वाला वाद्य ही समझने लगेंगे तो ध्रुपद और बीन की परंपरा का अंत शीघ्र हो जायेगा।

रबाब, सुरसिंगार

वीणा के बाद रबाब और सुरसिंगार का नाम आता है। सोनिया परंपरा के वासत खां के लड़के स्वर्गीय मुहम्मदअली खां रबाबिये के बाद, जो रामपुरा और गिद्धौर रियासतों में रहे और ध्रुपद के भी बड़े ऊंचे विद्वान् थे किसी और ने रबाब नहीं बजाया। उनके बड़े भाई अली मुहम्मद खां भी एक बेजोड़ वादक थे और उनसे रामपुर के वज़ीर खां ने भी सीखा था। मुहम्मदअली खां के बाद रबाब का अंत ही हो गया। आजकल रबाब की शिक्षा कहीं नहीं दी जाती। जिन लोगों को दावा है कि उन्होंने मुहम्मदअली रबाबिये से शिक्षा प्राप्त की वह भी अक्सर अपनी अयोग्यता का सबूत देते हैं।

रही सुरसिंगार की बात, जिसको बहादुर हुसैन खां ने बेजोड़ बजाकर और उनके बाद बिलसी के छम्मन साहब ने भी उसमें बड़ी ख्याति पाई, अब लोग कहां बजाते हैं? आमतौर से लोग इस वाद्य के बारे में कुछ नहीं जानते। लोग केवल उसके बारे में किस्से-कहानी ही सुनते हैं। और जिन लोगों को दावा है कि वह सुरसिंगार का वाद्य जानते हैं वह मैदान में आने से संकोच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं और केवल उसकी चर्चा करके ही खुश हो जाते हैं। वाद्यों में सुरसिंगार सेनिया घराने की यादगार थी।

सरोद

सुरसिंगार तक तो वीणा और ध्रुपद की प्राचीन शैली के सिद्धान्त जीवित और सुरक्षित थे। इसके बाद के वाद्यों ने या तो वीणा की परम्परा का परित्याग किया था या उसका थोड़ा-बहुत अधूरा पालन ही किया था। सरोद ऐसे वाद्य ने किसी हद तक वीणा की शैली का अनुकरण किया था परन्तु केवल सैद्धान्तिक ढंग से ही। व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में सरोद ने अपना अलग बाज स्थापित किया है। यह मानना पड़ेगा कि आधुनिक युग में बंगश (काबुल) के गुलामअली खां ही इसके परम्परागत अन्वेषक माने गये हैं और इन्होंने ही आधुनिक युग में इसके बाज का जोर-शोर से प्रचार किया। बंगाल में भी कुछ सरोद-वादक हुए मगर उनका प्रभाव देश के प्रचलित सरोद-वादन पर अधिक नहीं पड़ा। सेनिये घराने की शिष्य परम्परा में भी कुछ लोगों को वीणा की पद्धति से सरोद की शिक्षा मिली थी परन्तु वह कुछ विशेष व्यक्ति ही थे जिनमें रामपुर के फ़िदा हुसैन सरोदिये अपने जमाने के बेजोड़, प्रतिभाशील वादक थे। उन्नीस सौ चौबीस के लखनऊ के अखिल भारत संगीत सम्मेलन में उनका सरोद बजा और छा गया। ऐसे सरोदिये अब संसार में कम होंगे। ग्वालियर के स्वर्गीय उस्ताद हाफ़िजअली खाँ फ़िदा हुसैन के सरोद-वादन के बड़े भारी प्रशंसक और भक्त थे। इनकी शिष्य परम्परा का अब कोई पता नहीं। व्यावहारिक संगीत में फ़िदा हुसैन सरोदिये हाफ़िजअली खां ऐसे वादकों के लिये भी आदर्श के समान थे।

गुलामअली खाँ के सुपुत्र रामपुर के नन्हें खाँ भी प्रतिभाशील और कुशल सरोद-वादक थे जो अपनी वेषभूषा के कारण महफ़िल में बहुत सजते थे। इन्हीं के सुपुत्र थे स्वर्गीय उस्ताद हाफ़िजअली खां जो बाद में रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ के भी शिष्य हो गये थे। इस युग में हाफ़िजअली खाँ से ज्यादा लोकप्रिय सरोदिया और कोई नहीं हुआ। सरोदियों में इतना बड़ा भावुक कलाकार और कोई नहीं था। उस्ताद हाफ़िज़अली खाँ के परिवार में सरोद था। उनकी रगों में वाद्य संगीत का खून दौड़ता था। उन ऐसे सुरीले और प्रतिभाशील भावुक वादक इस युग में अब ज़रा कम होंगे। पहले उन्होंने अपने बड़े लड़के मुबारक को शिक्षा दी मगर किसी कारण से उनका मन सरोद से हट गया। उसके कुछ समय के पश्चात् उन्होंने अपने दूसरे पुत्र अमजदअली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाँ को तैयार किया जो आजकल चोटी के सरोदियों में हैं और बहुत अच्छा बजाते हैं।

स्वर्गीय हाफिजअली के गुरुभाई स्वर्गीय अलाउद्दीन, जो वजीर खाँ के प्रमुख शिष्य थे, सरोद के विद्वान् पण्डित थे जिन्होंने बड़ी उम्र पाई थी। यदि हाफिजअली खाँ एक भावुक और प्रतिभाशील कलाकार थे, अलाउद्दीन खां एक महान् और विद्वान् पण्डित थे जो सरोद के अलावा और भी वाद्य बजाना जानते थे। उनके सुपुत्र अलीअकबर खाँ को कौन नहीं जानता। वह बड़े अनुभवी और मंजे हुए सरोदिए थे जिनका विदेशों में भी बहुत नाम है।

अलीअकबर खाँ की शिष्या शरन रानी भी बहुत प्रतिभाशील सरोद-वादक हैं जिन्हें बरसों का अनुभव है। उनका नाम भी दूर-दूर तक इस देश में फैल गया है। कलकत्ते के राधिका मोहन मोयत्रा भी व दबीर खाँ के सुयोग्य शिष्यों में हैं और बहुत सुन्दर बजाते हैं।

सरोदियों का एक और मशहूर घराना कलकत्ते के उस्ताद करामतुल्ला खाँ का था। करामतुल्ला खां बड़े विद्वान् सरोदिये और सरोद शिक्षक थे। वह सरोद में गला नहीं बजाते थे परन्तु खालिस तंत्रबाज ही बजाते थे। उन्होंने बहुत से प्रथम श्रेणी के शिष्य तैयार किये। लोग उनकी शिक्षा के चमत्कार से अक्सर चकित हो जाते थे। इलाहाबाद के लक्ष्मण दास मुनीम (मुनीम जी) को उन्होंने हारमोनियम पर सरोद की दर्जनों गतें निकलवा दी थीं। गत तोड़ा तो मुनीम जी बेमिसाल बजाते थे। उन्नीस सौ चौबीस के लखनऊ संगीत-सम्मेलन में जब स्वर्गीय मुनीम जी ने बाजे पर "दिर-दिर" का अद्भुत चमत्कार दिखाया तो लखनऊ के राजा नवाबअली खां, जो खुद बाजा बड़ा अच्छा बजाते थे, खड़े होकर उनकी उंगलियों के करतब को देखने लगे। मुनीम जी के इलाहाबाद में दो मशहूर शिष्य थे—गगन बाबू (वाइलन) और नीलू बाबू (हारमोनियम)। सरोद में करामतुल्ला खाँ के प्रमुख शिष्य लखनऊ के मशहूर उस्ताद सखावत खाँ थे जो सरोद का खालिस बाज पण्डित सखाराम की पखावज के साथ बेजोड़ बजाते थे। स्वर्गीय सखावत खाँ के बड़े सुपुत्र मुहम्मद उमर भी योग्य सरोद-वादक हैं और आजकल कलकत्ते में संगीत शिक्षा ही का काम करते हैं।

एक और बड़े प्रतिभाशाली और भावुक सरोद-वादक लखनऊ में काफी समय तक रहे जिनका नाम चुन्नू खाँ था। उन्हें कम लोग जानते थे मगर वह इतना मीठा बाज बजाते थे कि मालूम पड़ता था कि उन्होंने सरोद ही के लिए जन्म लिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरुण सरोद-वादकों की काफी बड़ी संख्या है जिनके बारे में यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

सितार

अमीर खुसरू को सितार और तबला दोनों का आविष्कारक कहा जाता है। सरोद और सितार का जन्म भारतवर्ष में एक दूसरे के आगे ही हुआ। अपने आरम्भ काल में सरोद की तरह सितार भी वीणा पद्धति के अधीन था और बहुत कुछ उसके बाज के आधार पर उसका अपना बाज स्थापित किया गया था। पुराने सितार-वादक, जिनको वीणा की परम्परा का पूर्ण ज्ञान था, ऐतिहासिक रूप से उसके बहुत निकट ही नहीं थे परन्तु उससे किसी प्रकार से सम्बन्धित भी थे। सैद्धान्तिक ढंग में वह उसकी विशाल और व्यापक परम्परा ही के अन्तर्गत थे। इस देश में प्राचीन काल से ही वीणा-वादन ही की एक व्यापक परम्परा थी। ध्रुपद-गायन और वीणा-वादन दोनों एक तरह से समकालीन थे। प्राचीन सम्मानित ध्रुपद-शैली के सिद्धान्तों का पालन वीणा-वादकों ने श्रद्धापूर्वक किया। ध्रुपद और वीणा का पालन-पोषण एक तरह से साथ-साथ हुआ और एक दूसरी की परस्परा से पारस्परिक सम्बन्ध भी रहा था। एक विशाल और व्यापक विचारधारा ही के अन्तर्गत सैद्धान्तिक रूप से दोनों में बहुत काल तक कला के क्षेत्र में विचार-विनिमय भी हुआ है और सहयोग की प्रबल भावना भी रही। पुराने सितार-वादक प्राचीन परम्परा के इस सारगर्भित सिद्धान्त से परिचित थे। पहले सितार का मार्गदर्शक वीणा ही थी जैसे ख्याल का मार्गदर्शक ध्रुपद था। इस कारण यह बात मान लेना पड़ती है कि वह ख्याल-गायक, जो ध्रुपद अंग के ख्याल को गम्भीर और गौरवशाली ढंग से गाता है और जो उसे कला के उत्तम आभूषणों ही में सुशोभित करता है वह सर्वश्रेष्ठ ख्यालिया माना जाता है। वह ख्यालिये, जो विलक्षण तानों, सट्टों और तरकीबों ही से अपने गायन में चमत्कार पैदा करते हैं और जो स्थाई और अन्तरा शानदार ढंग से नहीं कह पाते और जिनके संगीत के कलात्मक उच्चारण और उसकी राग की व्याख्या में अधूरापन अथवा शिथिलता होती है, दूसरी या तीसरी श्रेणी ही के गायक होते हैं। पहले वर्ग के ख्याल-गायक इस लिए सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं कि वह ध्रुपद-शैली का न तो पूरा परित्याग करते हैं और न उसकी अवहेलना ही करते हैं। यह बात वाद्य संगीत पर भी लागू है।

पुराने सितार-वादकों में अमृत सेन, रहीम सेन और निहाल सेन के नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तानसेन परम्परा के निर्मल शाह को भी हम नहीं भूल सकते। इन्होंने भी अपने सितार-वादन को ध्रुपद की प्राचीन पद्धति पर निर्धारित किया था। यथार्थ में जितने पुराने सितार-वादक थे वह ध्रुपद और वीणा की परम्परा ही के अन्तर्गत थे। वीणा-वादन के अलावा और कोई वाद्य-शैली नहीं थी जिसके अनुशासन को सितार-वादक मानते और जिसके सिद्धान्तों और नियमों का पालन करते। अमृत सेन, रहीम सेन और निहाल सेन ऐसे महान् सितार-वादकों की सर्वश्रेष्ठ वादन-कला के बारे में कुछ ऐसी घटनाओं का भी वर्णन है जिससे उनके वादन के अलौकिक और दिव्य प्रभावों का भी पता चलता है। उनका सितार-वादन सच्ची साधना ही का एक रूप था। आजकल के सितार-वादन से उनके सितार-वादन की शैली बिल्कुल अलग थी।

ग्वालियर के अमीर खां सितार-वादक भी अपने ढंग के एक ही सितारिये थे और उनकी विलक्षण वादन-शैली के आगे बहुत से वादक सिर झुकाते थे। घटना मशहूर है कि जब इटावे के मशहूर सितार-वादक इमदाद खां उनसे मिलने गये और जब उन्होंने उनके सामने अपना सितार बजाया तो श्रोता उनके सितार से बहुत प्रभावित हुए। सुनते हैं कि कुछ देर बाद अमीर खां ने अपने छोटे सितार पर राग बिहाग को इस विलक्षण और भावुक ढंग से बजाया कि इमदाद खां उनकी वादन-शैली को देखकर बड़े चकित हुए और उनके बाज की श्रेष्ठता को विनीत भाव में स्वीकार करके वह उनकी वादन-कला के प्रशंसक ही नहीं एक तरह से उनके भक्त भी बन गये। पिछले जमाने में ग्वालियर के फ़ज़ल हुसैन भी एक बड़े अच्छे योग्य सितार-वादक थे जो सूहा सुघराई ऐसी राग को भी बड़ी कुशलता से अपने सितार पर बेथकान बजाते थे। इन्दौर के बाबू खां भी पिछले जमाने में बड़े माने हुए सितार-वादक थे जो अपनी विलक्षण कला के लिए बहुत मशहूर थे। जैसे जयपुर के करामत खां का नाम आलाप और ध्रुपद में था वैसे ही बाबू खां भी अपने सितार-वादन के लिए सारे देश में मशहूर थे।

मैसूर के बरकतुल्ला खां भी पिछले जमाने में बड़ी चोटी के सितार-वादक हुए हैं जिनके नाम को आज भी लोग बड़े आदर से याद करते हैं। वह उन सितारियों में थे जिन्हें भारतवर्ष के गायक और वादक सभी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनकी कला और उनके सितार-वादन के बारे में सबकी यही राय थी। उनकी गणना सर्वश्रेष्ठ सितार-वादकों में थी और वह अपने जमाने में सितार के बेजोड़ विशेषज्ञ थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस युग में लोकप्रिय सितार-वादन में इटावे के सितार-वादकों का सबसे ज्यादा नाम हुआ। इटावा एक छोटा सा शहर है मगर यहां अच्छे-अच्छे सितार वादक हुए हैं। तुराब खां ऐसी विलक्षण प्रतिभा वाले सितारिये इसी इटावे के थे। मगर इस जमाने में इटावे के इमदाद खां और इनायत खां सितार-वादकों का जैसा नाम हुआ वैसा और किसी का नहीं हुआ। इन्हीं के निकट सम्बन्धी स्वर्गीय उस्ताद हामिद हुसैन भी थे जो कई वर्षों तक लखनऊ के मैरिस संगीत कालेज में सितार के प्रोफेसर रहे। आलाप में तो अच्छे-अच्छे सितारिये उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। उनके वादन में कल्पना का विलक्षण और भावुक प्रदर्शन होता था। और जिस तरह से वह किसी राग का भावुक और सुन्दर आलाप करते थे बहुत से सितारिये नहीं कर पाते थे। उनकी मृत्यु समय के पहले ही हो गई और लखनऊ का सुरीला भावुक सितारा उठ गया।

यह मानना पड़ेगा कि इमदाद खां और इनायत खां का सितार का बाज पिछले जमाने में सबसे ज्यादा लोकप्रिय था और दर्जनों सितार के विद्यार्थियों ने इस बाज की नकल की। यथार्थ में वह सितार सबसे अधिक लोकप्रिय बाज था जो अपनी रोचकता में बेजोड़ था। बहुत से लोगों को सितार बजाने का शौक उनका सितार सुनकर ही हुआ। इमदाद खां एक माने हुए सितार के उस्ताद थे और उन्होंने सितार-वादन का अपना एक अलग घराना स्थापित किया। यह बाज बंगाल में विशेष रूप से सम्मानित हुआ। इस बाज की शिक्षा इमदाद खां के सुपुत्र स्वर्गीय उस्ताद इनायत खां ने बहुत से शिष्यों को बहुत समय तक कलकत्ते ऐसे शहर में दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके बहुत से शिष्य सितार बड़े अच्छे ढंग से बजाने लगे। उस्ताद इनायत खां बहुत समय तक बंगाल की गौरीपुर नाम की रियासत में भी नियुक्त रहे। लोग उन्हें गौरीपुर के इनायत खां के नाम से भी जानते थे।

उस्ताद इनायत खां का सितार-वादन सबसे ज्यादा लोकप्रिय सितार वादन साबित हुआ। और सैकड़ों सितार सीखने वालों को उनके सितार से बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिला। आधुनिक युग में सितार-वादन के आम प्रचार में उनका बहुत बड़ा हाथ था। वह अपने ढंग के एक ही सितारिये थे जिनका बाज और सब सितार के भिन्न-भिन्न बाजों पर छा गया, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। पिछले तीस-चालीस वर्षों में बहुत से तरुण सितार-वादक इनायत खां के बाज का ही अनुकरण करते रहे। इस बाज का अपना एक अलग ढंग और चरित्र था जिसमें जोड़, आलाप और गत प्रधान थे। इनायत के तिहैरये मशहूर थे और मुक्ताकाचा के मशहूर तबलिये मौलवी राम ने उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष अध्ययन करके उनके साथ संगत करने में विशेषता प्राप्त की थी। स्वर, लय और ताल का बहुत बढ़िया काम इनायत खां के सितार में था।

उनके बहुत से शिष्यों ने बहुत नाम कमाया परन्तु जैसो ख्याति उनके सुपुत्र विलायत खां ने पाई वैसी किसी और शिष्य को नहीं मिली। आजकल के प्रमुख सितार-वादकों में विलायत खां और रविशंकर का ही नाम सबसे ज्यादा है। विलायत खां ने अपने पिता से ज्यादा शिक्षा नहीं पाई क्योंकि उनका देहान्त उन्नीस सौ अड़तालिस में हो गया था।

रविशंकर स्वर्गीय उस्ताद अलाउद्दीन खां के सितार में परम शिष्य हैं। अलाउद्दीन खां ऐसी विलक्षण प्रतिभा के वादक थे कि उन्होंने अपने सुपुत्र को तो, जिनका नाम अलीअकबर खां है, एक प्रथम श्रेणी का सरोदिया बनाया और अपने दामाद रविशंकर को प्रथम श्रेणी का सितार-वादक बनाया। रविशंकर बहुत प्रतिभाशील और भावुक सितार-वादक हैं जिन्होंने विलायत खां की तरह प्रयोगवाद की भावना से प्रेरित होकर अपना एक बाज अलग ही बना लिया है। खेद इस बात का है कि भारत से अधिक अमरीका के संगीतप्रेमी उनके सितार से फ़ायदा उठा रहे हैं। विलायत खां और रविशंकर हमारे आधुनिक वाद्य संगीत के दो रत्न हैं। परन्तु यह कहना आवश्यक है कि विलायत खां की तरह रविशंकर भी किसी विशेष घराने के बाज के अनुयायी नहीं हैं।

प्रमुख सितार-वादकों में अमृत खां और अब्दुल हलीम जाफर का नाम भी बहुत है। अब्दुल हलीम जाफर के बाज में असाधारण कला-कौशल है। अमृत खां की भावुकता में श्रोतागण बहुत प्रसन्न होते हैं।

लखनऊ के स्वर्गीय उस्ताद यूसुफ़ अली खां, जो काल्पी के उस्ताद अब्दुल अली खां के शिष्य थे, उत्तर प्रदेश के नामी सितारियों में थे और उन्हें, 'पद्मश्री' की उपाधि भी मिली थी। उन्होंने बहुत से शिष्यों को शिक्षा दी जिनमें उनके सुपुत्र लखनऊ रेडियो के इसमाइल खां और भातखण्डे संगीत विद्यापीठ के इलयास खां का नाम उल्लेखनीय है। इलयास खां सरोद के घराने के होते हुए भी सितार बड़े परिश्रम और बड़ी योग्यता से बजाते हैं और लखनऊ शहर में घरों में भी सितार की शिक्षा देते हैं। उनकी सफलता का श्रेय इसमाइल खां के पिता यूसुफ़ अली खां को है जिन्होंने अपने जीवन काल में इलयास खां को पूरी शिक्षा दी थी। इसमाइल खां को भी अपने पिता से अच्छी तालीम पहुंची है और उन्हें उनकी बहुत सी रोचक गतें याद हैं।

प्रौढ़ सितार-वादकों में कलकत्ते के उस्ताद मुश्ताक़ अली खां का नाम भी उल्लेखनीय है। इनको भी 'पद्मश्री' की उपाधि मिल चुकी है। इन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सितार-वादन अपने स्वर्गीय पिता से सीखा था जो बनारस के नामी वादकों में थे। मुश्ताकअली गंभीर और मननशील कलाकार हैं जो ख़ालिस बाज ही के क़ायल हैं। और प्रयोगवाद की अराजकता पर उसको कोई विश्वास नहीं है। जो कुछ वह बजाते हैं वह साफ़-सुथरा, सुरीला और कलायुक्त होता है। सितार उनकी संगीत की रंगीन मिजाजी का माध्यम है। वह उत्तम शिक्षक भी हैं और उनकी प्रतिभा के कई पक्ष हैं।

तरुण सितार-वादकों में भी बहुत से होनहार और प्रतिभाशील उभरते कलाकार हैं जिन सबके नाम यहां गिनाना असंभव है। यदि वह लगन से परिश्रम करते रहेंगे तो हमें आशा है कि भविष्य में उनका बहुत नाम होगा। उनके श्रोताओं को उनसे यही आशा है कि वह गायन और वादन को अलग-अलग रख कर बाज ही की तरफ़ अधिक ध्यान देंगे। उनके बाज में किसी एक विशेष बाज की छाप भी होना चाहिए ऐसा होने ही से उनके संगीत का व्यक्तित्व पहचाना जा सकेगा।

अंत में यह कहना आवश्यक है कि इस समय जो सितार-वादन प्रचलित है उसमें व्यक्तिगत प्रतिभा की प्रधानता है और बहुत हद तक उसमें प्राचीन वीणा और रबाब की वाद्य-शैली का परित्याग है। यह कहां तक ठीक है इस विषय पर अलग-अलग राय हो सकती है। परन्तु यह तो मानना पड़ेगा कि पुरानी वाद्य-शैली अथवा बाज में अब अव्यवस्था है और आजकल के सितार-वादक पुरानी वाद्य-शैली के सिद्धान्तों को न ठीक से जानते हैं और न मानते हैं। यदि आजकल के सितार-वादक पुराने वादन के सिद्धान्तों का परित्याग कर सकते हैं और अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा पर ही निर्भर रहना चाहते हैं तो वह एक प्रकार की अराजकता के गुलाम भी बन सकते हैं। जिनके पास प्रतिभा है और वह कड़ा परिश्रम भी कर सकते हैं। यदि यह प्रतिभा के ज़ोर पर मनमानी छोड़कर प्राचीन वादन-शैली के मूल सिद्धान्तों का पालन भी करें तो पुराना बाज किसी हद तक सुरक्षित रह सकता है। यदि पुराने बाज के सारे नमूनों का अंत हो जायेगा और यदि हम पुराने बाज के सब नक्शों को भूल जायेंगे तो प्राचीन वाद्य संगीत और आधुनिक वाद्य संगीत के बीच में एक गहरी खाईं सी खोद दी जायेगी जिसको हमारे नये-नये उन्नतिशील वादक कभी न भर पायेंगे। नई-नई वाद्य-शैलियों का आविष्कार करके हम प्राचीन बाज के तत्वों और सिद्धान्तों को बिल्कुल भूल जायेंगे। हिन्दुस्तानी संगीत किसी भी सितार-वादक पर ज़बरदस्ती कोई अनुचित प्रतिबंध नहीं लगाता। परन्तु वादक की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता इसलिए नहीं है कि वह परम्परा की विचारधारा का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परित्याग करके प्रयोगवाद ही को अपना लक्ष्य बनाये। व्यक्तिगत प्रतिभा का निरंकुश शासन हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के अनिवार्य नियमों और सिद्धान्तों की अवहेलना ही करेगा। यदि प्राचीन बाज की मजबूत नींव पर हम आधुनिक बाज के ढांचे को खड़ा न करेंगे तो आधुनिक बाज के सहस्र चमत्कारों से हमारी आंखें चकाचौंध हो जायेंगी और हमारे वादक पथभ्रष्ट हो जायेंगे। हमारे सितार-वादकों को यह सारगर्भित तत्व नहीं भूलना चाहिए।

विचित्र वीणा

आम तौर से जिसे हम विचित्र वीन कहते हैं वह इसी हमारे युग का साज है। पटियाले के स्वर्गीय अब्दुल अजीज खाँ ही इसके प्रथम अन्वेषक माने जायेंगे। उन्होंने ही विचित्र वीन को प्रचलित किया। हममें बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने उन्हें संगीत-सम्मेलनों, संगीत-समारोहों में और रेडियो से बजाते बरसों सुना था। वह दिन भी याद है जब कलकत्ते के भारत-विख्यात इनायत खाँ सितार-वादक की अचानक मृत्यु सुनकर उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। उन्नीस सौ अड़तालीस के इलाहाबाद के शानदार संगीत-सम्मेलन में लोगों ने अन्तिम बार इनायत खाँ का सितार सुना। उनके पीछे उनके पुत्र विलायत खां एक छोटा सितार लिए बैठे हुए थे। इस सम्मेलन के अवसर पर ही अब्दुल अजीज खाँ और इनायत खाँ की आखरी भेंट हुई। इस सम्मेलन में अब्दुल अजीज बहुत ही अच्छा बजाये। वह दिन भी याद है जब कुछ बरसों के पश्चात् अब्दुल अजीज खाँ की मृत्यु अचानक हुई जिस पर बहुत से गायक और वादक बहुत शोकित हुए।

इस जमाने के अब्दुल अजीज खाँ ही ने विचित्र बीन का प्रचार इस देश में दिया। यह वाद्य भी और अनेक वाद्यों के साथ हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के अन्तर्गत है। कर्नाटक संगीत की वीणा की किस्मों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर हिन्दुस्तानी संगीत की वीणा की रागें ही बजाई जाती हैं। बटवारे के पहले अब्दुल अजीज खाँ के छोटे भाई हबीद खाँ अल्लादिया खाँ का नाम भी विचित्र बीन बजाने में काफी मशहूर हो गया था। अब्दुल अजीज रहते तो पटियाले में थे पर उधर सफर ही किया करते थे। श्रोतागण उनकी बीन के पुजारी थे और वह बजाते भी ऐसा ही थे। लोग कहते थे कि उनकी उंगलियाँ शहद में डूबी हुई थीं।

पैंतीस बरस सारंगी बजाकर ही इस वादक ने विचित्र वीणा अपने हाथ में ली। इस वाद्य की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह बड़ौदे जाकर बड़ौदे के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामी बीनकार जलालुद्दीन खाँ के शिष्य हो गये। भावुक कलाकार तो वह पहले से थे ही ? इस वाद्य को भी वह जल्दी अच्छा बजाने लगे। लोग विचित्र बीन को वहाँ बीन कहकर भी पुकारते थे क्योंकि वह नहीं ही से बजाई जाती है। जमालुद्दीन खाँ से सीखकर वह एक बड़े सफल वादक बन गये। काफी समय तक वह अपनी संगीत-शिक्षा के लिए बड़ौदे में रहे। एक बार की घटना है कि जब वह अपनी बीन आगरे के मशहूर वृद्ध गायक गुलाम अब्बास खाँ के सामने बजाये तो वह उसे सुनकर खुश हुए और बाद में उनसे हंसकर बोले, तुमने तो बीन पर कड़ा लगा दिया, यह वाक्य वादकों के बीच में बहुत मशहूर हो गया था।

स्वर्गीय अब्दुल अजीज खाँ के बारे में यहाँ अधिक लिखना असंभव है। यही कहना काफी है कि वह विचित्र बीन के बहुत अच्छे वादक ही नहीं थे परन्तु उसके सबसे बड़े बजाने वाले भी थे। उनका विचित्र बीन वादन अब सुनने में नहीं आयेगा। उन्होंने ही ने इस वाद्य के स्वाद को लोगों को दिया। लोकप्रिय वादकों में उनका पहला स्थान था।

खेद है कि उनके घराने में विचित्र बीन का लोप सा हो गया है। उनके सुपुत्र लतीफ खाँ ने गाने ही का अच्छा शौक किया। उनके शिष्यों में देहली रेडियो के अहमद रज़ा ही सबसे अच्छे हैं। उनमें प्रतिभा भी है और वह इस वाद्य की साधना भी पूरी करते हैं। उनसे भी कुछ लोग देहली में सीखते हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत-विभाग के श्री लाल मनी मिश्रा भी अपनी विचित्र बीन रेडियो से कभी-कभी प्रसारित करते हैं। बरसों से उन्हें इस वाद्य में प्रेम रहा है और वह उसे अच्छा भी बजाते हैं। वह भी स्वर्गीय अब्दुल अजीज खाँ के शिष्यों में कहलाते हैं। इतने बड़े संगीत-विभाग के संगीत शिक्षक और पदाधिकारी होने के नाते उन्हें पूरी सुविधा है कि वह इस वाद्य को अपने छात्रों को थोड़ा-बहुत सिखायें और इसका प्रचार भी करें। हमें ऐसे विद्वानों से ऐसी ही आशा है। बंटवारे के बहुत पहले लाहौर के एक और सज्जन भी, जिनका नाम कृपाल सिंह चावला था, स्वर्गीय उस्ताद के शागिर्द हो गये थे। वह बहुत होनहार थे परन्तु किसी कारणवश उन्हें इस वाद्य को छोड़ना पड़ा। उनके और शिष्यों में कुछ ऐसे भी हैं जो उनके परम भक्त हैं परन्तु उन्होंने उनसे कोई शिक्षा नहीं ली। वह उनकी यादगार को ताज़ा करने के लिए विचित्र बीन बजाते हैं और अपने श्रोताओं को थोड़ा-बहुत आनन्द भी पहुंचाते हैं। संगीत का यह सेवा-भाव भी बहुत सुन्दर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारंगी

गले की सच्ची नक़ल यदि कोई साज़ करता है तो उसका नाम सारंगी है। पुराने बुज़ुर्ग उसको 'सौरंगी' कहते थे क्योंकि उसमें सौ रंग हैं। गले का ऐसा अच्छा साथ और कोई साज़ नहीं करता। सारंगी बजती है तो मालूम पड़ता है कि गला बोल रहा है। गले के लिए इससे अधिक स्वाभाविक और सुरीला साज़ और कोई नहीं है। शर्त केवल यही है कि इस साज़ का बजाने वाला हर तरह से प्रवीण हो। यह सच है कि गले का इतना अच्छा साथ और कोई साज़ नहीं देता। पेशेवरों में तो इसके सीखने वाले बहुत से हैं। मगर शरीफ़, पढ़े-लिखे लोग और वाद्यों को तो सीखते हैं परन्तु इसको छोड़ जाते हैं। उसका सिर्फ़ एक कारण है और वह यह है कि इसका नाम अधिकतर ढाड़ियों, मीरासियों और गाने वालियों के साथ जोड़ा जाता है। ऐसी आलोचना करने वाले उन सारंगी-नवाज़ों को भूल जाते हैं जिन्होंने बड़े-बड़े गायकों की संगत की है। आधुनिक युग के प्रमुख नामी सारंगियों को हम नहीं भूल सकते। देहली के मम्मन खाँ और बुद्धू खाँ, आगरे और कलकत्ते के बदल खां, इन्दौर के शामीर खाँ और किराने घराने के पुराने सारंगी-नवाज़ों को कौन भूल सकता है? मम्मन खाँ पटियाले में नौकर थे और उन्होंने गौहर जान के साथ भी सारंगी बजाई। उनके विद्वान् होने का प्रमाण यही है कि उन्होंने बुद्धू खाँ ऐसे सारंगिये को तैयार किया जिनका सानी नहीं था। बदल खाँ ने कलकत्ते में बहुत से गायकों को गाने की शिक्षा भी दी जिनमें भीषमदेव चैटरजी और गिरिजा शंकर चक्रवर्ती ऐसे लोग भी थे। इन्दौर के शामीर खां के सुपुत्र अमीर खाँ आजकल के नामी ख्याल गायकों में हैं।

कुशल और अनुभवी सारंगियों को गायकों की संगत करते-करते दर्जनों स्थाई और अन्तरे भी याद हो जाते हैं। यही हाल बुज़ुर्ग अनुभवी तबलियों का भी है। देहली के स्वर्गीय बुद्धू खाँ को गायकों की दर्जनों अच्छी-अच्छी चीजें याद थीं। वह अपने ढंग से गले से भी इन चीजों को कभी-कभी गुनगुनाया करते थे। सोचने की बात है कि किन-किन गायकों के साथ वह बजावे। बम्बई के मजीद खाँ ने भी बहुत से ख्याल-गायकों के साथ संगत की। इसी तरह कलकत्ते में बदल खाँ को भी बहुत से स्थाई अन्तरे याद थे। यही कारण था कि वह कलकत्ते में गाने की शिक्षा भी बहुत से लोगों को दे सके। प्रतिभाशील और अनुभवी सारंगिया ही यह कर पाता है, दूसरा नहीं। यही कारण है कि अनुभवी सारंगियों को बहुत सी रागों का पूर्ण ज्ञान होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ सारंगी नवाज संगत के लिए ख्याति प्राप्ति कर लेते हैं चाहे वह बड़े हों या छोटे? और इनमें से कुछ सोलो वाज के लिए मशहूर हो जाते हैं। इन दो वर्गों के सारंगियों में से कुछ के नाम हैं—बम्बई के प्रतिभाशील रामनारायण, देहली के शकूर खाँ मुनीर खाँ, कानपुर के लड्डन खाँ और गुलाम साबिर, लखनऊ के स्वर्गीय नजीरे और वजीरे, मेरठ के स्वर्गीय बन्ने खाँ, बनारस के मशहूर गोपाल मिश्र और पटने के स्वर्गीय बहादुर खाँ।

सारंगी की तरजें जब सुर में मिल जाती हैं, तब वह बहुत ही सुन्दर बोलती हैं। सारंगी एक तरह से कठिन वाद्य भी है जो बहुत परिश्रम चाहता है। कभी-कभी किसी छोटे और अज्ञात सारंगिये का हाथ भी बड़ा मीठा होता है। कुदरत उनको बड़ी उजली तबियत और समझ देती है। ऐसे वादकों को यदि अच्छी संगत और अच्छे सत्संग का मौका मिल जाता है तो वह बड़ी उन्नति करते हैं। यह इतना मुश्किल साज़ है कि लोग इसको सीखने और इस पर रियाज़ करने की हिम्मत नहीं रखते। यह तो मानी हुई बात है कि सारंगी गले का साथ कभी न छोड़ेगी। गज़ल, ठुमरी और दादरा गाने वाली पेशेवर लड़कियों और औरतों के लिए तो वह बहुत ज़रूरी साथ संगत का साज़ है। गाना किसी तरह का हो, ऊँचा या मामूली शास्त्रीय या आमफ़हम। सभ्य या पेशेवर, सारंगी सब गाने को सजाती है। जब तक पेशेवर गायक रहेंगे सारंगी के जीवन काल का अंत भी कभी नहीं होगा।

आधुनिक युग के संगीत के उत्थान और उद्धार में जब संगीत में ऐसी जागृति हो रही है और जब गायन और वादन की भिन्न-भिन्न शैलियों को उचित प्रोत्साहन देकर हम उनको सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं तो यह भी आवश्यक है कि हम सारंगी की भिन्न-भिन्न शैलियों को भी सुरक्षित रखें। सारंगी ही एक ऐसा साज़ है जो प्राचीन गायन परम्परा और आधुनिक गायन परम्परा के बीच में एक सम्बन्ध जोड़ सकती है। सारंगी में सहस्त्रों गायकों के स्वर भरे पड़े हैं। प्रतिभाशील, अनुभवी सारंगिये अभी भी पुराने गवैयों का गाना याद दिला सकते हैं। मशहूर और अनुभवी सारंगी-वादक अपने वादन के द्वारा गायन कला के एक गुज़रे गये युग की याद दिलाते हैं। इसलिए सारंगी ऐसे साज़ को जीवित और सुरक्षित रखना हर तरह से अनिवार्य है। पिछले पचास साल की मशहूर और नामी बाइयों का गाना सारंगी ही के ज़ोर पर होता था। इनमें से कुछ तो ऐसे अनुभवी सारंगी-नवाज थे जो गायन-शिक्षा भी दे सकते थे। मलका, ज़ोहरा, गौहर और जद्दन के साथ सारंगी पर संगत करने वाले कुशल, अनुभवी सारंगिये ही थे। पिछले साठ-सत्तर साल के प्रसिद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख्याल-गायकों और ठुमरी-गायकों के साथ संगत करने वाले सारंगिये भी सही माने में प्रतिभाशील, अनुभवी सारंगिये थे। संगत की कला एक अलग चीज है। कभी-कभी एक छोटा सारंगिया भी बड़ा प्रवीण होता है। आगरे का मुंशी सारंगिया, जिसने कलकत्ते में बड़ी ख्याति पायी थी, इसी तरह का कुशल वादक था और बहुत से ऐसे सारंगियों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

सच तो यह है कि सारंगी और गले का साथ कभी नहीं छूटेगा।

वाइलिन

एक विदेशी साज इतना हिन्दुस्तानी बन जाये आश्चर्य की बात है। दूसरा ऐसा उदाहरण केवल हारमोनियम का है जो वाइलिन से कहीं ज्यादा हमारा अपना साज बनकर रह गया है। हारमोनियम का आधुनिक संगीत-प्रचार में बड़ा हाथ है। वाइलिन हिन्दुस्तानी संगीत का आदी हो गया है और वह उसके स्वरों को बहुत अच्छे ढंग से निकालता है। सारंगी के बाद उसको इस बात में बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। हिन्दुस्तानी संगीत के कुछ लोगों ने तो इस वाद्य में बहुत कमाल भी दिखाया है। वाइलिन वादन के दो पक्ष हैं: अलग सोलो बजाना और गायक के गायन की संगत करना। अच्छे-अच्छे संगीतज्ञों ने इस वाद्य को अपनाकर उस पर बड़ा परिश्रम भी किया। उन्नीस सौ चौबीस के लखनऊ के संगीत सम्मेलन में स्व० अलाउद्दीन खां वाइलिन बजाने में ही प्रसिद्ध हुए थे। वाइलिन में दूसरा इनाम उनके बाद फिरोजपुर के एक बलवन्त सिंह हुगन को मिला था। उसके कई सालों के बाद धुंडीराज पलुसकर का वाइलिन वादकों में और गजानन राव जोशी का, जो कुशल गायक भी हैं, प्रथम श्रेणी में नाम है। उनके बाद स्वर्गीय हुसनलाल और बी० जे० जोग के नाम उल्लेखनीय हैं। लखनऊ के जी० एल० गोस्वामी भी प्रतिभाशील पढ़े-लिखे वाइलिन-वादक हैं। आधुनिक संगीत क्षेत्र में वाइलिन का विशेष स्थान है और बहुत से लोग उस पर परिश्रम कर रहे हैं।

हारमोनियम

ग्वालियर के भैया साहब गनपत राव ने, जो भावुक कलाकार थे, इस विदेशी साज को कला के ऊंचे आसन पर बिठा दिया था। वह इस साज पर अधिकतर दादरा और ठुमरी ही बजाते थे। मगर इस रंग को वह बेजोड़ बजाते थे। उनके बहुत से प्रतिभाशील शिष्य थे जिनमें गया के सोहनी बाबू और देहली के राधेलाल कपूर ने काफ़ी शोहरत पाई थी। बम्बई के बशीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खां, रामपुर के इब्बन मियां, और बदाऊं के प्यारे मियां के नाम भी उल्लेखनीय हैं। गायन की संगत करने में बड़ौदे के गुलाम रसूल खां, जो उस्ताद फैयाज खां की संगत करते थे, अद्वितीय हारमोनियम-वादक हैं। वह विद्वान् और मननशील घरानेदार संगीतज्ञ हैं जो संगीत की उम्दा शिक्षा भी देते हैं।

रेडियो ने कई वर्ष हुए हारमोनियम पर कड़ा प्रतिबंध लगाया था जो अब अलग कर दिया गया है। इस निर्णय को समझदारी का निर्णय ही कहा जायेगा। रेडियो संगीत के लिए हारमोनियम हर तरह से उपयुक्त है। आशा है कि शास्त्रीय संगीत भी इस विषय में अपनी उदारता दिखायेगा और हारमोनियम ऐसे "हरिजन" का उद्धार करेगा और उसे अपने सामान्य प्रचार के लिए किसी भी रूप में अपनायेगा। हारमोनियम अब विदेशी साज नहीं रहा।

पखावज

आधुनिक युग में दतिया के कुदऊ सिंह इस देश के सर्वश्रेष्ठ पखावजिये माने गये हैं। सुनते हैं कि उन्हें जगदम्बा का इष्ट था और उनकी पखावज के चमत्कार भारत भर में प्रसिद्ध हैं। वह पखावज के अद्वितीय विद्वान् और बेजोड़ कलाकार थे। उनके बाद और भी नामी और प्रतिभाशाली पखावज-वादक हुए। इन्दौर के नाना साहब पानसे भी बड़े नामी पखावजी थे जिनके परम शिष्य लखनऊ के स्वर्गीय पं० सखाराम थे। माखन लाल पखावज-वादक भी बड़े बेजोड़ और नामी पखावजिये थे जिनकी कला को देखकर श्रोता चकित हो जाते थे। ग्वालियर के परवत सिंह पखावजिये और शंभु भी अपने समय के प्रमुख पखावज-वादक थे।

पखावज का आनन्द बीन, सरोद ऐसे वाद्यों और ध्रुपद-गायन के साथ ही आता है। बीन में पखावज के साथ तारपरन की संगत अपने ढंग की निराली होती है। प्रवीण ध्रुपद-गायकों के साथ भी पखावज का बहुत आनन्द आता है। लोग पखावज कम सीखते हैं और तबला ज्यादा सीखते हैं। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के क्षेत्र में ध्रुपद-गायन के साथ-साथ पखावज को भी सुरक्षित रखना जरूरी है। पखावज एक प्राचीन, परंपरागत वाद्य है जिससे तबले का बाज निकला है।

तबला

तबले के अच्छे-अच्छे घराने आधुनिक युग में हुए। लखनऊ घराने में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

GC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुन्ने खां और आबिद हुसैन लखनऊ बाज के बेजोड़, नामी उस्ताद थे। उनके बाद छुट्टन खां और वाजिद हुसैन का नाम आता है। वाजिद बड़े कुशल तबला-वादक हैं और उनके सुपुत्र आफाक हुसैन एक बहुत ही होनहार, प्रतिभा-शील तरुण कलाकार हैं जो अभी और भी चमकेंगे। देहली के उस्ताद नत्थू खां देहली बाज के बहुत बड़े उस्ताद थे जिनसे मेरठ के हबीबुद्दीन ने भी सीखा था। देहली के गामी खां भी बड़े उस्तादों में थे। बनारस के पुराने वादकों में बीरू मिश्र और कण्ठे महाराज का बड़ा नाम रहा है। तरुण वादकों में बनारस के स्वर्गीय अनोखे लाल तंत्र की संगत बेजोड़ करते थे। आजकल शान्ताराम गुदई और किशन महाराज बनारस के दो प्रमुख तबला-वादक हैं जिनके बाज में प्रतिभा और परिश्रम दोनों हैं। मेरठ के मुनीर खां भी बड़े ऊंचे तबला-वादक थे। उन्होंने ही एक बेजोड़ शिष्य तैयार किया था जो संगत की कला में अभी भी बेजोड़ हैं। उनका नाम है उस्ताद अहमद जान थिरकुवा जिन्हें कई घरानों का तबला याद है। तबले के दो और बाज बड़े मशहूर हुए हैं, अजड़ाला और फरुक्काबादी बाज। फरुक्काबाद के हाजी विलायतअली अपने क़िस्म के एक बड़े विद्वान् तबलिये थे। पंजाब के करम इलाही और क़ादिर बख्श भी बड़े कुशल और नामी तबलिये थे। आजकल के संगत करने वाले तबलियों में शान्ताराम गुदई, किशन महाराज, अल्लारखे, करामत इत्यादि का बहुत नाम है। बुजुर्ग उस्तादों में दो ही बच रहे हैं—कलकत्ते के उस्ताद मसीत खां और रामपुर के उस्ताद थिरकुवा खां, जो आजकल बंबई में रहते हैं, दोनों का निवास-स्थान रामपुर है और दोनों घरानेदार उस्ताद हैं।

कथक नाच

इस देश में और भी नृत्य की शैलियां हैं जैसे भरतनाट्यम्, कथाकली, मनीपुरी इत्यादि। परन्तु वह हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत नहीं आती हैं। हम कथक नृत्य ही को हिन्दुस्तानी संगीत की परंपरा से संबन्धित मानते हैं। सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले इसका आरम्भ हुआ था और उसके बाद ही इस नृत्य-शैली ने अपना आधुनिक रूप धारण किया। आमतौर से हम इसे कथक नाच के नाम से पुकारते हैं। पहले के कथक कथा कहने वाले ही होते थे। यह पौराणिक कथाओं को कुछ गाकर और कुछ अभिनय के द्वारा बताते थे। धीरे-धीरे कथक नाच ने अपना विशेष आधुनिक परिमार्जित रूप धारण किया। कृष्णलीला, रासलीला, कृष्ण नृत्य इत्यादि को ही हम इसका उद्गम-स्थान मानेंगे। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में इस नृत्यकला का आधुनिक रूप स्था-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पित हो गया था। जो कुछ परिवर्तन इसके उन्नति-काल में होते रहे वह इसकी परिपूर्णता, निर्दोषता और उत्तमता ही का पोषण करते रहे। बिन्दादीन के काल तक यह नाच पूर्णरूप से अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गया था। इस समय से हम उसे एक विशेष कला ही के रूप में देखते हैं।

परन्तु इस नाच के प्रथम अन्वेषक ठाकुर प्रसाद थे जो किसी हद तक इसके जन्मदाता भी कहे जा सकते हैं। ठाकुर प्रसाद ही के सुपुत्र बिन्दादीन थे जिन्हें संसार "महाराज बिन्दादीन" के नाम से पुकारता है। ठाकुर प्रसाद इस नृत्य में लखनऊ के आखिरी नवाब वाजिदअली शाह के गुरू भी थे और उनका बहुत मान-सम्मान अवध के बादशाह नवाब वाजिदअली शाह के दरबार में था। इसी शाही दरबार के एक महफिल में, जो अब तक ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित मानी जाती है, नौ वर्ष के प्रस्तुत प्रतिभा वाले बालक बिन्दादीन का नाच कुदऊ सिंह की पखावज के साथ हुआ था। यह बड़े मार्के की संगीत-गोष्ठी थी जिसमें बालक बिन्दादीन ने अपना ऐसा विलक्षण अभिनय दिखाया कि कुदऊ सिंह के मुंह से भी वाह-वाह निकली। कुदऊ सिंह आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ पखावज-वादक थे जिनकी वादन कला को लोग आश्चर्यजनक और अलौकिक कहा करते थे। वह ताल विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् पंडित थे और उनकी पखावज की निराली संगत महफिल को अचम्भे में डाल देती थी। उस दिन होनहार बालक बिन्दादीन तीन ताल की कसौटी पर केवल सच्चा ही नहीं उतरा परन्तु उसके पैरों की तैयारी ने सारी महफिल को एक बड़े आश्चर्य में भी डाल दिया। उस दिन उस महफिल में नवाब वाजिदअली शाह, जो "अख्तर पिया" के नाम से मशहूर थे, बिन्दादीन का नाच देखकर गर्व से फूले न समाये और उनके गुरु ठाकुरप्रसाद को भी पूरा भरोसा हो गया कि कथक नाच उनके सुपुत्र बिन्दादीन के हाथों में सुरक्षित रहेगा। और यही हुआ।

इस घराने को सौ वर्ष से अधिक हो गये हैं। उन्नीस सौ बीस या इक्कीस तक वृद्ध नर्तक बिन्दादीन को संगीत-संसार कथक नाच का सम्राट मानता था। अपने बुढ़ापे तक वह अपनी अद्भुत कला का परिचय देते रहे। बुढ़ापे में भी वह जब कृष्ण बनकर आते थे तो लोगों को ऐसा मालूम पड़ता था कि एक तरुण नृतक ही सामने खड़ा है। दर्शक उनका नृत्य अभिनय देखकर दांत तले उंगली दबा लेते थे। यह भी सच है कि अपने जीवन-काल में वह कथक नाच के अद्वितीय शिक्षक भी थे जिन्होंने अपनी ही साधना और अपने ही परिश्रम से कथक नाच की शिक्षा अपने बहुत से शिष्यों को दी और इस तरह सारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतवर्ष में लखनऊ के कथक नाच का व्यापक प्रचार किया। एक उनकी अकेली विलक्षण प्रतिभा ने ही इतना बड़ा काम किया कि देश के सारे कथक उनके शिष्य हो गये। उनके व्यक्तित्व की बड़ी गहरी छाप इस देश के कथक नाच पर पड़ी।

कथक नाच के आमतौर से दो घराने माने जाते हैं। एक लखनऊ का घराना और दूसरा जयपुर का घराना। परन्तु लखनऊ ही इस नाच का स्रोत है। लखनऊ घराने ही से जयपुर घराने के लोगों ने सीखा। वह सब बिन्दादीन ही के शिष्य थे और इन्हीं की शिक्षा के आभारी थे। अभी भी जयपुर के कथक कलाकार लखनऊ ही को अपने नाच का जन्मस्थान मानते हैं। बिन्दादीन के जीवन-काल में लखनऊ कथक नाच का तीर्थस्थान हो गया था। उनकी ड्योढ़ी पर देश भर के कथक उनके दर्शन के लिए आते थे और वहीं उनसे शिक्षा भी प्राप्त करते थे। जयपुर का घराना लखनऊ के कथक घराने ही से निकला। वह एक ही बात में लखनऊ घराने से ज़रा सा अलग होता है और वह है उसके नाच में प्रबन्धों का रिवाज। प्रबन्धों का विकास जयपुर घराने में ही हुआ मगर इससे उसकी सैद्धान्तिक शैली में कोई अन्तर नहीं आया। इस घराने के जितने आवश्यक अंग और पक्ष हैं वह सब लखनऊ घराने के हैं। उसकी शिक्षा-पद्धति भी लखनऊ की पद्धति पर अवलम्बित है और वही उसका मूल आधार है। जयपुर घराने का पूरा नाच लखनऊ घराने ही की देन है। इस बात को बड़ी कृतज्ञता की भावना से जयपुर के प्रमुख कथक कलाकारों ने हमेशा स्वीकार किया है जिनमें हनुमान प्रसाद, जयलाल, सुन्दर प्रसाद और कार्तिक राम के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जयपुर वालों ने लखनऊ के कथक नाच की शिक्षा ही नहीं पाई, परन्तु उसमें अपने परिश्रम से चार-चाँद भी लगाये। मगर लखनऊ के कथक नाच के भाव-अभिनय के सामने वह बराबर अपना सिर झुकाते रहे। बिन्दादीन के घराने का भाव-अभिनय उनके लिए एक प्रकार से असम्भव ही रहा था। इस विशेष कला में तो लखनऊ के घराने वाले ही बेजोड़ रहे।

बिन्दादीन के छोटे भाई कालका प्रसाद भी चोटी के कलाकार थे। नृत्य की शिक्षा उनको भी मिली थी मगर वह अपने बड़े भाई बिन्दादीन के साथ तबला ही बजाते थे। नाच के साथ उनके तबले की संगत भी अपने ढंग की बेजोड़ संगत थी। बिन्दादीन के साथ लखनऊ के मशहूर तबला-वादक मुन्ने खाँ भी संगत करते थे। कालका प्रसाद के तीन लड़के थे—अच्छन, लच्छू और शम्भू। अच्छन अकेले को ही इन तीन भाइयों में बिन्दादीन ने शिक्षा दी। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबसे बड़े भाई थे और इस कारण उन्हीं को घराने की तालीम पहुंची। जब रामपुर रियासत में अच्छन महाराज नियुक्त हो गये थे तो वहीं पर उन्होंने अपने दो छोटे भाइयों को कथक नाच की शिक्षा दी। दोनों बाद में कथक नाच के पारंगत हो गये। बिन्दादीन से शिक्षा लेने के अलावा अच्छन महाराज बहुत प्रतिभाशील भी थे और बड़े परिश्रमी भी थे। उन्हीं ने अपने नामी घराने की कला को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा। वह लखनऊ के कथक नाच के घराने के अन्तिम महान् प्रतिनिधि थे और उन्हीं के पास घराने की बची-खुची पूँजी थी। उन्होंने इस नाच की सैद्धान्तिक रूपरेखा को हर तरह से सुरक्षित रखा और इस घराने की तालीम को अपने दो भाइयों के अलावा और शिष्यों को भी दी। वह सर्वश्रेष्ठ कथक कलाकार थे और बिन्दादीन और कालका प्रसाद के बाद इस घराने के गुरु और संरक्षक भी थे।

स्वर्गीय अच्छन महाराज में बहुत से गुण थे। उनकी कला के गुण तो ऊँचे दर्जे के थे ही और इस बात पर टिप्पणी करना व्यर्थ है। उनकी कला के बारे में देश के कथकों की दो रायें नहीं हैं। बहुमत यही कहता है कि वह कथक नाच के धुरन्धर विद्वान् और बेजोड़ कलाकार थे। परन्तु उनके व्यक्तित्व में भी एक विशेष आकर्षण था। वह इंसानियत के पुतले थे और इतने बड़े विद्वान होते हुए भी वह बहुत भोले और विनीत थे। सच्ची मानवता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। जहाँ तक उनके नृत्य कला का सम्बन्ध था, परम्परागत कथक नाच में उनकी तत्कार बेजोड़ थी और इस बात में वह हर तरह से अद्वितीय और लासानी थे। ऐसी तत्कार किसी और कथक के नाच में कभी नहीं देखी गई। वह लय और तान के सम्राट थे और उन जैसी लय दूसरा कथक नाच का नाचने वाला नहीं देखता था। वह लय के असम्भव दर्जे देखते थे और उनके घुंघरू ताल का विलक्षण चमत्कार दिखाते थे। वह अपने अवकाश के समय को नई-नई परनों और नये-नये टुकड़ों के आविष्कार ही में व्यतीत करते थे। वह सदैव एक सच्चे और ऊंचे कलाकार होने के नाते अपनी कला के आनन्द में डूबे रहते थे। उनकी इस तन्मयता को देखकर लोगों को उनके प्रति श्रद्धा ही होती थी।

स्वर्गीय अच्छन महाराज की ताल विद्या के चमत्कार को स्पर्श करते समय हमें जयपुर के स्व० सुन्दर प्रसाद की याद भी आती है। वह भी ताल और लय के गूढ़ भेदों और तत्वों को बड़ी अच्छी तरह से जानते और समझते थे और अपने शिष्यों को भी समझाते थे। उनकी नृत्य शिक्षा में एक विशेष गुण यह था कि उनके प्रवीण और बुद्धिमान शिष्य तीन ताल में नाचते समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और भी तालों का उसी लय में प्रदर्शन करते थे और ठीक समय पर आ जाते थे। यह ज़रा मुश्किल काम है। यदि नाचने वाला या नाचने वाली ज़रा चूक जाय तो पूरा नाच मिट्टी में मिल जाये। मगर सुन्दर प्रसाद की शिक्षा का यही गुण था कि उनके विद्यार्थियों को ताल का बड़ा ज्ञान हो जाता था। वह ताल और लय के कीड़े थे और यही कारण था कि इस विषय में वह भी स्वर्गीय अच्छन महाराज की विलक्षण लय की बहुत प्रशंसा करते थे और उनकी महानता को मानते थे।

ताल का ऐसा गहरा ज्ञान आमतौर से कथकों में कम देखा गया। कथक नाच ज्यादातर तीन ताल की टकसाली सोलह मात्राओं ही में नाचा जाता है। मगर स्वर्गीय अच्छन महाराज धमार और सवारी तालों में भी बड़ी आसानी से अपने नृत्य का प्रदर्शन कर सकते हैं। पैर के घुंघरुओं से यह काम करना आसान बात नहीं है। उनका ऐसा महान् कलाकार ही इस तरह के चमत्कार को ऐसी सुगमता से दिखा सकता था, दूसरा नहीं। ऐसी असाधारण प्रतिभा उन्हीं में थी।

कथक नाच की आलोचना करते समय कभी-कभी लोग कहते हैं कि इस नाच में केवल पैरों ही का काम होता है। यहां पर इस विषय में एक आद्य बात कहना असंगत न होगा। संगीत के विद्यार्थियों को इस बात को समझ लेना चाहिए कि ऐसी राय भ्रमजनक हो सकती है। क्या कथक नाच की विशेषता पैर के काम ही में है? जिन लोगों ने कथक के गत भाव और भाव-प्रदर्शन को देखा है वह जानते हैं कि ऐसी आलोचना निर्मूल है और केवल एक प्रकार की भ्रान्ति का ही कारण बन सकती है। हम जानते हैं कि ब्रजभाषा की रीतिकालीन कविता में नायिका-भेद और नख-शिख वर्णन की सूक्ष्म व्याख्या मिलती है। तो क्या इसलिए हम भूषण, मतिराम, और देव की भावुक कल्पना और उनकी कविता के माधुर्य का आनन्द नहीं लेते? क्या हम भी कथक के भाव-प्रदर्शन का भी शृंगार रस की अतिशयोक्ति समझकर उसकी विलक्षण कला के चातुर्य और उसके कलात्मक चमत्कार को भूल जायें? इतना सूक्ष्म भाव-अभिनय और भाव-विश्लेषण और किस नृत्य शैली में है? हम कथक नाच को केवल घुंघरू का ही काम क्यों समझें? ताल और लय इस नाच के आवश्यक अंग हैं। हम उन्हें किसी भी कीमत पर अनावश्यक नहीं समझ सकते। मगर यह कहना निर्मूल और असंगत होगा कि कथक नाच में केवल पैरों का काम ही होता है। यह कोई तर्क का विषय नहीं है। सितारा देवी और बिरजू महाराज का पूरा कथक नाच देखकर हम इस बात का निर्णय कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते हैं कि कथक नाच में पैर का पूरा काम अन्त ही में होता है। उसके पहले इस नाच में भावों से सम्बन्धित और भी बातें हैं जिनमें गतों का विशेष स्थान है।

हाँ, यह हम मानने को तैयार हैं कि औसत दर्जे के कथक नाच में कभी-कभी पैर का काम ही प्रधान होता है। परन्तु इसमें तो शिक्षा और कला-प्रदर्शन का दोष है, कथक के मूल सिद्धान्तों का नहीं। प्रतिभाशील कथक नाच का नाचने वाले अपनी कला के गुणों को उचित और उपयुक्त ढंग से प्रदर्शित करेगा और उसका पूरा नाच इन्हीं गुणों का संश्लेषण होगा। जहाँ जो चीज़ होनी चाहिए वहीं होगी। अन्त में पैर के काम के द्वारा यह कला दर्शकों को आनन्द की पराकाष्ठा पर ले जाती है। वह केवल कथक के नृत्य-प्रदर्शन का अन्त है। उसके पहले जो इस नाच के आवश्यक पक्ष हैं उन्हें हम क्यों भूल जाते हैं? कथक नाच के कलाकार का भी यही कर्तव्य है कि वह अपने नृत्य-प्रदर्शन से इस ग़लत और भ्रमजनक भावना को रोके। अगर ऐसा नहीं होगा तो कलाकार का ही दोष होगा, कला का नहीं।

अच्छन महाराज के नाच में लय और ताल का विशेष आनन्द ज़रूर आता था, मगर वह कथक नाच के और आवश्यक अंगों की अवहेलना नहीं करते थे। दूसरी बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि वह केवल कथक नाच के शिक्षक ही नहीं थे—परन्तु मंच पर नृत्य दिखाने वाले ऊंचे कलाकार भी थे। प्रायः कथक नाच दिखाने वाले केवल कथक के शिक्षक ही होते हैं, वह खुद नहीं नाचते। देहली कथक केन्द्र के स्वर्गीय सुन्दर प्रसाद प्रतिभाशील शिक्षक ही थे, खुद नही नाचते थे। यही हाल स्व० शंभू महाराज का था। और यही हाल लच्छू महाराज का भी है। माना कि कथक की शिक्षा देना भी उतना ज़रूरी है जितना कथक नाच का प्रदर्शन करना। परन्तु अच्छन महाराज की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वह अपने जीवन-काल के अन्त तक शिक्षा भी देते रहे और खुद नाचते भी रहे। इस महत्वपूर्ण विशेषता को हम आसानी से भूल नहीं सकते। उनके बहुत से शिष्य अभी भी लखनऊ में कथक नाच की अच्छी शिक्षा देते हैं परन्तु खुद बिल्कुल नहीं नाच सकते।

अच्छन महाराज के सबसे छोटे भाई शम्भू महाराज में असाधारण प्रतिभा थी। अभी कुछ ही वर्ष पहले उनका देहली में देहान्त हुआ। एक विशेष गुण में तो वह निराले थे। यह था उनका भाव बताना। भाव बताने में वह एक तरह से अद्वितीय थे। 'नदिया किनारे मोरा गांव', अथवा 'किसने चिलमन से मारा नज़ारा मुझे' अथवा 'निकल चलिबो हमरी मानों' ऐसी भावुक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंक्तियों के भावों को जिस सुन्दरता से वह दिखाते थे दूसरा कथक नाच का कलाकार नहीं दिखा सकता था। बरसों घुंघरू का चमत्कार दिखाकर शम्भू महाराज इस नतीजे पर पहुंचे थे कि कथक नाच की उच्चतम भावुकता भाव बताने ही में है। यह उनकी अपनी व्यक्तिगत राय थी जिसे वह अपने भाव-प्रदर्शन से साबित करते थे। भाव बताना भी एक सुन्दर कला है जिस पर प्रत्येक कथक नाच का कलाकार अधिकार नहीं पा सकता।

भाव बताना या भाव दिखाना केवल नक़ल नहीं है। इस कला में कल्पना-शक्ति का बड़ा हाथ है। बंधे टके, पिटे-पिटाये, बासी तिबासी भाव तो प्रत्येक औसत दर्जे का कथक भी दिखा सकता है। परन्तु जिन भावों में कल्पना-शक्ति का काम होता है वह मामूली कला नहीं है। इसमें सूझ की बड़ी आवश्यकता है। कल्पना ही के द्वारा नये-नये भाव सूझते हैं और भाव बताने वाला कथक नाच का भावुक कलाकार बहुत सूक्ष्मदर्शी भी होता है। उसको वह-वह नई जगहें सूझती हैं और उसकी कल्पना मानव जीवन के उन अदृश्य स्थानों पर पहुंचती है जहां औसत दर्जे के कलाकार की बुद्धि नहीं पहुंचती। कोमल कल्पनायें, सूक्ष्म विचार, गहरे भाव, दूर की सूझ, कल्पना की असंभव उड़ान, यह सब उसकी अनोखी प्रतिभा को प्रकाशित करते हैं। प्रेम, विरह, मिलन, जीवन, मृत्यु, आशा, निराशा, जीवन का उल्लास, जीवन का दुखान्त नाटक, ईर्ष्या, द्वेष, ग्लानि, क्रोध, विनीत भावना, सूनी रात; विछोह, यातना, हृदय की पीड़ा। अट्टहास, दारुण दुख, कमसिनी, अनुभव, प्रौढ़ता, नायिका, स्वकीया, परकीया, नदी, समुद्र, आकाश, तारे, गली, किनारा, कुंज, कृष्ण, राधा, कुब्जा, सखी, सौत, त्याग, संन्यास इत्यादि ऐसे और भी बहुत से विषयों को लेकर भाव-प्रदर्शन का भावुक कलाकार असंख्य भावों को अपने शरीर के प्रत्येक अंग—आंख, भौंहें, पलकें, नजर, मुस्कान-की सहायता से दिखा सकता है।

स्वर्गीय शम्भू महाराज इस भाव-प्रदर्शन के अद्भुत कलाकार थे। उन्हें जो-जो जगहें सूझती थीं वह कभी-कभी बड़ी मुश्किल जगहें होती थीं जो एक बहुत ही कुशल कलाकार, जिसमें कल्पना-शक्ति भी है, दिखा सकता था। उदाहरण के लिए, नीचे लिखी हुई पंक्तियों पर वह अपनी इस कला को बड़ी उत्तमता में दिखाते थे और दर्शक यह सब देखकर दंग हो जाते थे—

'नदिया किनारे मोरा गांव, तुम आइहो कान्हा।
मोरे पिछवड़वा हरे हरे बंसवा।
बंसिया बजावो वही ठांव॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नदिया किनारे मोरा गांव।
एक गांव की रहने वाली। ललिता सखी मोरा नांव।

इत्यादि।

अथवा

'मोरे सैंयां उतरेंगे पार नदिया धीरे बहो।'

अथवा

'तोरे नैनों ने जादू डाला मारा नज़र का भाला।'

अथवा

'दिल तीरे नज़र का निशान हुआ।'

इत्यादि।

शब्द कोई भी हों। उनकी सूझ में कमी नहीं आती थी। इस ज़माने में शम्भू महाराज ऐसे भाव बताने वाले ज़रा कम हुए हैं।

कथक नाच को भावुक और रोचक बनाना ही इस घराने की शिष्य-परम्परा का काम है। इस घराने की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने वाले लोग वही कथक नाच के शिक्षक हैं जो इधर-उधर से किसी से अधूरी शिक्षा पाकर इस घराने का नाम लेते हैं और अनुभवी शिक्षक बन जाते हैं। इस घराने की मौलिक कला के लिए सबसे बड़ा खतरा ऐसी अधूरी औसत दर्जे की शिक्षा ही है। ऐसे ही अशिक्षित शिक्षकों की शिक्षा में बोल, टुकड़े, परन और पैरों की कसरत और घुंघरुओं की आवाज़ के अलावा और कुछ नहीं होता। ऐसे ही लोग इस घराने के लिए ठोकर का कारण बन जाते हैं। कथक नाच सीखने वालों को सावधान रहना है कि वह ऐसी अधूरी, अव्यवस्थित शिक्षा लेने का प्रयत्न न करें। इसकी बड़ी कमी को देहली और लखनऊ के कथक-केन्द्र ही थोड़ी-बहुत पूरी कर सकेंगे। खेद है कि अधिकतर लोग ऐसे ही अशिक्षित शिक्षकों से कथक नाच की शिक्षा लेते हैं। इनके और इनके छात्रों के नृत्य-अभिनय को देखकर ही लोग कथक नाच की तीव्र आलोचना करते हैं और कहते हैं कि इस नाच में पैर के काम के अलावा और कुछ नहीं है। इस दोषारोपण का केवल एक ही उत्तर हो सकता है और वह है कथक नाच की उत्तम शिक्षा और उसका उत्तम प्रदर्शन। जो इस कथक घराने के प्रतिनिधि और श्रेष्ठ शिष्य हैं चाहे वह जयपुर के हों या लखनऊ के, उनका कर्त्तव्य है कि वह ऐसे शिष्यों को शिक्षा देना बन्द कर दें जो अधूरी शिक्षा पाकर मैदान में आ जाते हैं और अपने नाम के आगे या पीछे 'महराज' की उपाधि लगाकर और नाटकीय वेषभूषा बनाकर कथक नाच का रोज़गार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं और इस तरह इस प्रतिष्ठित घराने का खुले आम अनादर करते हैं। यह इसलिए कहना पड़ रहा है जिसमें हमारे तरुण वर्ग के विद्यार्थी सावधान हो जायें और इस नाच को गलत व्यक्ति से गलत जगह न सीखें। जब हम गलत, अधूरी शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा देंगे तो इससे कथक नाच की केवल उन्नति ही नहीं होगी, उसका आम जनता में उद्धार भी होगा और साथ-साथ उसका उचित आदर भी होगा।

यह लखनऊ के कथक घराने का सौभाग्य है कि अच्छन और अम्भू की मृत्यु के पश्चात् अभी अच्छन महाराज के मझले भाई लच्छू महाराज और उनके प्रतिभा सम्पन्न पुत्र विरजू महाराज कथक नाच की उत्तम सेवा कर रहे हैं। लच्छू महराज अब इस घराने के बुजुर्ग हैं और मार्गदर्शक भी हैं। जैसा पहले कहा गया, उनको उनके बड़े भाई अच्छन ने ही कथक नाच की शिक्षा दी। अपनी शिक्षा के वाद उन्होंने एक तरह से लखनऊ से नाता ही तोड़ दिया और बंबई ही में जाकर वस गये। उनका जीवन बड़ा ही परिवर्तनशील रहा है। उन्होंने कथक नाच का काम विभिन्न क्षेत्रों में किया है। अब यह उनकी वृद्धावस्था का समय है परन्तु वह कला की सेवा में सेवा और साधना के भाव में संलग्न हैं। उनके परिश्रम और उनकी स्फूर्ति में अभी कोई कमी नहीं आई है। उनके भतीजे स्व० अच्छन के सुपुत्र विरजू महाराज देहली के कथक केन्द्र में कथक की महान् सेवा कर रहे हैं। और लच्छू महाराज अपने ही लखनऊ में बुजुर्गों की याद दिलाने आये हैं और कथक नाच की नई जागृति करने आये हैं। यह लखनऊ के कथक नाच के लिए अच्छा शगुन है और लच्छू महाराज का सौभाग्य है कि वह लखनऊ के कथक नाच के उद्धार में अपना हाथ इस उत्साह से लगा रहे हैं। इस युग में कथक नाच को लच्छू महाराज की लगन और उनके अनुभव से बड़ी आशा है।

कथक नाच के प्रचार और उसकी सामान्य शिक्षा के अलावा एक और बड़ा काम है जो घराने की प्रतिष्ठित शिष्य-परम्परा को करना है और वह है घरानेदार नाच की सुरक्षा और उद्धार। लच्छू महाराज अपनी साधना, अनुभव और सेवा-भाव के ही कारण ऐसे प्रतिभाशील व्यक्ति हैं जो इस घराने के नृत्य के मौलिक सिद्धान्तों की पूरी रक्षा कर सकते हैं और उसकी पूर्ण शिक्षा भी होनहार व्यक्तियों को दे सकते हैं। यह काम बहुत ही जरूरी है। इस प्रयोगवाद के युग में सबसे बड़ा खतरा इस बात का है कि घराने के पुराने नाच में नई मिलावट न हो जाये। यह एक ऐसा गम्भीर विषय है जिस पर अनुभवी विद्वान् ही ठीक से ध्यान दे सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लच्छू महाराज का सौभाग्य है कि वह लखनऊ घराने के मार्गदर्शक बने। इस घराने की प्राचीन परम्परागत विद्या को एकत्र करके उसकी केवल रक्षा ही नहीं करना है परन्तु उसे योग्य होनहार शिष्यों तक पहुंचाना भी एक बड़ा आवश्यक काम है। कथक-केन्द्र ऐसी संस्था ही ऐसे महान् कार्य के उत्तरदायित्व का बोझ उठा सकती है, चाहे वह देहली में हो या लखनऊ में। घराने का नाच सुरक्षित तभी हो सकता है जब शिक्षा के द्वारा उसका विस्तृत प्रचार हो। प्रयत्न इसी बात का होना चाहिए कि होनहार और प्रतिभाशील शिष्यों को पहले यह कला पहुंचे। सरकार को, समाज को, संगीत के संसार को तीनों को मिलकर इस महान् कार्य में हाथ बंटाना है। इस मामले में केवल एक घराने को इसका एकाधिकार नहीं होना चाहिए। चाहे वह लखनऊ घराना हो या जयपुर घराना। हां, यह जरूर है कि जिन विशेष प्रतिभाशील शिष्यों ने इस प्राचीन विद्या के लिए अपने जीवन को समर्पण कर दिया है, उनकी शिक्षा किसी विद्वान् गुरु से ही होनी चाहिए, और आम विद्यार्थियों के साथ एक ही कक्षा में नहीं। कथक नाच के लिए होनहार विद्यार्थियों ही को चुनकर उन्हें शिक्षा देनी चाहिए। हर व्यक्ति कथक नाच नहीं सीख सकता और न उसे सीखना चाहिए।

लच्छू महाराज की महान् सेवा यही होगी कि वह अपने दस-बीस शिष्य इस प्रतिभा के तैयार करें कि वह कथक नाच की शिक्षा के द्वारा अधिक से अधिक उसका प्रचार करें। इसी से इस नाच की उन्नति होगी और उसका उपयुक्त प्रचार होगा। यह एक बड़ा महान् कार्य है और लच्छू महाराज ही गुरु की हैसियत से इसे सफलता से पूरा कर सकते हैं। हमें आशा है कि कथक नाच के उद्धार और व्यापक प्रचार के लिए हमारी सरकार उनको पूरी सुविधा और उचित प्रोत्साहन देगी। परन्तु यह कहना पड़ेगा कि लच्छू महाराज को भी गम्भीर उत्तरदायित्व की भावना से इस काम में जुट जाना पड़ेगा। उनकी प्रतिभा और उनकी सहृदयता से ही उनके शिष्यों को उचित प्रोत्साहन मिलेगा। उत्तर प्रदेश के कथक के होनहार विद्यार्थियों को उनसे पूरा लाभ उठाना चाहिए। तभी हम कथक का नया नारा 'कथक जिन्दाबाद' लोगों के मुंह से सुनेंगे। मगर इसके उत्तरदायित्व का बोझ लच्छू महाराज को पूरी लगन से उठाना है।

स्व० अच्छन के होनहार, प्रतिभाशील सुयोग्य सुपुत्र ब्रजमोहन अथवा बिरजू महाराज को भी इस बात पर पूरा ध्यान देना पड़ेगा। जिस विस्तृत क्षेत्र में वह काम कर रहे हैं उससे पता चलता है कि इस युग में कथक नाच

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महफ़िल की चहारदीवारी के बाहर निकल आया है। कथक नाच के जीवन इतिहास में यह परिवर्तन एक क्रान्तिकारी घटना है। कथक नाच पहले महफिल, नशिस्त अथवा एकान्त की संगीत-गोष्ठी का नाच था। बिन्दादीन और कालका के जमाने में महफिलों का चलन था जहां घण्टों संगीत गाया, बजाया और सुना जाता था। रात-रात भर महफिलें होती थीं। प्रातःकाल में भैरवी के बाद ही महफिल का अन्त होता था। रसिक श्रोता रात भर बैठ कर संगीत सुनते थे। इतने घण्टों तक संगीत सुनने की आदत सुनते-सुनते पड़ गई थी। रात की महफिलें पौ फटने तक तो अवश्य, होती थीं। श्रोता आदी थे इतने घण्टे धैर्य से संगीत सुनने के। अधिकतर किसी रईस के यहां एक बड़े कमरे में फर्शी महफिल होती थी और वहां कुर्सी, सोफ़े का कोई काम नहीं होता था। चांदनी के ऊपर ही लोग बैठते और रात-रात भर गाना बजाना सुनते थे। बड़ी-बड़ी महफिलों का आयोजन इसी प्रकार होता था। समाचार-पत्रों को इन बड़ी आलीशान महफिलों की खबर तक नहीं होती थी। और न इन विराट महफिलों में टिकट लगता था। आजकल वाली बड़े हाल में दो घण्टे के लिए आयोजित की हुई संगीत-गोष्ठी, जो और भी भड़कीले नामों में पुकारी जाती है, उस समय नहीं होती थी। आजकल संगीत का दो घण्टे वाला संगीत का कार्यक्रम या तो शाम के खाने के बाद आठ-साढ़े आठ से होता है या शाम के खाने के पहले आठ बजे तक समाप्त हो जाता है। ऐसा कार्यक्रम लोगों की सुविधा के हिसाब से ही आयोजित किया जाता है। यह संगीत-गोष्ठी, जो एक बड़ी भीड़ को आकर्षित करती है, महफ़िल के नाम से पुकारी नहीं जा सकती। इसके तलाऊपर के गाने-बजाने में कोलाहल भी होता है और लोग कुर्सियों पर बैठे हुए बात भी करते जाते हैं। पुरानी महफिल की खामोशी का वातावरण यहां पर नहीं होता। कथक नाच को अब एकान्त की रसिक दर्शकों की महफिल, नहीं देखती। उसके एक बड़ी भीड़ एक मैदान में या एक बड़े हाल में टिकती है। इस कारण कथक नृत्य के अभिनय की सारी व्यवस्था बदल गई है। महफिल के फर्श को छोड़कर अब कथक के कलाकारों को बड़े मंच में नाचना पड़ता है जहां से वह अपने श्रोताओं और दर्शकों से आंखें नहीं मिला सकते। अज्ञात दर्शकों के आगे जिनसे वह बिल्कुल परिचित नहीं है, कथक एक मशीन की सच्चाई के साथ अपनी कला दिखाता है। कथक नाच अब महफिल का नाच नहीं रहा। अब वह आम जनता की रुचि के इशारे पर चलता है और कला के क्षेत्र में अपने विशेष व्यक्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिरजू महाराज ने अपने को इन नई आधुनिक आवश्यकताओं का आदी बना लिया है। वह अब बैले, कृष्ण लीला, ग्रुप डांस इत्यादि के आदी ही नहीं उनके पारंगत भी बन गये हैं। वह घराने के नाच के संकुचित क्षेत्र और महफिल के प्रतिबन्धों के बाहर निकल आये हैं। ऐसा सब करने के लिए उन्हें नई-नई तरकीबों से काम लेना पड़ा। हर्ष इस बात का है कि वह इस नये वातावरण को अपनी प्रतिभा और साहस से अपने लिए आसंन बना रहे हैं और सफलता प्राप्त कर रहे हैं। जहां तक घराने के नाच की बात है, उन्हें बहुत थोड़ी शिक्षा अपने स्वर्गीय पिता से मिल पाई। अच्छन महाराज की मृत्यु अचानक हो गई थी। इस कारण अपनी शिक्षा को पूरा करने के लिए उन्हें अपने दोनों चाचा लच्छू महाराज और स्वर्गीय शम्भू महाराज से भी शिक्षा लेने का अवसर मिला। कथक नाच में परिश्रम और लगन बड़े महान् गुण माने गये हैं। होनहार ब्रजमोहन में यह दोनों गुण थे। साथ में विलक्षण प्रतिभा भी थी। इसलिए अपने जीवन को अपनी घर की विद्या के लिए समर्पित करके वह इस महान् कार्य में बड़ी प्रेरणा से लग गये। यही कारण है कि आज उनका नाम देश के प्रमुख कथक नाच के कलाकारों में है। उनके नाच में उनके स्वर्गीय पिता अच्छन महाराज के मनके डोरे का भी पता चलता है और उनमें भी ताल-विद्या का बहुत अच्छा अध्ययन दिखाई देता है। यह तो हुई उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा की बात। उसमें बड़ी बात यह है कि वह नाच के बड़े योग्य और परिश्रमी शिक्षक हैं। वह अनुभवी भी हैं और सहृदय भी हैं। इस कारण उनके छात्रों को उनसे हमेशा बहुत लाभ पहुंचेगा।

बिरजू महाराज को गाने का भी शौक है और वह रेडियो से कभी-कभी बिन्दादीन की ठुमरियां भी प्रसारित करते हैं। यदि वह थोड़ा अभ्यास करके भाव-प्रदर्शन की ओर अपना ध्यान दें तो वह अपने चाचा स्वर्गीय शंभू महाराज के भाव-अभिनय की कला को फिर से जागृत कर सकते हैं। इस बात में उन्हें अपने बड़े चाचा लच्छू महाराज से भी सहायता मिलेगी और शिक्षा भी मिलेगी। लच्छु महाराज भी किसी ज़माने में भाव बहुत ही सुन्दर बताते थे। गुज़रे हुए ज़माने में कभी-कभी उनके और उनके भाई शंभू महाराज के बीच में प्रतियोगिता का अभिनय भी हंसते-खेलते हो जाता था। बिरजू महाराज को इस मामले में लच्छू महाराज ऐसे अनुभवी और प्रतिभा सम्पन्न मार्गदर्शक आसानी से मिल सकते हैं।

लखनऊ के कथक घराने के प्रमुख शिष्यों में जितना नाम सितारा देवी का है उतना और किसी का नहीं। आधुनिक युग में बाहर के देशों में वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रतिष्ठित घराने की राजदूत रही हैं। उन्होंने बाहर के देशों के कथक नाच का नाम बहुत फैलाया। यह इसी घराने की शिष्या हैं और जो कुछ विद्या उनको मिली वह इसी घराने से मिली। वह इस बात को बार-बार बड़े विनीत भाव से दोहराती हैं। यह उनकी महानता है। सितारा देवी ने कथक नाच के गौरव और सम्मान को अपने नृत्य के चमत्कार से बहुत ऊंचे स्थान पर बिठाया। उनका अपना नाच इस घरानेदार नाच की शोभा है। एक विशेष ढंग से उन्होंने कथक नाच की शानदार व्याख्या की। महफिल की चारदीवारी से निकाल कर उन्होंने कथक नाच को और नृत्य-शैलियों की तुलना में मंच का विजेता बनाया और हजारों दर्शकों को इस नाच का प्रशंसक और भक्त भी बनाया। यह कोई मामूली बात नहीं है। उनके नृत्य का उद्‌गम स्थान लखनऊ घराना है और उन्होंने अपनी कला के ऋण को बड़ी शोभा से चुकाया। अच्छन, लच्छू, शंभू तीनों से उन्होंने इस विद्या से प्राप्त किया। वह स्वयं इस बात को स्वीकार करती हैं। परन्तु विद्या के इस ऋण को जिस शान से उन्होंने लौटाया वह संसार के सामने जाहिर है। उनकी कथक कला का स्रोत लखनऊ है। यह तो सबको मालूम है। परन्तु बात जो मानने की है और समझने की है वह यह है कि सितारा देवी ने लखनऊ के कथक नाच का बड़ा प्रचार किया और उसको बड़ी शोभा भी दी। किसी घराने की शिष्य-परंपरा में यदि ऐसा सेवा-भाव होता है तो उस घराने की कला सदैव सुरक्षित और जीवित रहती है। ऐसी प्रेरणा ही हर कला का सबसे बड़ा प्रोत्साहन होता है। इस घराने का सौभाग्य है कि उसके प्रमुख चोटी के शिष्यों में बिरजू और सितारा भी हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत की सबसे बड़ी शर्त साधना है। जो संगीत की साधना कर सकता है वह सफल संगीतज्ञ हो सकता है। परिश्रम और प्रदर्शन दोनों के लिए उत्तम स्वास्थ्य बहुत आवश्यक है। शारीरिक बल और मानसिक स्फूर्ति दोनों आवश्यक गुण हैं चाहे वह गायन हो या वादन या नृत्य। सितारा देवी का नृत्य इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि कथक नाच की सफलता शारीरिक बल और शक्ति पर भी बहुत कुछ निर्भर है। टुकड़े और परन कलायुक्त ढंग से नहीं नाचे जा सकते यदि किसी कथक में शारीरिक बल और उत्साह न हो। अठारह घण्टे नाचना असंभव बात है। मगर सितारा ने इसको करके दिखाया और निःसन्देह अपने दर्शकों को चकित कर दिया। आधुनिक युग में यह कथक नाच का सबसे बड़ा अचंभा माना जायेगा। एक तरह से नाच के क्षेत्र में यह एक आश्चर्यजनक कार्य के समान था जो हर व्यक्ति नहीं दिखा सकता। कथक नाच के इतिहास में यह एक क्रान्तिकारी घटना के समान थी। यथार्थ में यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महान् साधना का ही प्रदर्शन था।

सितारा देवी अपने नाच से अपने दर्शकों को केवल चकित ही नहीं करतीं हैं परन्तु उन्हें आनन्द से भी, भर देती हैं। कला का आनन्द कला के चातुर्य से अलग होता है। उनकी कथक कला में चमत्कार और आनन्द दोनों विद्यमान हैं। यह गुण बहुत कम लोगों में है।

परन्तु लच्छू महाराज, स्वर्गीय शंभू महाराज, बिरजू महाराज और सितारा देवी पर टिप्पणी करने के बाद भी एक प्रश्न पूछा जा सकता है जिसका उत्तर अक्सर लोग माँगते हैं। प्रश्न है : कथक नाच का क्या भविष्य है? वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए हमें इस प्रश्न का बहुत ही संक्षेप में उत्तर देना है। नृत्य के विस्तृत क्षेत्र में भरत नाट्यम और कथाकली का भी काफी प्रचार हो रहा है। कथक नाच को अपने बल और सामर्थ्य पर ही खड़ा होना है। कथक घराने के पूर्वजों के संस्मरण से कथक को विशेष प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु इतना ही काफी न होगा। कथक की जागृति और पुनरुत्थान के लिए कथक के शिक्षकों और शिष्यों दोनों को सहयोग से इस महान् कार्य को करना पड़ेगा। इन सबका उद्देश्य यही होगा कि इस नाच के उज्जवल भविष्य का निर्माण कैसे हो। पहली बात जो आवश्यक है वह घरानेदार नाच की परंपरा को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना। ऐसा करने ही से यह कला उत्तम और दोष-रहित रह पायेगी। जैसा पहले कहा गया है, इस नाच का सबसे बड़ा खतरा अधूरी, ऊटपटांग शिक्षा है जिसका प्रचार बड़े-बड़े शहरों में अशिक्षित शिक्षक करते हैं। खेद है कि उन पर कोई अनुशासन नहीं लगाया जा सकता और उनका निरंकुश शासन बहुत जगह फैल गया है। विद्वानों को इसकी रोक-थाम के लिए कोई उपाय अवश्य सोचना चाहिए। यह तो हुई कथक नाच की अधूरी शिक्षा की बात।

जहां तक इस नृत्य के कला-प्रदर्शन की बात है वह अधिक गम्भीर समस्या है। कथक नाच के सामने एक और बड़ी समस्या है जिसको बिना सुलझाये उसकी लोकप्रिय ख्याति में बाधा पड़ जायेगी। हमें इस बात को बड़े साहस से स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए कि कथक नाच के लिए सबसे बड़ा खतरा यह है कि कहीं वह ताल और लय की मशीन वाली कसरत बनकर ही न रह जाये और कहीं उसकी असली आत्मा का अंत न हो जाये। पान और टुकड़ों पर ही यह नाच नहीं टिक सकता। ताल नहीं, भाव ही इस नाच का रहस्य और भेद है। संसार की कोई भी नृत्य शैली क्यों न हो, उसका प्राण, उसकी आत्मा, उसका जीवन, उसकी आन्तरिक शक्ति और स्फूर्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावों और कल्पनाओं के सच्चे और सूक्ष्म प्रदर्शन के सहारे जीवित रहती हैं। जीवित कला वही है जिसमें जीवित रहने की अमर शक्ति होती है। केवल शैली के चातुर्य अथवा चमत्कार ही पर कोई कला निर्भर नहीं रह सकती। कथक नाच में घुंघरू का काम उसके अभिनय की पराकाष्ठा ही है, उसका सम्पूर्ण जीवन नहीं है। तकनीकी कुशलता ही केवल किसी नृत्य कला को जीवित नहीं रख सकती। यह साररभित तत्व है और इस विषय में कथक नाच के प्रचारक, प्रेमी और समर्थक उदासीनता नहीं दिखा सकते।

यदि कथक नाच का सबसे बड़ा दोष यही है कि उसके व्यावहारिक प्रदर्शन में भावुकता की जगह कला चातुर्य और लयकारी ही अधिक स्थान ले लेते हैं तो इस नृत्य के विद्वानों और विशेषज्ञों को सावधान हो जाना चाहिए और इस दोष को दूर करना चाहिए। यह आलोचना नहीं, केवल एक सुझाव है। आधुनिक युग की रुचि, उसके दृष्टिकोण और उसकी आवश्यकताओं को देखते हुए ऐसे दोष को दूर करने में सबका सहयोग मिलेगा। जीवित कला परिवर्तनशील होती है। वह कट्टरता और रूढ़िवाद की गुलाम नहीं होती। प्रत्येक कला की शक्ति और अच्छे परिवर्तन को उदारता से स्वीकार करने ही में होती है। ऐसा करने में मूल सिद्धान्तों का परित्याग नहीं होता। उचित परिवर्तन उन्नति में कोई बाधा नहीं डालता। कथक नाच के घरानेदार विद्वान् जब इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो वह इसी नतीजे पर पहुंचेंगे कि कथक की इस आलोचना से निराश और भयभीत न होकर इस प्रकार के दोष को दूर करने ही में कथक की आधुनिक समाज में पूर्ण सफ़लता है। वह इस बात को सुलझाने में न तो तटस्थ और न उदासीन हो सकते हैं। इस विषय में किसी भी प्रकार की निष्क्रियता घातक होंगी। कथक नाच को समय के साथ अपनी मौलिक प्रतिभा के साहस के सहारे ही चलना है। ऐसा करने में कथक के सिद्धान्तों का परित्याग नहीं, समर्थन ही होगा।

कथक नाच हिन्दुस्तानी संगीत की परंपरा से सम्बन्धित ही नहीं है, उसके अन्तर्गत भी है। उसकी रूपरेखा हिन्दुस्तानी संगीत के मूल सिद्धान्तों पर ही निर्भर है। उसने अपनी परम्परा की विचारधारा को उसी के सहारे स्थापित किया है। गायन और वादन की व्यापक कला के सहारे ही कथक की प्रगतिशील कला ने पिछले सौ वर्षों में अपना आधुनिक रूप धारण किया है। उसकी आत्मा में हिन्दुस्तानी संगीत की अमर आत्मा की प्रतिध्वनि अब तक सुनाई देती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय छः

संगीत–शिक्षा, संगीत का व्यापक प्रचार

आधुनिक संगीत शिक्षा

इस युग में हिन्दुस्तानी संगीत की आधुनिक शिक्षा–पद्धति पचास-साठ वर्षों ही से प्रचलित हुई है। यह शिक्षा-पद्धति हिन्दुस्तानी संगीत के व्यापक प्रचार का एक साधन मात्र है। इस प्राचीन कला की जागृति से इसका कोई विशेष संबन्ध नहीं है। प्रचार और जागृति में बड़ा अंतर है। हम हिन्दुस्तानी संगीत के व्यापक प्रचार के युग में रह रहे हैं। यह संगीत जो पहले अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था अब उस उच्च शिखर पर विराजमान नहीं है। प्रचार की दृष्टि से सामान्य रूप से यह संगीत उन्नति की दिशा की ओर जा रहा है। परन्तु जहां तक उसकी प्राचीन कला के चमत्कार का संबन्ध है और जहां तक उसकी आश्चर्य में डालने वाली विलक्षण प्रतिभा की बात है वह अब अपने पहले के ऊंचे सांस्कृतिक स्तर पर नहीं है और यह उसका एक तरह से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवनति काल ही है। आज के संगीत की तुलना पहले के संगीत से करने में हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं। जिस पहले के संगीत की बात हम कर रहे हैं न तो वह शारंगदेव के समय का संगीत था और न वह तानसेन युग का संगीत था। हम इतने पीछे नजर नहीं दौड़ा रहे हैं। यहां पर साठ-सत्तर वर्ष पहले के संगीत ही को याद करके हम ऐसी तुलनात्मक समीक्षा कर रहे हैं। जिसको हम हिन्दुस्तानी संगीत की जागृति कहते हैं वह उसका व्यापक प्रचार है जिसमें हमें मध्य श्रेणी के लोगों का उत्साह भी सामूहिक रूप में दिखाई देता है। इस सामान्य उन्नति और आम प्रचार के युग में हम देखते हैं कि अब यह संगीत राजों और रईसों के मनोरंजन का साधन ही नहीं है परन्तु शिक्षित मध्यश्रेणी समाज का मनोरंजन भी बन गया है। अब तो यह आम जनता के आनन्द का साधन भी बन गया है।

यह मानना पड़ेगा कि संगीत के क्षेत्र का अधिक विस्तार हो गया है और श्रोतागण की संख्या भी बढ़ गई है। यह संगीत के व्यापक प्रचार ही का फल है। संगीत के लिए लोगों में उत्साह भी बहुत बढ़ गया है। इनमें से कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनमें संगीत के लिए विशेष रुचि है और उसको सीखने के लिए उनमें थोड़ी-बहुत प्रतिभा भी है इनमें भी कुछ ऐसे लोग होते हैं जो बाकायदा इस प्राचीन शास्त्रीय संगीत को किसी ऊंचे गुरु या उस्ताद से सीखते हैं। परन्तु उनकी यह शिक्षा आधुनिक संगीत-शिक्षा की पद्धति के अनुसार नहीं होती। वह पुरानी शिक्षा अथवा तालीम के नियमों का ही पालन करते हैं। मगर यह कुछ थोड़े लोग ही कर पाते हैं जिनको कोई विशेष प्रकार की लगन होती है। आम तौर से लोग आजकल की संगीत-शिक्षा की नई, आधुनिक पद्धति ही का पालन करते हैं। और यह अब उसके व्यापक प्रचार का उपयुक्त साधन भी बन गई है।

तो यह मानना पड़ेगा कि हिन्दुस्तानी संगीत की आधुनिक शिक्षा-पद्धति पुरानी शिक्षा-पद्धति की प्रतिक्रिया है और उसकी विरोधात्मक भावना को हम भुला नहीं सकते। जिसको पुराने लोग "तालीम" कहते थे उसके सिद्धांत कुछ और थे। इस तालीम में प्राचीन शिक्षा का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण था। उसका अर्थ यही था कि एक गुरु या उस्ताद के कुछ विशेष तीन या चार शिष्य ही होते थे, ज्यादा नहीं जिन्हें वह संगीत की पूरी शिक्षा देता था। ऐसे गुरु अथवा उस्ताद के पास बीस छात्रों की कक्षा नहीं होती थी। व्यक्तिगत ढंग से वह इतनी बड़ी कक्षा का कुछ भला नहीं कर सकता था। उसका कारण यह है कि संगीत एक विशेष प्रकार की कला है और न वह इतिहास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और न भूगोल। आधुनिक संगीत शिक्षा के समर्थक इस बात को नहीं मानते। उनका कहना है कि आजकल के प्रजातांत्रिक समाज में प्रत्येक नागरिक को पूरा हक़ है कि वह किसी भी कला को सीखे जिसके लिए उसकी अपनी प्रेरणा हो अथवा रुचि हो चाहे वह चित्रकारी हो या मूर्तिकला या शिल्पकला या संगीत। इसलिए आजकल की संगीत-शिक्षा में पुराने गुरु-शिष्य संबन्ध के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। आधुनिक पद्धति का उद्देश्य संगीत का व्यापक प्रचार है, पुरानी कला की परंपरागत जागृति नहीं है। इस अंतर को हम यदि ध्यान में रखें तो हम पुरानी पद्धति और नई पद्धति की विशेषताओं को अलग-अलग समझ सकते हैं। मगर यह भी याद रखना जरूरी है कि संगीत ललित कला है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

इस आधुनिक पद्धति के प्रथम अन्वेषक पंडित विष्णु दिगंबर थे। उन्होंने ही पहली वार यह सोचा कि संगीत-प्रचार और संगीत-शिक्षा दोनों साथ-साथ चलना चाहिए। जैसे-जैसे लोगों में संगीत का सामान्य ज्ञान बढ़ेगा और उनकी रुचि की उन्नति होगी वैसे-वैसे संगीत प्रचार और विस्तृत होता चला जायेगा। उनका ध्येय गायक ही बनाने का नहीं था। यह उनका प्रधान उद्देश्य नहीं था। उनका लक्ष्य था संगीत के शिक्षकों को तैयार करना जिससे संगीत के सामान्य ज्ञान में वृद्धि हो। संगीत-प्रचार के लिए ऐसी संगीत-शिक्षा सबसे अधिक आवश्यक थी। जैसे निरक्षरता को दूर करने के लिए निम्न श्रेणी के अनपढ़े लोगों को पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है कि वह अपने आत्मिक बल पर खड़े होकर आगे बढ़ें और उन्नति करें, इसी तरह जब मध्य श्रेणी के लोगों को संगीत की शिक्षा मिलेगी तो संगीत का प्रचार और बढ़ेगा। इसलिए संगीत-शिक्षा इस व्यापक प्रचार के लिए अनिवार्य साधन थी। शिक्षित वर्ग के लोग संगीत की शिक्षा पाकर दूसरों को भी संगीत सीखने का उचित प्रोत्साहन देंगे और इस तरह संगीत की रुचि बढ़ती चली जायेगी। यह बहुत हद तक ठीक उतरा। जैसे राजनीति के क्षेत्र में राष्ट्रीय आन्दोलन पहले मध्य श्रेणी के लोगों को आकर्षित करता है और उनका सहयोग प्राप्त करता है, उसी प्रकार इस संगीत के नये आन्दोलन ने सबसे पहले शिक्षित समाज ही को आकर्षित किया और उसकी सहानुभूति और उसके नैतिक साहस को भी जीता। इस संगीत-प्रचार की लोकहित और जनकल्याण की भावना ने लोगों को प्रभावित किया और उन्हें ऐसा लगा कि यह प्रचार सार्वजनिक हित के लिए ही हो रहा है। इस प्रचार की इस प्रेरणा ने धीरे-धीरे बहुमत को अपने साथ ले लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु इस संगीत-प्रचार की सफलता का एक और विशेष कारण था। लोगों को किसी तरह यह विश्वास हो गया कि संगीत की कला के क्षेत्र में यह एक प्रकार का राष्ट्रीय आन्दोलन है जिसका ध्येय केवल प्राचीन संगीत की रक्षा करना है और उसे अशिक्षित, पेशेवर संगीतज्ञों के निरंकुश शासन से छुटकारा देना है और संगीत की पवित्र आत्मा को कलंकित होने से भी बचाना है। "संगीत को पेशेवरों के बन्धनों से मुक्त करें" वाला नारा संगीत की नई स्वतन्त्रता का नारा बन गया। जैसे सारे देश को एक विदेशी साम्राज्य की गुलामी से बचाना था उसी तरह देश के प्राचीन संगीत को पेशेवरों की गुलामी से बचाना था। संगीत की इस नई राष्ट्रीय प्रेरणा ने लोगों के मनो को वश में कर लिया था। वह संगीत की रक्षा के नारे को पूरी शक्ति से दोहराने और चिल्लाने भी लगे। इस प्रकार समकालीन राष्ट्रीय आन्दोलन के सार्वजनिक उत्साह की सहायता से इस संगीत-प्रचार ने एक नये सांस्कृतिक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। इस प्रचार ने समय की समकालीन प्रवृत्तियों से बहुत लाभ उठाया।

इस प्रचार ने जोर इसीलिए पकड़ा कि संगीत की मुक्ति की समस्या लोगों के सामने सबसे बड़ी समस्या थी। गुलामी की जंजीरों से राष्ट्र का छुटकारा पूरे देश की स्वतन्त्रता का संग्राम बना। इसी ऐतिहासिक प्रसंग में संगीत का छुटकारा भी आवश्यक हो गया। बड़े मौक़े से ठीक समय पर इस संगीत का प्रचार का आरम्भ हुआ। सारे देश का मनोवैज्ञानिक वातावरण ऐसे सांस्कृतिक आंदोलन के लिए उपयुक्त था। इसी कारण इस प्रचार ने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आन्दोलनों का रूप भी धारण कर लिया। इसको हम घटनाओं की अनुरूपता ही कहेंगे। यह किसी दूरदर्शी की पहले की सूझ नहीं थी और न वह किसी दिव्य, अलौकिक बुद्धि की भविष्यवाणी थी। यह केवल घटनाओं का आश्चर्यजनक मेल और संगम था। संगीत-प्रचार के लिए इससे अधिक और कोई दूसरा सुनहरा अवसर नहीं था।

परन्तु यह मानना पड़ेगा कि इस संगीत-प्रचार के प्रोत्साहन का स्रोत पंडित विष्णु दिगम्बर की आन्तरिक प्रेरणा ही थी और उसके साथ उनका आत्मविश्वास भी था। बिना इस नैतिक आत्मविश्वास और असाधारण साहस के वह इस काम का बीड़ा न उठाते। उनकी आन्तरिक प्रेरणा ही उनका बल बन गयी। यहीं पर उनके संगीत-प्रचार की नई शक्ति का जन्म होता है। संगीत की परिस्थिति पर दृष्टि डालकर उन्होंने मालूम कर लिया था कि ऐसा प्रचार कितना आवश्यक है। उनकी प्रबल इच्छा यही थी कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जनता इस प्राचीन संगीत के बारे में कुछ जाने और उसे सीखे भी। उनके लिए यह प्रचार कोई रोजगार या धन्धा नहीं था। उन्होंने इसका आरम्भ केवल इसीलिए किया क्योंकि वह इस प्राचीन कला के मूल्य को जानते थे और उसकी परंपरा के अनुयायी और भक्त भी थे। अपने व्यक्तिगत अनुभव से ही उन्होंने संगीत के महत्व को समझा था। उनके संगीत-प्रेम और उनकी संगीत-भक्ति ही ने उन्हें इस संगीत-प्रचार की प्रबल प्रेरणा दी थी। वह बहुत पहले से इस पुनीत कला के दास हो चुके थे। इसलिए उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि पढ़ा-लिखा शिक्षित समाज भी इस संगीत के बारे में कुछ जाने और उसे थोड़ा-बहुत सीखे भी।

वह स्वयं संगीतज्ञ थे और वह संगीत के सूक्ष्म भेदों को जानते थे। संगीत की शिक्षा पंडित विष्णु दिगम्बर ने बालकृष्ण बुआ इचलकरंजिकर (1849-1928) से प्राप्त की। उनके सहपाठी अथवा गुरुभाई अनन्त मनोहर जोशी थे। जैसे गुरू को उन्होंने चुना उससे पता चलता है कि संगीत की गायन-कला में उनका कितना ऊंचा आदर्श था। बालकृष्ण बुआ ग्वालियर के हद्दू खां की शिष्य-परंपरा में थे और वह ग्वालियर की ख्याल-गायकी के प्रतिनिधि और विशेषज्ञ भी थे। उन्होंने ग्वालियर के मशहूर उस्तादों में ख्याल की शिक्षा प्राप्त की थी। वह बड़े ऊंचे और अनुभवी संगीतज्ञ थे। उन्होंने ऐसे प्रतिष्ठित घराने से इसलिए शिक्षा ली क्योंकि ग्वालियर घराना ख्याल-गायकी का प्रमुख घराना था। वह ख्याल की शैली का उद्गम स्थान था। नत्थन पीर बख्श बड़े, मुहम्मद खां, हद्दू खां, हस्सू खां, नत्थू खां, निसार हुसैन और रहमत खां इत्यादि ग्वालियर के धुरन्धर चोटी के गायक थे जिनसे बहुत से महाराष्ट्र के लोगों ने शिक्षा प्राप्त की थी।

विष्णु दिगम्बर महाराष्ट्र के थे और उनके गुरु बालकृष्ण बुआ ही ने सारे महाराष्ट्र में ग्वालियर की शानदार गायकी का प्रचार किया। उनकी यही इच्छा थी कि ग्वालियर की सर्वश्रेष्ठ गायकी का प्रचार वह महाराष्ट्र में करें। वह अपने इस महान् कार्य में पूरे सफल हुए। उन्होंने लोगों का ध्यान शास्त्रीय संगीत की ओर आकर्षित किया और अपने बहुत से शिष्यों को ग्वालियर की ख्याल-गायकी की उत्तम शिक्षा दी। संगीत-संसार ने उन्हें हर तरह से सम्मानित किया और उनके प्रति लोगों की बड़ी गहरी श्रद्धा थी।

ऐसे धुरन्धर गायक के शिष्य होकर यह संभव नहीं था कि पण्डित विष्णु दिगम्बर संगीत-प्रचार में ऐसी तत्परता से जुट न जाते। संगीत-प्रचार की यह शुद्ध प्रेरणा उनको अपने गुरु ही से मिली थी। जिस तरह बालकृष्ण बुआ ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्वालियर के विद्वान् मुसलमान गायकों से गायन सीखा और उनके प्रति उनकी हार्दिक श्रद्धा जीवन भर रही, उसी तरह पण्डित विष्णु दिगम्बर ने भी कभी हिन्दू-मुस्लिम मतभेद को नहीं जाना और वह भी श्रेष्ठ मुसलमान गायकों का पूर्ण आदर करते थे। साम्प्रदायिकता की भावना उन्हें छूकर नहीं गई थी। कला को जात-पांत के तराजू पर उन्होंने कभी नहीं तौला। और जिस तरह उनके गुरु ने ग्वालियर के शास्त्रीय संगीत का प्रचार पूरे महाराष्ट्र में किया इसी तरह उन्होंने भी संगीत का आम प्रचार कराने का बीड़ा उठाया। संगीत-सेवा की यह प्रेरणा उन्हें अपने गुरु के समान महानुभावों ही से मिली थी.। वह अपने पूरे सामर्थ्य से इस काम में जुट गये। उन्होंने पीछे मुड़ कर फिर नहीं देखा।

संगीत की इस नयी शिक्षा-पद्धति में कुछ बातें आवश्यक थीं। पहली बात तो यह थी कि यह नई शिक्षा पुरानी शिक्षा अथवा तालीम के विरोध में थी और उसकी प्रबल प्रतिक्रिया ही थी। संगीत के व्यापक प्रचार के आयोजन में पुरानी तालीम काम में नहीं आ सकती थी। "आओ तुम सब सीखो-संगीत" वाला आम निमंत्रण एक जोशीला नारा भी बन गया था। इसका अर्थ यह था कि संगीत अब संगीतज्ञों के ऐक्याधिकार की चीज़ नहीं थी। उसको सीखने का अधिकार अब सबको था। जैसे निरक्षर आदमी साक्षर बन जाते हैं उसी तरह जो संगीत बिल्कुल नहीं जानते थे अब उसे ठीक-ठीक जान सकते थे। संगीत-शिक्षा की इस आम दावत ने आम जनता के ध्यान को आकर्षित किया। संगीत अब सबके लिए हो गया था। वह किसी विशेष वर्ग की जायदाद नहीं थी। संगीत का छिपा हुआ रहस्य अब सब जान सकते थे। उसके भेदों का पता अब सबको हो सकता था। उसके तिलस्मी रहस्य का पर्दा संगीत-प्रचार ने अचानक उठा दिया था। अब उसका दर्शन सब कर सकते थे। वह अब अदृश्य और अगम्य नहीं था। संगीत का भगवान अब दरिद्रनारायण बन गया था। वह अब आम जनता का इष्ट था। उसकी अभेद्यता का भेद अब खुल गया था। संगीत सीखने में अब अयोग्यता का अभियोग किसी पर नहीं लगाया जा सकता था। संगीत का राज्य अब प्रजातान्त्रिक राज्य था। संगीत अब किसी की बपौती नहीं थी। उसे अब सब सीख सकते थे।

संगीत के दृष्टिकोण में इस परिवर्तन को हम मामूली परिवर्तन नहीं मान सकते। संगीत के प्रति लोगों की पहली सी भावना बिल्कुल बदल गई। संगीत का रहस्य अब खुलता दिखाई पड़ा था। इस शिक्षा को आसान बनाने के लिए पण्डित विष्णु दिगम्बर ने सरल स्वर-लिपि और सरल संगीत की पुस्तकों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपना शक्तिशाली हथियार बनाया। संगीत-शास्त्र, संगीत की छपी पुस्तकें और संगीत की स्वर-लिपि इन सब चीजों का बड़ा गहरा प्रभाव संगीत के प्रेमियों और जानने वालों पर पड़ता है। आम जनता के लिए यह अलौकिक चमत्कार होते हैं। स्वर-लिपि एक अद्‌भुत आविष्कार ही समझा जाता है। संगीत का गहरा ज्ञान, उसकी गूढ़ समझ और संगीत-शास्त्र और आधुनिक स्वर-लिपि, यह सब मिलकर लोगों को चकित कर देते हैं और उन्हें बड़े आश्चर्य में डाल देते हैं। इन बातों को देखकर किसी संगीत के विद्वान् के प्रति एक नई श्रद्धा का जन्म भी होता है। आंखों में इन चमत्कारों से चकाचौंध सी पैदा हो जाती है। यही कारण था कि मुरादाबाद के सुविख्यात गायक नजीर खां विद्वत्ता के ऐसे अद्‌भुत प्रदर्शन को देखकर स्वर्गीय भातखण्डे के शिष्य हो गये थे। यह कहने से हम भातखण्डे जी के पाण्डित्य का कम मूल्य नहीं लगा रहे हैं। हम केवल वह बताना चाहते हैं कि आधुनिक संगीत-प्रचार और संगीत-शिक्षा के नये साधनों के चमत्कारों और आविष्कारों का कितना बड़ा गहरा प्रभाव लोगों पर पड़ता है।

संगीत ऐसी अलौकिक कला को कौन नहीं सीखेगा अगर मालूम हो जाये कि संगीत की स्वर-लिपि सहित किताबों की सहायता से हम भैरवी, आसावरी, बागेश्वरी और दुर्गा ऐसी रागों को आसानी से किसी शिक्षक की मदद से सीख सकते हैं? संगीत के अशिक्षित उस्तादों के चंगुल से बचने का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता था? संगीत विद्या की इतनी लम्बी यात्रा को ऐसे छोटे और आसान रास्ते से पूरा कर लेना कोई मामूली चीज नहीं थी। इतनी बड़ी और महान् कला को ऐसी सुगमता से सीख लेना चमत्कार नहीं था तो और क्या था? इतनी बड़ी पहेली को इस आसानी में बूझ लेना आश्चर्य कर्म नहीं था तो क्या था? लोगों ने मन में सोचा यदि हम आधुनिक संगीत-शिक्षा के साधनों से संगीत को आसानी से सीख सकते हैं तो इससे अच्छी बात और कौन सी हो सकती है?

इसके पहले कि हम कुछ और इस विषय में कहें हमें जानना चाहिए कि यह प्रतिक्रिया पुरानी पद्धति के विरोध ही में आरम्भ हुई थी जिसके बारे में लोगों को अक्सर केवल एक अधूरा सा ज्ञान ही होता था। यदि हमारी आधुनिक संगीत-शिक्षा पुरानी 'तालीम' का विरोध करती है और उसके प्रतिकूल है जो यह जानना चाहिए कि उस तालीम का सैद्धान्तिक आधार क्या था और वह किन विशेष नियमों का पालन करती थी और किन सिद्धान्तों पर निर्भर थी। सबसे पहली बात जो हमें जानना चाहिए वह यह है कि 'तालीम' सैद्धांतिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढंग से घरानों ही से सम्बन्धित थी। आजकल की संगीत-शिक्षा का कोई भी सम्बन्ध घरानेदार संगीत से नहीं है। यथार्थ में वह तालीम कि एक प्रतिक्रिया ही है जिसमें घरानेदार संगीत के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। पुरानी संगीत-शिक्षा के तत्वों को समझने के लिए हमें दो शब्दों को ध्यान में रखना चाहिए, 'तालीम' और 'रियाज़'। घरानेदार संगीत की शिक्षा को ही तालीम कहा जाता था। उस शिक्षा को सफल बनाने के लिए जो प्रतिदिन का अभ्यास होता था या मेहनत होती थी उसको 'रियाज़' कहते थे। अभी भी यह शब्द प्रयोग में लाये जाते हैं और उनका अर्थ यही होता है। यह तालीम यथार्थ में उत्तम और दोषरहित होती थी। इसी के द्वारा शिक्षक विद्यार्थी को राग या किसी बंदिश की तालीम देता था। मगर इस शिक्षा में जो सुन्दर भावना थी उसका कोई दूसरा उदाहरण संगीत में कहीं और नहीं है। यह था 'गुरु-शिष्य' अथवा 'उस्ताद-शागिर्द' सम्बन्ध जो शुद्ध और पवित्र होता था और जिसमें कोई व्यक्तिगत लाभ या स्वार्थ का कोई भी भाव नहीं होता था। गुरु की हार्दिक सहानुभूति और शिष्य की श्रद्धा और उसका सेवा-भाव इस प्रकार के सूत्र थे जो दोनों को एक दूसरे से बांध देते थे। गण्डा बांधने और बंधवाने की रस्म में भी एक शुद्ध धार्मिक भावना होती थी। गुरु बाध्य था कि अपनी विद्या को अपने शिष्यों को भरपूर दे और शिष्य का धर्म था कि उस विद्या को स्वीकार और ग्रहण करने के लिए वह स्वयं एक सुपात्र बने।

इस पवित्र पारस्परिक सम्बन्ध में प्राचीन आश्रम की शिक्षा की पवित्र भावना का अंश भी था। दर्शन, धर्म, अध्यात्म, ध्यान साधना, कला, ज्ञान, गूढ़ विद्या, इन सब की शिक्षा इसी प्रकार गुरु शिष्य को देता था और शिष्य उसका अध्ययन और मनन करता था। यही थी प्राचीन काल की शिक्षा-पद्धति। संगीत के गुरुओं और उस्तादों ने इसी प्राचीन प्रथा का अनुकरण किया था। शिक्षा का यह ऊंचा आदर्श प्राचीन था। मगर संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में शायद आधुनिक युग की आवश्यकताओं की पूर्ति इस पुरानी पद्धति से नहीं हो सकती थी। या फ़िर घरानेदार तालीम के विरोध ही में इस नई संगीत-शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। जो कुछ भी इसका कारण रहा हो, नई संगीत-शिक्षा पुरानी संगीत-शिक्षा के बिल्कुल विपरीत थी और उसके विरोध की ही एक प्रतिक्रिया थी।

परन्तु यहां पर यह कहना आवश्यक है कि संगीत-शिक्षा का यह काम पण्डित विष्णु दिगम्बर ने सबसे पहले लाहौर में खोला और इस सम्बन्ध में संगीत के एक विद्यालय को भी स्थापित किया। बाद में इस तरह के संगीत-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यालय और भी शहरों में खुल गये और पूना में उनका एक अखिल-भारत केन्द्र स्थापित हो गया। इसके पहले कि हम कुछ और इस विषय में कहें एक और बहुत जरूरी बात है जिस पर हमको ध्यान देना चाहिए। पण्डित विष्णु दिगम्बर ने संगीत-शिक्षा का सारे देश में व्यापक आयोजन करते हुए एक और महान् कार्य किया जिससे उनकी ख्याति को चार चांद लग गये। उन्होंने कुछ अपने खास शिष्य तैयार किये जो बाद में मशहूर गायक भी हो गये। हम इसको उनका घराना तो नहीं कह सकते परन्तु यह सच है कि विष्णु दिगम्बर मत के मानने वाले यह विशेष शिष्य देश के सामने गायकों के रूप में भी आये। यह वह सब थे जिन्होंने उनकी संगीत-शिक्षा और उनके संगीत-प्रचार में पूरा हिस्सा लिया था। इन परिश्रमी और प्रतिभाशील व्यक्तियों को पण्डित पलुस्कर ने शिक्षा देकर तैयार किया था। भारतवर्ष उनको संगीत का महान् विद्वान् और प्रचारक ही जानता है। संगीत-प्रचार का ऐसा महान् कार्य और किसी ने इस ढंग से नहीं किया था। परन्तु यह कहना ग़लत न होगा कि उनकी संगीत-शिक्षा का एक और फल बहुत अच्छा हुआ। उन्होंने अपने शिष्यों को केवल शिक्षक ही नहीं बनाया। उनमें से कुछ को उन्होंने गायक भी बनाया। उनके जीवन-काल में इनमें से कुछ को थोड़ी-बहुत ख्याति भी मिली थी।

इस तरह एक घरानेदार गायक की तरह उन्होंने अगर अपना अलग घराना नहीं कायम किया तो अपनी शिष्य-परंपरा और अपना मत दोनों को स्थापित किया। भारतवर्ष के हर बड़े शहर में एक-आध गंधर्व संगीत-विद्यालय अवश्य होता है। इन विद्यालयों से भी पण्डित विष्णु दिगम्बर का नाम बहुत हुआ। परन्तु एक गायक की हैसियत से उनका सबसे बड़ा काम था गायक तैयार करना। इस विशेष दिशा में उनका काम बड़ा महत्व रखता है। आमतौर से संगीत-प्रचार से केवल संगीत-शिक्षक ही बनते हैं। परन्तु उन्होंने इस बात को प्रमाणित कर दिया कि उनकी व्यक्तिगत शिक्षा से कुछ लोग गायक भी बन सकते हैं। संगीत-शास्त्र के विद्वानों और संगीत-प्रचारकों को अक्सर यह चुनौती दी जाती है कि वह अपने शिष्यों को शिक्षक ही न बनाकर गायक और वादक भी बनायें। पण्डित विष्णु दिगम्बर ने इस चुनौती को स्वीकार करके यह साबित कर दिया कि वह गायक हैं और इसलिए वह गायक भी तैयार कर सकते हैं। उन्होंने जिन शिष्यों को सफल गायक बनाया उनमें से कुछ ने काफ़ी नाम भी कमाया और अपने गुरु का मान बढ़ाया। उनके इस बड़े काम के महत्व को हम केवल जानते ही नहीं हैं परन्तु उसकी प्रशंसा भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं। यह गायक-शिष्य अपने गुरु के मत को किसी घराने से कम महत्वपूर्ण नहीं समझते हैं। परन्तु उसको एक घराने से भी कहीं अधिक आदर देते हैं और उसके प्रति उनकी श्रद्धा अटल है।

पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर

यह पण्डित विष्णु दिगम्बर के प्रमुख शिष्यों में थे और बहुत प्रतिभाशील गायक थे जिनको अपने श्रोतागण के बीच में बहुत ख्याति मिली थी। इतनी ख्याति मिलने पर भी और दिगम्बर जी के प्रमुख शिष्यों में होते हुए भी वह अपने गुरु जी की गायकी नहीं गाते थे। उनके गुरू ने जिन बालकृष्ण बुआ से संगीत सीखा था वह ग्वालियर की गायकी ही में निपुण थे। इस कारण उन्होंने इसी गायकी में ख्याल की शिक्षा पाई थी। इस ख्याल की प्रतिष्ठित गायकी की कुछ विशेषतायें हैं जो थोड़ी-बहुत किसी सीखे हुए शिक्षित गायक के गायन से प्रत्यक्ष हो जाती है चाहे वह उच्च श्रेणी का गायक हो या मध्य श्रेणी का। इन्हीं विशेषताओं से यह गायकी पहचानी जाती है। एक मामूली सी पहचान इस गायकी की यह है कि गायक ख्याल की रचना के स्थायी और अन्तरे के शब्दों को किसी विशेष राग के स्वरों में किसी विशेष ताल की मात्राओं में बंधे हुए ठीक-ठीक नपे-तुले ढंग से कलायुक्त और प्रभावशाली शैली में अपने व्यक्तित्व के साथ कहे। ग्वालियर गायकी का कोई भी निपुण और अनुभवी गायक चाहे उसका कण्ठ कैसा भी हो इस प्रकार अपनी बन्दिश को गाने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार के गायन में एक प्रकार का ठहराव और संयम होता है जिसके कारण स्थाई और अन्तरा कहने ही में श्रोता को आनन्द आता है। इन शब्दों को स्वर और ताल में सीधा कलायुक्त ढंग से कहने ही में इस गायकी की रूपरेखा मिल जाती है। इसी ग्वालियर की गायकी को पण्डित विष्णु दिगम्बर ने अपने गुरु बालकृष्ण बुआ से सीखकर अपने कुछ विशेष होनहार शिष्यों को सिखाया था।

पण्डित ओंकारनाथ के गायन में ग्वालियर गायकी का यह सैद्धान्तिक आधार नहीं था। श्रोताओं ने उनसे किसी रचना के स्थाई और अन्तरे के पूरे शब्द ताल में इस ढंग से कभी नहीं सुने। यदि राग देसी में उनकी रचना के पहले शब्द हैं "कदम की छैंय्या" तो श्रोता को यह नहीं मालूम कि इस रचना के और क्या शब्द हैं। वह दो-तीन शब्दों ही को लेकर राग से खेलते थे और पूरी रचना नहीं गाते थे। इस कारण जिस ताल में कोई बन्दिश बंधी होती थी उसका भी कोई आनन्द उसके गाने में नहीं आता था। शायद वह भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क़िराना घराने के गायकों की तरह पूरा स्थाई और अन्तरा कहना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु यह तो उनकी व्यक्तिगत भावना थी। उसका कोई सम्बन्ध उस गायकी से नहीं था जिसको उन्होंने अपने पूज्य गुरु विष्णु दिगम्बर जी से सीखा था। उनको गर्व था कि वह ऐसे विद्वान् और अनुभवी गुरु के शिष्य थे जिनके प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी। तो प्रश्न उठता है कि अपने गुरु की ग्वालियर ख्याल-शैली के अनुशासन को उन्होंने क्यों नहीं माना? यह तो नहीं माना जा सकता कि उनकी गुरु-भक्ति और उनके सेवा-भाव में कोई कमी थी अथवा वह अपने गुरु के पीछे बैठकर तंबूरा छेड़ने में संकोच करते थे। वह अपने पूज्य गुरु की गायकी और उनकी गायकी की ख्याति के क़ायल अपने दिल में तो अवश्य थे। यह कैसे कहा जा सकता है कि यह भी उनका एक नाटकीय अभिनय या ढोंग था?

तो फिर यही कहना ठीक होगा कि वह अपनी आवाज और अपनी प्रतिभा पर इतने अधिक निर्भर थे और उनको अपनी गायन-कला पर इतना भरोसा था कि वह किसी गायकी के अनुशासन का पालन करने को तैयार नहीं थे और स्वतंत्र रूप से मनमानी करते थे। इसको वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। वह अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा से इतने प्रभावित थे कि वह उसके निरंकुश शासन को असहनीय नहीं समझते थे। मंच पर बैठकर वह एक छोटा सा व्याख्यान भी देते थे और श्रोतागण को सम्बोधित करके उनसे अपनी बात भी कहते थे। इस तरह एक मूक वार्तालाप उनमें और उनके श्रोताओं के बीच में होता था जिसके माध्यम के द्वारा एक मृदुभाषी वक्ता होने की हैसियत से वह उनसे एक व्यक्तिगत नाता भी जोड़ लेते थे। उनकी सात्विक वेश-भूषा, उनका नाटकीय अभिनय, उनकी सुरीली और भावुक आवाज, उनकी व्यक्तिगत भावुकता के प्रत्यक्ष और सूक्ष्म संकेत, उनका अव्यवस्थित गायन स्वरों का अति भावुक प्रसारण उनके चेहरे की आकृति यह सब मिलकर उनके श्रोताओं की आंखों और कानों पर बड़ा जबरदस्त प्रभाव डालते थे। वह गायक नहीं थे, मंच पर बैठे एक जादूगर के समान थे जो अपने पिटारे से नये नये अद्भुत चमत्कार निकाल कर अपने श्रोताओं को चकित करते थे।

यदि वह राग मियाँ की टोड़ी किसी अखिल-भारत संगीत-सम्मेलन में गाते थे तो कभी-कभी अपने व्याख्यान में भावुकता के आवेग में आकर श्रोताओं से कहते थे "यह राग मेरी स्वर्गीया अर्धांगिनी को बहुत प्रिय थी।" ऐसे भावुक शब्दों का गहरा प्रभाव श्रोताओं पर बहुत पड़ता था। पण्डित ओंकारनाथ की व्यक्तिगत धारणा थी कि गायक, कवि अथवा नाटक का पात्र मंच पर एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे व्यक्तित्व का जामा पहन लेता है जिसका उसके अपने असली व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह उसका बनावटी वेश होता है जिसे वह अपने अभिनय के अन्त हो जाने पर उतार कर उसे रख देता है। यदि वह मंच से गाये गये गायक के गायन को समय के अनुसार एक भावात्मक अथवा रसात्मक प्रदर्शन अथवा अभिनय ही समझते थे तो संगीत में यह उनका व्यक्तिगत सिद्धान्त था जो उन्हें गायकी के अनुशासन से मुक्त कर देता था। एक भावुक कलाकार की हैसियत से वह इस अपनी आज़ादी का समर्थन करते थे और इस कारण पूर्ण स्वतंत्रता से मनमानी भी करते थे।

ऐसा सब होने में उनके पूज्य गुरु की शिक्षा का दोष नहीं था। पण्डित ओंकारनाथ ने अनुशासन का परित्याग करते हुए अपनी एक अलग गायकी बनाई थी जिसका सिद्धान्त था कलाकार की सीमारहित स्वतंत्रता। अपनी इस गायकी को उन्होंने और गायन-शैलियों के सुन्दर थिगड़ों और भड़कीली कतरनों से भावुकता के सुनहरे डोरों से सीकर बनाया था। औसत दर्जे के श्रोता इस सुन्दर रेशम की रज़ाई के पचरंगे अथवा बहुरंगे सौंदर्य के भेद को समझ न पाते थे। परन्तु वह श्रोता, जो कुशल और पारखी होते थे, वह इस सुन्दर मिलावट के भेद को फौरन पहचान जाते थे। स्वरों की मधुरता और मिठास में वह जीवन भर अब्दुल करीम खां की सुरीली आवाज़ की नकल करने ही में लगे रहे मगर बहुत हद तक वह असफल ही रहे। और तानों के वज़न और रोबीलेपन में वह फ़ैय्याज़ खां की नकल करते रहे। मगर इसमें भी वह असफल रहे क्योंकि उनकी तानें अधूरी रहती थीं। और उनमें बनावटी गम्भीरता और स्वाभाविक भावुकता की असंगत मिलावट होती थी। परन्तु उनके इस प्रकार के गायन से यह तो अवश्य पता चलता था कि गायन-कला में उनके क्या आदर्श थे और वह क्या काम करना चाहते थे।

परन्तु यह सब कहने के पश्चात् भी हमें इस बात को मानना पड़ेगा कि पण्डित ओंकारनाथ प्रखर बुद्धि वाले बड़े भावुक गायक थे जिनके गायन का पूरा प्रभाव उनके श्रोताओं पर पड़ता था। उनमें कल्पना भी थी परन्तु उनकी गायन-शैली इस कल्पना पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा पाती थी। गाते समय वह अपने श्रोताओं की रुचि को पूरे समय ध्यान में रखते थे और भावुकता के माध्यम ही से उन्हें वश में कर लेते थे। यहीं पर उनके गायन की अराजकता का स्रोत था। अपने गायन के अन्त में वह एक-आध भावुक भजन भी बड़ी भावुक तन्मयता से गाते थे और श्रोताओं को धार्मिक भावों और विचारों के प्रवाह में बहा ले जाते थे। "मैया मैं नहीं माखन खायो', अथवा 'जोगी मत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जा, मत जा, मत जा' यह शब्द श्रोताओं के कानों में गूंज उठते थे और उन्हें ऐसा लगता था कि मानो गायक अपनी आराधना में खोया बैठा है। और उनका गायन भक्ति-भावना ही का एक रूप था। उनके गायन की सात्विक भावना का बड़ा गहरा प्रभाव उनके श्रोताओं पर पड़ता था। मंच पर आकर वह यही दिखाते थे कि वह सरस्वती की पूजा कर रहे हैं और उनका गायन उनकी साधना और उनकी भक्ति का केवल एक साधन था। इस कारण इस अभिनय के अनिवार्य अंग उनके शब्द, उनकी वेश-भूषा, उनके आंगिक संकेत और उनका भावुक गायन हो जाता था। एक संगीत सम्मेलन में अपने गायन के पहले उन्होंने यह शर्त लगाई थी कि लोग धूम्रपान बन्द कर दें और अपनी सिगरेटें बुझा दें। मानों धुएं के दूषित वातावरण में उनकी राग के कोमल और पवित्र स्वर प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ लोगों ने अपना सिगरेट पीना बन्द कर दिया और कुछ ने छिपा-चोरी धुआं उड़ाया। जो गायक इस प्रकार सात्विक रूप धारण करता है वह अपने गायन से सभा को प्रभावित भी बहुत करता है।

पण्डित ओंकारनाथ का कण्ठ बहुत सुन्दर और सुरीला था। जब वह अपना नाटकीय अभिनय छोड़कर मन लगाकर किसी राग को गाते थे तो गायकी के हिसाब से बहुत अच्छा गाते थे। यदि एक सभ्य व्यक्ति की हैसियत से उनमें बहुत आत्म-सम्मान था और जिसको वह किसी क़ीमत पर बेचने को तैयार नहीं थे तो उसी तरह उनके गायन में भी एक प्रकार का आत्म-गौरव था जिसको वह तीव्र आलोचना के होते हुए भी सदैव सुरक्षित रखते थे। उनकी अपनी स्वतंत्रता में जिस पर वह कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते थे विवेक और तर्क की भावना भी थी। वह बता सकते थे और कभी-कभी कायल भी कर सकते थे कि उनकी गायन शैली ऐसी क्यों है। वह विद्वान थे इसमें तो कोई शंका नहीं थी। उन्होंने संगीत-शास्त्र का गहरा अध्ययन भी किया था और वह बहुत प्रतिभाशील गायक और विद्वान् भी थे। संगीत के विषय में उनकी अपनी छानबीन भी थी। उन्नीस सौ सत्ताइस के लगभग उन्होंने इटली के अनन्य शासक मुसोलनी को पूरिया गाकर सुला दिया था और बाद में अपनी प्रयोगशाला में फूलों और पत्तों पर अपने स्वरों का प्रभाव डाला था। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वह बनारस के विश्वविद्यालय के संगीत-विभाग के अध्यक्ष थे और उन्होंने वहां पर संगीत के विविध विषयों पर गहरी छान-बीन का काम भी किया। इसमें भी शक नहीं कि देश के प्रथमः श्रेणी के गायकों में उनकी गिनती थी और वह सम्मानित भी किये जाते थे। उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्म-सम्मान भी ऊँचे दर्जे का था।

यदि उन्होंने अपने गुरु की संगीत-शिक्षा के अलावा अपनी प्रतिभा को भी संगीत-सेवा में लगाया और ख्याति प्राप्त की तो उसका सबसे अधिक लाभ पण्डित विष्णु दिगम्बर की शिष्य-परम्परा की प्रतिष्ठा को ही पहुंचा। पण्डित ओंकारनाथ ने अपने ऋण को इसी सुन्दर ढंग से चुकाया। यही कारण है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भी लोग उनके संगीत के साथ उनके व्यक्तित्व को भी याद करते हैं।

विनायक राव पटवर्धन

पण्डित विष्णु दिगम्बर के सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में गायक की हैसियत से तो उन्हें काफी ख्याति मिली मगर संगीत-शिक्षक की हैसियत से देश भर में इनका बहुत नाम है। उनकी संगीत-शिक्षा का केन्द्र उनका पूना का गंधर्व महाविद्यालय है। देहली के कनाट प्लेस के औसत दर्जे के गंधर्व महाविद्यालय को देखकर, जहां संगीत की डिग्रियां बंटती हैं और जहाँ संगीत केवल परीक्षाओं के लिए सिखाया जाता है, पूना के इस संगीत विद्यालय का कुछ भी पता नहीं चल सकता। पूना के गंधर्व महाविद्यालय की संगीत-शिक्षा की ख्याति देश भर में है। भारत के कोने-कोने से छात्रों ने जाकर वहां हिन्दुस्तानी संगीत सीखा है। इसका श्रेय पटवर्धन जी ही को है। वह स्वभाव ही से संगीत के बड़े सच्चे और सहृदय, परिश्रमी शिक्षक रहे हैं। गुरु अपने शिष्यों से जाना जाता है। उनके शिष्यों में स्वर्गीय डी० बी० पलुस्कर का नाम बहुत हुआ। पटवर्धन जी ने जो गुण अपने गुरु से पाया था उस ऋण को उन्होंने डी० बी० पलुस्कर को तैयार करके लौटाया। उन्होंने और भी शिष्य तैयार किये जिनका नाम भी इधर-उधर हुआ।

गायक की हैसियत से भी उनका देश में काफी नाम हुआ। संगीत-सम्मेलनों में 'पटवर्धन व्यास' यह दो नाम अक्सर साथ सुने जाते थे। जब तक वह मंच पर गाते रहे उनके गायन को बराबर सफलता मिलती रही। उनकी गायकी सीधी-सादी, साफ-सुथरी थी और उनके गाने का प्रभाव श्रोताओं पर बहुत अच्छा पड़ता था। बहुत वर्ष हुए जब उन्होंने नाटक में अभिनय करने के अलावा, एक फिल्म में भी अभिनय किया था और राग बहार की एक रचना भी बड़े भावुक उत्साह से गायी थी। उनमें अभिनय करने की प्रतिभा भी थी। नाटक का पात्र जानता है कि किस प्रकार के अभिनय से उसके दर्शक खुश होंगे। इस अभिनय में भावुकता बड़ा काम देती है। श्री पटवर्धन जी इस तरह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बहुत काल से जानते थे। उनकी गायन-कला ने इस प्रकार की नाटकीय प्रवीणता से बहुत फायदा उठाया। वह जानते थे कि अपने श्रोताओं को वह कैसे वश में करें। उनके गाने में तैयारी भी थी। स्वर भी अच्छा लगता था और राग भी बड़े ढंग से गम्भीरता से गाई जाती थी। उनका मुस्कराता हुआ चेहरा, उनकी प्रसन्नता और उनके उत्साह का प्रतीक बन जाता था। उनकी इस सहृदयता से उनके श्रोता बहुत प्रभावित होते थे। पण्डित ओंकार की तरह वह भी श्रोतागण को वश में करना जानते थे। इसको करने के लिए उनके पास दो मंत्र थे, एक तो तराना और दूसरा भजन। तराने की "दिर दिर" की तैयारी देखकर उनके श्रोता चकित हो जाते थे और मौज में आकर तालियां भी बजाने लगते थे। पटवर्धन जी का यह मंत्र कभी नहीं चूकता था। तबले की तैयारी और ज़बान की तैयारी लोगों को आश्चर्य में डालते थे। इस दौड़ की गर्मी से लोगों के उत्साह की गर्मी बढ़ जाती थी। "दिर दिर" की तेज़ रफ्तार और तबले की "नाधिन धिन ता" की द्रुत गति मिलकर बड़ा आनन्द देते थे और श्रोता बड़ी वाह-वाह करते थे।

परन्तु उनके पास एक और अचूक मंत्र था वह उनका मशहूर भजन 'जोगी मत जा मत जा मत जा' था जिसके गाने में उनके और उनके गुरुभाई पण्डित ओंकारनाथ के बीच में कभी-कभी प्रतियोगिता की भावना भी आ जाती थी। इसका निर्णय करना कठिन हो जाता था कि इस रचना के संगीत के जन्मदाता कौन हैं। यह मानना पड़ेगा कि पटवर्धन जी ने इस भजन को सैकड़ों बार खूब गाया है और अपने श्रोताओं को प्रसन्न भी किया है। "मत जा मत जा मत जा" की द्रुत गति कभी-कभी तबला-वादक को चुनौती भी देती थी और गायक और वादक में छोटा सा युद्ध भी छिड़ जाता था जिसका आनन्द भी श्रोता लेते थे।

यह तो हुई पटवर्धन जी की मंच की सफल गायन-कला की बात। शास्त्रीय संगीत का गायक होते हुए उन्होंने भी अपने गुरु की ग्वालियर गायकी का कोई विशेष अनुकरण नहीं किया। यह ज़रूर है कि उनको ख्याल की बहुत सी टकसाली बंदिशें याद थीं और हैं। इन रचनाओं को वह जब कभी गाते थे ठीक ढंग से गाते थे। उनके गायन में पण्डित ओंकारनाथ वाली व्यवस्था नहीं थी। यदि वह राग विलासखानी टोड़ी गाते थे तो उसको साफ़-सुथरे और सही ढंग से गाते थे। उनके गाने में कोई नाटकीय चमत्कार नहीं होते थे। वह गायन-शैली के नियमों को मानते थे और अपनी गायन-शैली को विकृत नहीं बनाते थे। स्वर, ताल और राग को निभाते समय वह मनमानी नहीं करते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायकी के अनुशासन को भी मानते थे और उसकी अवहेलना कभी नहीं करते थे।

वह अपने गुरु की गायकी ही को हमेशा गाते रहे ऐसा कोई नहीं कह सकता। उनकी गायकी को भी हम किसी विशेष नाम से नहीं पुकार सकते। यह सब कुछ होने पर भी उनके गायन में अराजकता का भाव कभी नहीं आया। वह मनमानी कभी नहीं करते थे उनका उद्देश्य सदैव यही था कि वह अपना राग सही गायें और अपनी बंदिश को गायन-शैली के नियमों सहित अच्छे ढंग से गायें। इसमें उनको हमेशा सफलता प्राप्त हुई। चाहे हम उन्हें शिक्षक के रूप में देखें या गायक के रूप में देखें, हमें यह मानना पड़ेगा कि वह एक अनुभवी और प्रतिभाशील संगीतज्ञ हैं जिन्होंने अपने ढंग से आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की बड़ी महान् सेवा की है। जैसे उनको पुराने गायकों और संगीतज्ञों की हमेशा याद आती रहती है उसी प्रकार लोग भी उनके संगीत और उनकी संगीत-सेवा का पूरा आदर करते रहेंगे।

नारायण राव व्यास

यह भी पण्डित विष्णु दिगम्बर के प्रमुख शिष्यों में हैं। बम्बई के बाहर के लोग उन्हें एक गायक की हैसियत से ही जानते हैं। परन्तु बम्बई के लोग अधिकतर इन्हें एक नामी संगीत-शिक्षक की हैसियत से जानते हैं। इस कारण उनकी सफलता के दो मुख्य अंग हैं। हम उन्हें यहाँ गायक के रूप ही में देख रहे हैं। जनता के मन में उनका यही चित्र अंकित है। गायक की हैसियत से व्यास जी यथार्थवादी हैं। वह संगीत को यथार्थ के दृष्टिकोण से ही देखते हैं। वह उसे कोई पहेली नहीं समझते हैं। और न वह उसे कोई रहस्यमयी, अगम्य विद्या मानते हैं। वह इस वैज्ञानिक, यथार्थवाद के युग में संगीत ऐसे सारगर्भित तत्वों का मूल्य नहीं, केवल उनकी क़ीमत ही जानना चाहते हैं। उनका अटल विश्वास भौतिकवाद पर ही है। गणित के हिसाब से दो और दो चार ही होते हैं। यदि कला के सिद्धान्त से दो और दो पांच भी होते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि क्या हम गणितशास्त्र को माने या सौंदर्यशास्त्र को? संगीतज्ञों में व्यास जी ऐसे यथार्थवादी और कर्मयोगी संगीत को जादू नहीं, यथार्थ मानते हैं। उनका विश्वास है जिस प्रकार अर्थशास्त्र के अनुसार खरा पैसा खोटे पैसे को बाहर निकालता है उसी तरह अच्छा, सफल संगीत घटिया संगीत को बाहर निकाल देता है। यथार्थवाद के सिद्धान्त के मानने वाले गायक वही हैं जो अपने श्रोताओं को किसी कीमत पर भी खुश करे और उनसे वाह-वाह ले। यदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायक अपने श्रोताओं की रुचि को सुधार नहीं सकता है और न उन्हें ऊंचे स्तर पर ले जा सकता है तो उसमें इतनी क्षमता होनी चाहिए और समाधान और सुधार की ऐसी प्रबल भावना होनी चाहिए कि वह स्वयं झुककर उनके मनों को अपनी संगीत-कला से जीते। यदि गायक श्रोताओं की रुचि के नीचे स्तर पर उतर सकता है तो यह उसकी सहृदयता है और उसका सुन्दर सेवा-भाव है जो उसे बाध्य करता है कि वह अपने गायन से सुनने वालों को किसी तरह भी खुश करे।

इस दृष्टिकोण में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं है। इससे उदारचित और विशाल हृदय होने ही की भावना है। शास्त्रीय संगीत को सरल और सुगम बनाना व्यास जी का काम रहा है। जैसे कुछ अनुभवी शिक्षक अपने छात्रों के लिए परीक्षा के निकट आने पर बीजगणित अथवा रेखागणित अथवा अंग्रेजी की कुंजी बनाकर उनके साहस को बढ़ाते हैं कि वह अपनी परीक्षा में आसानी से सफलता प्राप्त करें, तो उसी तरह व्यास जी भी अपने गायन के द्वारा मुश्किल रागों को आसान बनाते हैं और श्रोताओं को अपनी बनाई कुंजी दे देते हैं। इस तरह रागों के स्वरों के अथाह समुद्र में वह उनके कर्णधार बनते हैं। मुश्किल से मुश्किल रागों को वह इस सिद्धान्त से सरल बना देते हैं और संगीत की क्लिष्ट भाषा का अनुवाद वह अपने संगीत की विशेष सरल हिन्दी में कर देते हैं। गम्भीर रागों को वह हलका बना देते हैं। और कठिन स्वरों की रागों को वह अपने श्रोताओं के लिए पानी कर देते हैं।

यही कारण है कि जब वह किसी संगीत-सम्मेलन में अपना गायन सुनाते हैं तो वह अपने संगीत की औषधि की इतनी ही मात्रा देते हैं कि वह आसानी से पी ली जाये और हजम भी हो जाये। यदि किसी सकरे रोग की दवा कड़वी होती है तो वह उसमें पानी मिलाकर अथवा एक चम्मच चीनी मिलाकर उसका स्वाद बदल देते हैं। फिर तो श्रोता उस राग का भी आनन्द लेने लगते हैं। उनकी गायन-कला की सफलता का नारा है "संगीत को सुगम बनाओ।" इस कारण जैसे आम श्रोता हल्के-फुल्के गानों का पूर्ण आनन्द लेते हैं उसी प्रकार उतना ही आनन्द व्यास जी की रागों में उनको आता है। वह अपने इस महान् कार्य में श्रोताओं की दृष्टि से इतने सफल हुए हैं कि उन्होंने बागेश्वरी ऐसी प्रतिष्ठित राग को अपनी लोकप्रिय रचना "मुरली की धुन सुनी सखी री आली" से बहुत सरल बना दिया है। इतना ही नहीं है, उन्होंने तो और भी कुछ किया। उन्होंने मालकोश ऐसे रात के गम्भीर और जोशीले राग को, जिसके वादी स्वर मध्यम पर जम कर और टिक कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोमल गंधार के सहारे स्वर पर अपने में कला-चातुर्य की आवश्यकता होती है, बड़ी ही रोचकता और सुगमता से गाया है। "नीर भरन मैं चली जात" शब्दों वाला उनका मालकोश का ग्रामोफोन रेकार्ड भारत भर में मशहूर हो गया है। उन्होंने इस राग को अपने श्रोताओं के लिए बिल्कुल सरल बना दिया है। जिस राग का नाम सुनकर श्रोता सहम से जाते थे उसको उन्होंने लोकप्रिय और आसान बना दिया है। लोग ठीक कहते हैं कि व्यास जी के रेकार्डों ने लोगों को संगीत की सरल शिक्षा दी हैं। इस मामले में हम उन्हें सरल संगीत-शिक्षा-शास्त्री ही मानेंगे।

व्यास जी का एक ही सिद्धान्त रहा है और वह यह कि शास्त्रीय संगीत का सुगम प्रचार कैसे हो। वह अपने श्रोताओं के लिए भी एक उत्तम शिक्षक साबित हुए हैं। वह बम्बई निवासियों को तो संगीत की शिक्षा देते ही हैं, मगर बाहर के हजारों श्रोतागण उनके गायन के द्वारा ही संगीत-शिक्षा प्राप्त करते रहे हैं। उनका सफल और सुगम संगीत-गायन शास्त्रीय संगीत की कुंजी बन गया है। उन्होंने इसी जनकल्याण की भावना से हिन्दुस्तानी संगीत की सेवा की है। सरस्वती प्रत्येक भक्त की भेंट को स्वीकार करती है जब उसकी भावना में कोई दोष नहीं होता। आज पंडित विष्णु दिगम्बर जी भी अगर जीवित होते तो इस प्रकार के सेवा-भाव से खुश होते।

यदि पंडित ओंकारनाथ गायक के पद पर विराजमान थे और यदि पटवर्धन जी हमारे सम्मानित, आदरणीय गायक-शिक्षक हैं तो हमें यह कहते संकोच नहीं होता कि विष्णु दिगम्बर जी के शिष्य-संप्रदाय में व्यास जी भी आम जनता के लिए शास्त्रीय संगीत के लोकप्रिय प्रचारक हैं और उसकी विशेष सस्ती कुंजी भी है। अपने गुरुभाइयों की तरह वह भी जानते हैं कि गायक को अपने गायन का अंत एक भजन से करना चाहिए। इसी से उसके संगीत की सात्विक भावना उसके श्रोताओं के मनो में सुरक्षित रहती है। आम जनता की शुभकामनायें उनके साथ हैं कि वह दीर्घ काल तक संगीत-सेवा में इसी सुन्दर भावना से लगे रहें।

बी० आर० देवधर

यह पंडित विष्णु दिगम्बर के प्रमुख शिक्षित, प्रतिष्ठित, सुविख्यात शिष्यों में हैं। यथार्थ में यह एक श्रेष्ठ संगीत-शिक्षक ही हैं जिनके संगीत-विद्यालय की आधुनिक संगीत में बहुत ख्याति है। अगर विनायक राव पटवर्धन जी स्वर्गीय डी० बी० पलुस्कर के गुरु हैं तो श्री बी० आर० देवधर को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी यह श्रेय है कि वह कुमार गंधर्व के पहले असली गुरु हैं। हम नहीं कह सकते कि कहां तक कुमार गंधर्व के आजकल के गायन-शैली का उत्तरदायित्व देवधर जी को है। वह जो कुछ हो, यह तो मानना पड़ेगा कि पंडित विष्णु दिगम्बर के शिष्य-संप्रदाय में वह पटवर्धन जी की तरह एक सम्मानित व्यक्ति हैं और उनका भी बड़े-बूढ़ों में शुमार हो गया है। यह कहना भी ठीक होगा कि वह केवल संगीत शिक्षक ही नहीं हैं और न वह अपने मत की विचारधारा के संकुचित क्षेत्र में ही सीमित हैं। गायक की हैसियत से तो उन्होंने कभी कोई विशेष ख्याति पाई नहीं और न कभी उनकी लालसा या अभिलाषा थी कि देश के प्रमुख गायकों में उनकी भी गिनती हो। व्यक्तिगत गायन-कला की ख्याति का कोई मुख्य मूल्य अथवा प्रधान महत्व उनके जीवन में नहीं रहा है। यह अभिलाषा उनकी अवश्य रही है कि वह संगीत का मनन करें और गहरा अध्ययन करके विद्वानों के संपर्क में रहें और संगीत की एक बहुमूल्य, महान् सेवा करें। उनके संगीत अध्ययन की प्रवृत्ति का पता इसी बात से चलता है कि वह बहुत समय तक "संगीत कला विहार" के विद्वान् संपादक रहे। अपनी योग्यता के कारण वह बड़ी-बड़ी संस्थाओं और कमेटियों के सदस्य भी रहे हैं और शिक्षित समाज में उनके संगीत के विचारों का आदर भी होता रहा है।

परन्तु वह कभी किसी मानसिक संकीर्णता और संगीत की साम्प्रदायिक कट्टरता के शिकार जान-बूझकर नहीं बने। यह उनकी योग्यता और उनकी प्रतिभा की प्रशंसा है कि वह आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के जोशीले राजनीतिक क्षेत्र में एक कुशल और सफल निष्पक्ष राजनीतिज्ञ की हैसियत ही से रहे और बहुत से महत्वपूर्ण कार्यों की बागडोर अपने हाथ में लेकर वह दूसरों के लिए मार्गदर्शक भी बने। ऐसे कामों में वह सदा संलग्न रहते हैं और अपनी सेवा से लोगों को लाभ भी पहुंचाते हैं। संगीत के क्षेत्र में संगीत के मामलों में वह तटस्थ और उदासीन नहीं रह सकते। वह समदृष्टि भाव से सेवा तो अवश्य करते हैं मगर मैदान में कूदने में वह कभी नहीं चूकते क्योंकि वह कर्मठी जीव हैं। उनकी प्रतिभा में एक विशेष प्रकार की विविधता है और इस कारण उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। संगीत शिक्षा देने के अलावा वह संगीत के विराट् प्रयोजनों में अपना हाथ लगाते हैं। बड़ी-बड़ी संगीत-संस्थाओं की बागडोर उनके हाथ में होती है।

रही संगीत में उनकी विचारधारा की बात, यदि वह समदर्शी भी हैं और संगीत के क्षेत्र में बड़े चातुर्य और बड़ी समझ-बूझ से काम लेते हैं तो वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तुलन के सिद्धान्त के कायल भी हैं और इसलिए वह अपनी व्यक्तिगत भावना को कभी-कभी जनहित के लिए बलिदान भी कर देते हैं। यही कारण है कि लोग उनकी उदारता और सहृदयता से बहुत प्रभावित होते हैं। संगीत के विषय में उनका दृढ़ विश्वास यही है कि सहयोग की भावना से शांति का जन्म होता है। और अगर अपने दृढ़ विचारों से अपने व्यक्तिगत सम्मान को ठेस पहुंचती है तो बोलने से अच्छा मौन व्रत धारण करना है। उदारता का बाहरी अभिनय अथवा ढोंग शांति की भावना को उत्तेजित अवश्य करता है। इसलिए हिन्दुस्तानी संगीत में कट्टर और अटल विचारों का होना हानिकारक है और सन्तुलन का घातक है। इस कारण देवधर जी प्राचीन ग्वालियर गायकी के परिमार्जित, शुद्ध रूप के कट्टर भक्त होते हुए भी बड़े गुलामअली के गायन की भावुक अव्यवस्था के भक्त भी हो सकते हैं। और संगीत में अनुशासन के अनुयायी और भक्त होकर भी वह अराजकता की विद्रोह-भावना को सराह भी सकते हैं। उनकी असाधारण सूझ-बूझ का यहां विश्लेषण करना असंभव है। परन्तु उनके विद्वान् कर्मकाण्डी होने पर किसी व्यक्ति को शंका नहीं हो सकती।

डी० वी० पलुस्कर

यह पंडित विष्णु दिगम्बर के सबसे छोटे और होनहार पुत्र थे जिनकी प्रतिभा का पूरा प्रदर्शन होने के पहले ही उनका निधन थोड़ी अवस्था में हो गया। इस प्रतिभाशील, तरुण गायक के निधन से व्यावहारिक संगीत को काफ़ी धक्का पहुंचा। यदि यह जीवित रहते और गायकी की शिक्षा उन्हें और विस्तारपूर्वक मिलती और वह कड़ा परिश्रम भी करते रहते तो कुछ सालों में उनकी गणना देश के धुरन्धर गायकों में हो सकती थी। पर फिर भी वह उन तरुण गायकों में थे जो हर तरह से बहुत होनहार और प्रतिभाशील थे। उनकी आवाज में एक विशेष प्रकार का माधुर्य था और एक खास ढंग की मिठास थी जिसके कारण वह अपने श्रोताओं के लिए लोकप्रिय गायक बन गये थे। उनका गायन सब तरह के श्रोता पसन्द करते थे। इस मामले में तो दो रायें हो नहीं सकतीं कि उनका कण्ठ मधुर था और वह जो कुछ गाते थे वह सुनने में भी बहुत अच्छा लगता था।

प्रत्येक ख्याति वाले गायक की दो एक चीजें आम लोगों में बहुत मशहूर हो जाती हैं। अगर स्वर्गीय डी० वी० पलुस्कर के गुरू पटवरधन जी अपने भजन "जोगी मत जा मत जा मत जा" के लिए भारतवर्ष भर में मशहूर हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये हैं और उन्होंने गाया भी उसको बड़े उत्साह से तो वह भी अपने भजन "रघुपति राघव राजाराम" के लिए घर-घर मशहूर हैं। अभी भी जब उनका यह रेकार्ड बजता है तो उनकी याद ताज़ा हो जाती है। इस बेजोड़ धार्मिक रचना को, जो गाँधी जी को सबसे प्रिय थी, इस तरुण गायक ने गाया भी बड़ी धार्मिक तन्मयता से है। उनको सुनकर यही लगता था कि इस तरह की मिठास से दूसरा गायक उसे नहीं गा सकता था। इस रचना की राष्ट्रीयता और धार्मिकता दोनों मिलकर उसकी भावुकता के महत्व को बहुत बढ़ा देते थे। इसका सामूहिक गायन भी कानों को बहुत अच्छा लगता था और अब तक अच्छा लगता है।

पंडित विष्णु दिगम्बर भी जीवन के अंतिम वर्षों में इस विशेष रचना के प्रयाग के कुम्भ अथवा माघ के मेले में हज़ारों की भीड़ के सामने गाकर अपने श्रोताओं को आनन्द से भर देते थे और उन्हें तृप्त कर देते थे। डी० वी० पलुस्कर ने अपने पूज्य पिता के पद-चिन्हों पर चलकर जन-समूह की इस धार्मिक भावना को अनेक अवसरों पर बड़ा आनन्द पहुंचाया।

उनके संगीत की प्रतिभा के बारे में जो कुछ कहा जायेगा वह अधूरा होगा। यह होनहार, प्रतिभासम्पन्न तरुण गायक गायन कला की पराकाष्ठा की ओर ही जा रहा था और अपने लम्बे क़दम उठा रहा था कि मृत्यु ने उसको हमसे छीन लिया। इस गायक के श्रोता अभी भी उसको याद करके आह भरते हैं और यही बार-बार कहते हैं काश कि डी० वी० पलुस्कर अभी और जीता। यही उनके प्रति उनके प्रेम की श्रद्धांजलि है। यही डी० वी० पलुस्कर के संगीत की विजय थी। पण्डित विष्णु दिगम्बर की शिष्य-परंपरा का संगीत-ब्यौरा देने के बाद हम इस बात को दोहराना चाहते हैं कि स्वर्गीय पण्डित जी ने हिन्दुस्तानी संगीत का जिस ढंग से व्यापक प्रचार किया उसका प्रभाव देश भर में फैला। संगीत-शिक्षा का शिक्षित समाज में विराट आयोजन करके उन्होंने स्वर-लिपि सहित संगीत की पुस्तकों के द्वारा एक नई संगीत की शिक्षा-पद्धति का आविष्कार किया। इस क्षेत्र में वह हिन्दुस्तानी संगीत के प्रथम अन्वेषक थे। उन्होंने ही इस संगीत-शिक्षा का बीज बोया और एक व्यापक संगीत-प्रचार में हाथ लगाया। संगीत का इतना बड़ा सामान्य प्रचार पहले कभी नहीं हुआ था। कुछ थोड़े से लोग ही संगीत के विशेषज्ञों—उस्तादों और गुरुओं—से संगीत सीख सकते थे। परन्तु आम जनता को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता था। गुरु-शिष्य संगीत-शिक्षा मौलिक थी और कानों से सुनकर स्मरण शक्ति के द्वारा ही संगीत सीखा जाता था। संगीत लिखने का कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियम न था। पण्डित विष्णु दिगम्बर ने स्वर-लिपि और संगीत की सरल पुस्तकों का आविष्कार करके संगीत को आम जनता तक पहुंचाया। यह कोई मामूली काम न था। संगीत-शिक्षा का आयोजन करने के साथ उन्होंने संगीत शिक्षक भी तैयार किये। और इसके साथ-साथ उन्होंने अपने कुछ विशेष शिष्यों को शिक्षा देकर गायक भी बनाया। यह सब काम उन्होंने साथ-साथ किये। इस संगठन के महान् कार्य को उन्होंने अपने आत्मिक बल और परिश्रम से ही किया। केवल उनके शिष्यों का सहयोग इसमें था। इस सहयोग में जो लगन की भावना थी वही प्रोत्साहन का स्रोत बन गयी।

इस आग को लगाकर पण्डित जी ने अखिल-भारत संगीत-प्रचार का आयोजन किया और एक नये कला-प्रेमी शिक्षित वर्ग का भी निर्माण किया। उस काल से लेकर अब तक जो क्रान्तिकारी घटनायें और परिवर्तन हुए हैं, उनको देखकर ही हम अंदाजा लगा सकते हैं कि इस महान् आन्दोलन के कितने लाभदायक परिणाम हुए। इस विराट संगीत-प्रचार ने संगीत में लोगों की रुचि को उत्तेजित किया और उसको बहुत जबरदस्त प्रोत्साहन भी दिया। एक अकेले विद्वान् संगीतज्ञ और कर्मकाण्डी के संकल्प से ही यह सब हो पाया। उन्होंने ही इस कर्तव्य-परायणता के बाज को अपने शिष्यों में बोया। उन्होंने संगीत की एक साहसी सेना बनाकर संगीत-प्रचार के मैदान में प्रवेश किया। इसका एक विशेष परिणाम यह हुआ कि लोगों में संगीत-प्रेम की असाधारण वृद्धि थोड़े ही समय में हुई। आधुनिक युग में पण्डित विष्णु दिगम्बर ने संगीत का प्रचार करके हिन्दुस्तानी संगीत की प्राचीन मर्यादा को सुरक्षित ही नहीं रखा परन्तु हमारे सांस्कृतिक जीवन के स्तर को भी ऊंचा किया। उनकी सेवा संगीत की सेवा ही नहीं थी, राष्ट्र की सेवा भी थी।

पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे

शायद यह कहना अनुचित न होगा कि इस शताब्दी में स्वर्गीय भातखण्डे जी ऐसे संगीत के विद्वान् बहुत कम हुए हैं। वह संगीत-शास्त्र के निपुण विद्वान् थे। व्यवसाय तो उनका वकालत था और वह बम्बई में सॉलीसिटर का काम करते थे। परन्तु उन्हें तरुण अवस्था ही से संगीत में विशेष रुचि थी और इस कारण उन्होंने कई गुरुओं से संगीत सीखा। वकालत का काम तो उन्होंने बहुत कम किया और संगीत ही में वह अपना अधिक समय बिताते थे। वह केवल कनरसिया ही नहीं थे और न संगीत के रसिक ही थे। वह संगीत का गहरा मनन करते थे और उसके विद्वान् थे। उनका संगीत-प्रेम एक नौसिखिये का प्रेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं था। संगीत केवल उनके कानों को ही अच्छा न लगता था और न केवल उसके मधुर स्वर उनके हृदय ही को स्पर्श करते थे। यथार्थ में संगीत का प्रभाव उनके मस्तिष्क, दिल और दिमाग और आत्मा सब पर एक साथ पड़ता था। उनका सारा व्यक्तित्व संगीत से प्रभावित और रोमांचित होता था। वह केवल संगीत कला के प्रेमी और प्रशंसक ही नहीं थे और न संगीत उनके अवकाश का मनोरंजन था। संगीत से उन्हें गहरी आत्मिक प्रसन्नता और उल्लास प्राप्त होते थे। उनके लिए संगीत में जीवन का अनुवाद होता था और वह भावों और विचारों की अमर वाणी थी। इस कारण उनकी संगीत-भक्ति में एक विशेष प्रकार के आत्मसमर्पण की भावना थी।

यदि पण्डित विष्णु दिगम्बर आधुनिक युग में हिन्दुस्तानी संगीत के सबसे बड़े प्रचारक और उसकी सामान्य शिक्षा के सबसे प्रथम अन्वेषक माने गये हैं तो यह बात ठीक है और इसमें कोई मतभेद नहीं है। इसी तरह यह कहना भी ठीक होगा कि आधुनिक युग में पण्डित भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत के अद्वितीय विद्वान् और संगीत-शास्त्री माने गये हैं जिन्होंने इस संगीत की उचित व्यवस्था करने में बड़ा महान् कार्य किया है। विद्वान् की हैसियत से उनका आदर और सम्मान पूरे भारतवर्ष में हुआ। उन्होंने संगीत के प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन करके उनकी छानबीन भी की। उन्होंने इस महान् कार्य में विवेक और निष्पक्ष भावना ही से काम लिया। जहां-जहां संगीत के विचारों में जबरदस्त मतभेद था वह उन्होंने सहयोग और सन्तुलन के सिद्धान्तों का पालन और समर्थन किया। भिन्न-भिन्न विचारों के बीच में उन्होंने उदार स्वीकृति और सहिष्णुता के भावों ही का समर्थन किया। उनकी हार्दिक अभिलाषा यही थी कि संगीत की सैद्धान्तिक व्यवस्था हो जाये और बहुमत के निर्णयों का पालन किया जाये। इसी कारण भातखण्डे जी के सैद्धान्तिक तथ्यों और फैसलों के खिलाफ विद्वानों और विचारकों का कोई विशेष विरोध नहीं हुआ। सब लोगों का उद्देश्य यही था कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की इस सैद्धान्तिक व्यवस्था में सबका-विद्वान्, समाज और गायक-समाज का सहयोग प्राप्त हो। एक केन्द्रीय विचारधारा को निर्धारित करना ही सबसे परम आवश्यक था। एक सामान्य आधार पर हिन्दुस्तानी संगीत के सिद्धान्तों को स्थापित करना ही विद्वानों का उद्देश्य था।

भातखण्डे जी इस महान् कार्य में जी-जान से जुट गये थे और इसी कारण उनको सफलता भी प्राप्त हुई। उनकी 'संगीत-पद्धति' से सब हर तरह से सहमत न रहे हों मगर उसके मौलिक आधार और सम्बन्धित सिद्धांतों के बारे में कोई विशेष मतभेद नहीं था। भातखण्डे जी ने संतुलित विचारों ही का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्थन किया था। इसी तरह से उनका 'लक्ष्य-संगीत' और 'अभिनव राग मंजरी' भी उनकी विद्वत्ता के अमूल्य देन माने जाते हैं। इन ग्रंथों से उनके संगीत-ज्ञान, संगीत-अध्ययन और व्यक्तिगत मनन का सही पता चलता है। भातखण्डे जी ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के सैद्धांतिक आधार की रूपरेखा स्थापित करें। इस कार्य में उनको काफी सफलता प्राप्त हुई और हिन्दुस्तानी संगीत का व्यवस्थित रूप एक तरह से लोगों की आंखों के सामने आया। जिस सैद्धांतिक रूपरेखा को उन्होंने स्थापित किया न तो वह असम्बद्ध अथवा बेड़ौल थी और न उसमें कोई अनुपपत्ति थी। उसकी सामान्य रूपरेखा को स्वीकार करने में किसी को भी कोई आपत्ति नहीं थी। कट्टरता अथवा असहिष्णुता ही उसका विरोध कर सकती थी। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की इस सैद्धांतिक व्यवस्था को स्थापित करने में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत कठिनाई पण्डित जी को हुई उसका सामना उन्होंने बड़े साहस और नैतिक बल से किया। इसका समर्थन उन्होंने केवल अपने तर्क से अथवा वकीलों वाली कानून की अदालती दलील से नहीं किया। उनके इस समर्थन में विवेक था और संगीत की ऐतिहासिक समीक्षा का अंश भी था। वह ऐसे संगीत का अध्ययन नहीं कर रहे थे जो एक प्राचीन, मृतक कला थी और जिसका अंत हो चुका था। वह तो एक जीवित, जीती-जागती, परिवर्तनशील संगीत-कला की चर्चा कर रहे थे जिसने शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' के समय से होश सम्भाला था और जिसकी ध्रुपद-परंपरा का अद्भुत प्रदर्शन तानसेन और अकबर के युग में हुआ था। इसी ऐतिहासिक वातावरण का सन्तुलित निरीक्षण करते हुए पण्डित भातखण्डे कुछ सारगर्भित तत्वों तक पहुंचे थे। इसी कारण यह आवश्यक हो गया था कि इस संगीत का सैद्धांतिक आधार ऐतिहासिक दृष्टि से क्रियाशील माना जाय। इसलिए आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की रूपरेखा स्थापित करने के लिए यह आवश्यक था कि लोग उसके जीवन-काल के क्रांतिकारी परिवर्तनों, परिस्थितियों और ऐतिहासिक घटनाओं का ठीक अनुमान करके उनका मूल्य निश्चित करें। संगीत की ऐतिहासिक समीक्षा में इस प्रकार का दृष्टिकोण आवश्यक हो जाता है। जब पण्डित भातखण्डे ने दस ठाटों को स्थापित किया तो उनकी रागों को क्रमबद्ध करने की क्रिया अथवा वर्गीकरण उनके लिए अनिवार्य हो गया।

पण्डित भातखण्डे ने कभी इस बात का दावा नहीं किया कि वह स्वयं संगीतज्ञ थे। परन्तु उनकी परख किसी भी समझदार और प्रतिभाशील संगीतज्ञ की परख से कम न थी। उन्होंने संगीत की शिक्षा भी ली। उनके गुरु जयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के उस्ताद मुहम्मदअली खां 'कोठीवाल' थे जो प्रतिष्ठित मनरंग घराने के वंशज थे। भातखण्डे जी बड़े कोमल हृदय और सूक्ष्मग्राही व्यक्ति थे और संगीत के लिए उनके पास बहुत अच्छे कान थे। जिनमें एक प्रकार की सूक्ष्म बुद्धि थी। अगर ऐसा न होता तो वह संगीतज्ञों की सैकड़ों रचनाओं को एकत्रित करके उनका विराट संग्रह न कर पाते। गायकों की बंदिशों को ठीक-ठीक याद करने के लिए विद्वानों के कान बड़े सूक्ष्मग्राही होने चाहिए और सुरीले भी होने चाहिए। जिसके गले में स्वर होता है और जो स्वरों के सूक्ष्म और नाजुक दर्जों को जानता है वही इन बंदिशों की रूपरेखा निश्चित कर सकता है। याददाश्त की मदद से और सूक्ष्मग्राही कानों की असाधारण पैनी बुद्धि की सहायता से बुद्धिमान, कोमल हृदय श्रोता, जो संगीत का विद्वान् भी होता है, बंदिशों की सामान्य रूपरेखा जान लेता है और फिर गायकों से व्यक्तिगत परामर्श के बाद वह उनकी हड्डियों में मांस भर देता है। पहले तो उसके कान ही दिमागी स्वर-लिपि का काम करते हैं और इसके बाद ही वह कागज पर अपनी क़लम से लिखता है। भातखण्डे जी के पास अगर इतने अच्छे कान न होते और यदि उनमें ऐसी असाधारण प्रतिभा विशेषकर बंदिशों के लिए न होती, तो वह गायकों की चीजों का इतना बड़ा संग्रह न कर पाते। वैसे दिमागी स्वर-लिपि करने की उनको आदत थी। यह गुण उनकी चकित करने वाली प्रतिभा ही का था। यह भी कहना आवश्यक है कि इन एकत्रित की हुई रचनाओं में गायकों की बहुत सी टकसाली, प्रचलित चीजें भी थीं जिन्हें बहुत से गायक गाते हैं। इनमें से कुछ चीजें ऐसी भी थीं जिनके चलन, अंदाज और व्यावहारिक लहजे का पता उनको गायकों से व्यक्तिगत परामर्श करने के बाद ही चला। उन्नीस सौ चौबीस के लखनऊ के अखिल-भारत संगीत-सम्मेलन में उन्होंने इस प्रकार का शोधन समय पाकर किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि किस असाधारण साहस और परिश्रम से पण्डित भातखण्डे ने इन बंदिशों का संग्रह कहां से और किन अवसरों पर कितनी कठिनाइयों के बीच में किया। यह महान् कार्य उनके असीम धैर्य और साहस ही का फल था। लगन और कड़ा परिश्रम यदि किसी की प्रतिभा का साथ न दे तो जो काम असम्भव लगते हैं कभी नहीं हो सकते। भातखण्डे जी आदर्शवादी तो थे ही परन्तु इसके साथ वह आशावादी और कर्मकाण्डी भी थे। इस युग में ऐसी लगन किसी और संगीत के विद्वान् में नहीं देखी गई।

गायकों के प्रबन्धों, बंदिशों और चीजों के बारे में अगर उनको ऐसी सूझ-बूझ न होती जो उनके किसी भी "लक्षणगीत" का जन्म न होता। उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत से लक्षण गीत यह संकेत करते हैं कि वह विद्वान् और कवि दोनों थे। इसके साथ-साथ उनके पास गायक का गला न सही, उसकी अक्ल अवश्य थी। भातखण्डे जी के बेजोड़ लक्षण गीत "चतुर" पंडित के लक्षण गीतों के नाम से मशहूर हैं। इनमें से कुछ तो इतने सुन्दर हैं कि अक्सर गायक उन्हें प्रेम से गाते हैं मगर उनके रचयिता का नाम तक नहीं जानते। जैसे पहले कहा बताया गया कि एक सुविख्यात गायक इनके एक विशेष लक्षण गीत को अक्सर बड़े गर्व से गाया करते थे मगर यह नहीं जानते थे उस लक्षण गीत की रचना "चतुर" पंडित ने की है। इसमें कोई शक नहीं कि बहुत से ऐसे लक्षण गीतों से "चतुर पंडित" के रचना-चातुर्य का पूरा पता चलता है। माना कि इनमें से कुछ का आधार गायकों की पहली बंदिशों में मिलता है। परन्तु इस कारण उनका मूल्य कम नहीं होता। कभी-कभी पुरानी बंदिशों के आधार को लेकर चतुर पंडित ने बड़ी सुन्दर रचनायें लिखी हैं। रचना की सामग्री लेकर उन्होंने एक नया, रोचक निर्माण किया है जिससे उनकी प्रतिभा का पता चलता है।

इन लक्षण गीतों का विशेष लाभ यह है कि एक संगीत विद्यार्थी को उनकी मदद से कुछ रागों को सामान्य रूपरेखा मिल जाती है। इस प्रकार का परिचय उनकी संगीत शिक्षा में लाभदायक साबित होता है। इसके अलावा भी इन लक्षण गीतों में रचना-सौंदर्य के साथ-साथ रागों का संक्षिप्त पारिभाषिक ज्ञान भी है। यह सब संगीत-शिक्षा और संगीत-ज्ञान के लिए लाभदायक है। अशिक्षित गायक, जो तानों की तैयारी के अलावा अपनी गाई हुई राग के बारे में कुछ भी विशेष ज्ञान नहीं रखता, इनसे बहुत कुछ सीख सकता है यदि उसने संगीत के शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है तो इन रचनाओं में उन्हें किसी राग के बारे में बहुत संक्षेप में थोड़ा-बहुत सैद्धांतिक परिचय मिल जाता है। एक लक्षण गीत की महानता इसी में है कि संक्षेप में रचयिता एक विशेष राग के बारे में कुछ मुख्य सैद्धान्तिक बातें बता दें। संक्षेप में सब कुछ कह जाना ऐसा ही है जैसे गागर में सागर अथवा कूजे में दरिया। इस आदर्श को लेकर लक्षण गीतों की रचना करना बहुत मुश्किल काम है। इसीलिए कुछ विशेष लोगों ही ने अच्छे लक्षण गीत लिखे हैं।

पंडित भातखण्डे की स्वरलिपि के बारे में यह कह देना आवश्यक है कि यह स्वरलिपि विष्णु दिगम्बर जी की स्वरलिपि से अधिक सरल है। सच तो यह है कि आज आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में इससे अधिक आसान और सरल स्वर लिपि और कोई नहीं हैं। छोटे और बड़े, तरुण और प्रौढ़ सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़ी सुगमता से इसको प्रयोग में ला सकते हैं। ऐसी सुविधा और किसी स्वर लिपि में लोगों के लिए नहीं है। जिस सुगमता से यह स्वरलिपि लिखी जा सकती है वह भी इसका एक मुख्य गुण है। सब तरह के लोग इसको व्यवहार में ला सकते हैं। शिक्षक, लेखक और संगीतज्ञ सब इसका आसानी से इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे यह साफ ज़ाहिर है कि संगीत-शिक्षा और संगीत-प्रचार दोनों को इस सरल स्वर लिपि ने बहुत प्रोत्साहन दिया है। पढ़े-लिखे लोगों में संगीत-ज्ञान के आम प्रचार में भी इस स्वर-लिपि से बहुत सहायता मिली है। यह लिखी और पढ़ी जाती है एक ही तरह की आसानी से।

पंडित भातखण्डे ने रागों का वर्गीकरण दस ठाटों के अनुसार करके आधुनिक हिन्दुस्तानी की उचित और सैद्धांतिक व्यवस्था कर दी जिससे संगीत-शिक्षा में भी बड़ी आसानी हो गई। संगीत-शिक्षकों को और संगीत के विद्यार्थियों को इससे बड़ी सुविधा हो गई। सामान्य रूप से इस प्रकार का वर्गीकरण सुगम और लाभदायक साबित हुआ। संगीत के सामान्य ज्ञान में भी इससे अधिक सुविधा हो गई। संगीत के शिक्षकों और संगीत से संबन्धित संस्थाओं को भी इस प्रकार के वर्गीकरण और सरल स्वरलिपि के आविष्कार से बहुत लाभ पहुंचा और अधिक सुविधा भी हुई। बड़ौदा, बम्बई, नागपुर, ग्वालियर और लखनऊ के संगीत विद्यालय इन्हीं सुविधाओं का प्रयोग कर रहे हैं। लखनऊ की "भातखण्डे संगीत विद्यापीठ" भातखण्डे पद्धति का मुख्य केन्द्र ही मानी जायेगी। यही पहले मैरिस म्यूजिक कालेज के नाम से पुकारा जाता था। मगर यह मानना पड़ेगा कि इस परिवर्तन से वहां के सिखायें गये संगीत की उत्तमता में बहुत कुछ अन्तर हो गया है। मैरिस म्यूजिक कालेज के शिक्षकों में उस्ताद अहमद खां, उस्ताद आबिद हुसैन, नसीर खाँ, बड़े मुन्ने खां, हामिद हुसैन, सखावत खाँ, श्रीकृष्ण नारायण रतनजनकर ऐसे सुविख्यात धुरंधर संगीतज्ञ थे जिनके व्यक्तित्व में भी छात्रों को प्रोत्साहन मिलता था। खेद है कि अब ऐसा नहीं है जब हम उसे भातखण्डे संगीत विद्यापीठ के नाम से पुकारते हैं। हमें आशा है कि उत्तर प्रदेश की सरकार इस बात पर उचित ध्यान देगी। इस प्रसिद्ध संगीत विद्यालय की नींव भातखण्डे जी ने डाली थी। इसलिए उसके स्तर को ऊंचा करना अत्यन्त आवश्यक है। भातखण्डे पद्धति के इस प्रधान केन्द्र को केवल संगीत-शिक्षा का केन्द्र ही बनकर नहीं रहना है। संगीत में अनुसंधान और छान-बीन का काम भी ऐसी पुरानी संगीत संस्था के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

यदि हम विष्णु दिगम्बर मत और भातखण्डे मत दो अलग-अलग मत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानते हैं तो इस बात पर वाद-विवाद करना अनावश्यक है। परन्तु यह सोचना कि इन संस्थाओं ने दो अलग-अलग शैलियों का निर्माण किया है, बहुत हद तक मिथ्या विचार करना है। यह अलग-अलग पद्धति हैं परन्तु उनके संगीत विद्यालयों में संगीत की शिक्षा दी जाती है और किसी शैली की नहीं। इस आधुनिक संगीत-शिक्षा के नये आयोजन की प्रशंसा करते हुए हमें यह भी बताना है कि हम किन-किन दोषों और मिथ्या विचारों के शिकार बन गये हैं और यथार्थ क्या है। पहली बात तो यह है कि किसी भी स्वर-लिपि के द्वारा परंपरागत शास्त्रीय संगीत का और उसकी रचनाओं का ठीक-ठीक अनुवाद कभी नहीं हो सकता है। संगीत एक विशेष ललित कला और वह पाठ्य-पुस्तक का विषय नहीं बन सकता। यदि हम शेक्सपियर और कालिदास की कविता का संहार करना चाहते हैं तो उन्हें पाठ्यपुस्तक बनाकर छाप दें। यदि तानसेन को आजकल की कोई स्वर-लिपि सहित ध्रुपदों का कोई छपा हुआ संग्रह दिखाया जाता तो भौचक्का हो जाता वह किताब के पहले पृष्ठ को गौर से देखता। और यदि सदारंग और अदारंग अपनी रचनाओं के बदले हुए विगड़े और भद्दे रूप को देखते अथवा सुनते तो वह क्रोध से पागल हो जाते। आजकल के परंपरागत संगीत के धुरन्धर गायक भी जब कभी ख्याल के अस्थाई अन्तरों की छपी हुई किताबों को देखते हैं तो उसे केवल एक प्रकार का मनोरंजन ही समझते हैं। अथवा वह पढ़े-लिखे लोग जो पुरानी तालीम के नियमों से किसी विद्वान् गायक से गाना सीखते हैं और बंदिशें याद करते हैं वह भी ऐसी किताबों में कोई दिलचस्पी नहीं रखते। मगर सच तो यह है कि संगीत की छपी हुई नाना प्रकार की पुस्तकों ने अब अपना स्थान जनता में बना लिया है। स्वरलिपि के भी पैर जम गये हैं। परन्तु हम पिछले जमाने के संगीत को देखते हैं तो यही ज्ञात होता है कि संगीत के विद्यार्थियों को दर्जनों और सैकड़ों बंदिशें और चीजें बग़ैर किसी स्वर-लिपि के याद हो जाती थीं और कुछ वर्षों के बाद भी वह उनको सही दुहरा सकते थे। क्या ऐसे कुशल गायकों को हम अशिक्षित कह सकते हैं ?

यह तो मानना ही पड़ेगा कि स्वरलिपि से किसी विशेष रचना का असली रूप सामने नहीं आता है और न हम यह जान सकते हैं कि वह किस ढंग और किस अन्दाज में गाई जाये। बगैर गुरु या उस्ताद के इस बात को कोई नहीं बता सकता। स्वर-लिपि की सुगमता केवल रचनाओं को सामान्य रूपरेखा देने ही में होती है। बगैर गुरु के किताब में छपी हुई मियां की टोड़ी की एक रचना कैसे गाई जाये, इसका पता लगाना असंभव है। स्वरलिपि एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार का निर्देश और संकेत है। उसके द्वारा हमें किसी रचना का ढांचा ही मिल सकता है परन्तु उन हड्डियों में मांस भरना हमारा काम है। सबसे बड़ा दोष स्वरलिपि का यह है कि वह पुरानी बन्दिशों की शक्लों को अक्सर इतना बिगाड़ देती है कि वह पहचानी नहीं जाती। पाश्चात्य संगीत की और बात है। उसकी बहुत सी प्रसिद्ध रचनायें आज भी स्वर-लिपि में सुरक्षित हैं। पियानों अथवा वाइलन पर छपे हुए संगीत को आसानी से और शुद्धता से बजाना बिल्कुल आम बात है। पाश्चात्य संगीत बहुत कुछ छपा हुआ है। परन्तु हमारे संगीत की परम्परा में पुस्तकों और स्वरलिपि का कोई भी स्थान नहीं है। कान से सुनना और दिमाग से सीखना और स्मरण-शक्ति के द्वारा उसे सुरक्षित रखना, यही हमारी संगीत-शिक्षा का आधार रहा है। विद्यार्थी जो कुछ सीखता था चाहे ज्यादा और चाहे कम, वह परम्परागत संगीत के अन्तर्गत ही होता था। परंपरागत संगीत के गायकों और उस्तादों की सिखाई चीजें शिष्यों को यों ही याद हो जाती थीं और वह उन्हें गायकी के नियमों ही से गाते थे। यह तो हमको मालूम है कि स्वर-लिपि से सीखे हुए संगीत के गायन या वादन में कोई गायकी नहीं होती। हमारे संगीत में एक जबरदस्त व्यक्तित्व की भावना है और कोई गायक या वादक इस आत्म-निर्भरता और आत्माभिमान के प्रोत्साहन ही के द्वारा संगीत का प्रदर्शन करता है। इसीलिए यदि किसी एक विशेष राग को दो भिन्न गायक अलग ढंग से गायें और जहां तक इस राग का सम्बन्ध है प्रत्येक गायक के व्यक्तित्व की छाप उसके प्रदर्शन में होगी। समानता और एकरूपता की भावना हमारे संगीत में नहीं है। विविधता और अनेकता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों ही से हमारा गायन अथवा वादन प्रेरित होता है। रचना एक ही होती है मगर वह अलग-अलग ढंग से अपने-अपने व्यक्तित्व से प्रोत्साहित होकर गाई जाती है। व्यावहारिक संगीत की ऐसी परिस्थिति में स्वर-लिपि का क्या मूल्य हो सकता है? बिथोवन की 'अनफ़िनिश्ड सिफनी' अथवा शूबर्ट, बाक और वॉगनर की प्रतिष्ठित रचनाओं की स्वर-लिपि हो चुकी है और वहां के संगीतज्ञ उसकी सहायता से पाश्चात्य संगीतज्ञों के संगीत का फिर से आनन्द ले सकते हैं। यदि कोई ध्रुपद-गायक तानसेन का कोई विशेष ध्रुपद गाकर हमको आनन्द पहुंचा सकता है तो यह कैसे संभव है कि स्वर-लिपि में लिखे हुए तानसेन के किसी और ध्रुपद का आनन्द भी इसी तरह हम ले सकते हैं? हमारा परंपरागत संगीत न तो स्वर-लिपि का मुहताज है और न उसका सही भावात्मक और कलात्मक अनुवाद उसके द्वारा हो सकता है। आधुनिक संगीत-शिक्षकों और प्रचारकों को इस तथ्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को ध्यान में रखना चाहिए। यदि हमारे संगीत विद्यालय परंपरागत संगीत से अपना कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ते और आज़ादी का दम भरते हैं तो हानि उसके संगीत की ही हो रही है और उसकी जड़ें कभी मज़बूत नहीं हो सकतीं। चौसर शेक्सपियर और मिल्टन से आधुनिक अंग्रेजी कविता को अलग करके हम अंग्रेजी कविता की मौलिक प्रतिभा को कभी नहीं समझ सकते। इसी तरह गालिब, मीर, जौक, और ज़फर के काव्य की परंपरा को भूलकर हम उर्दू कविता की आधुनिक विचारधारा का सही अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। और बिल्कुल इसी तरह तानसेन परंपरा की-ध्रुपद शैली के बारे में बगैर कुछ जाने हम सेनिया घराने के ध्रुपद-गायन का सही अनुमान नहीं लगा सकते। तो फिर यह कैसे संभव है कि प्राचीन परंपरागत शास्त्रीय संगीत की शैलियों और रचनाओं की अवहेलना करके हम आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का निर्माण करें? क्या हम प्राचीन परंपरागत संगीत के अस्तित्व को एक स्वप्न की तरह भूलकर उसकी जगह स्वरलिपि वाले किताबी संगीत का निर्माण कर सकते हैं? क्या हम हृदय की गति बन्द हो जाने पर-शरीर को जीवित रख सकते हैं? क्या हड्डियों के ढांचे से ही हम किसी जीव के जीवन का पता चला सकते हैं? हड्डियों का ढांचा तो वैज्ञानिक की प्रयोगशाला की वस्तु है। जब तक उसमें मांस नहीं भरा जायेगा और जब तक उसमें जीवन नहीं फूंका जायेगा वह ढांचा ज़िन्दा कैसे हो सकता है? स्वरलिपि में लिखी गयी संगीत की रचनायें इसी ढांचे के समान है। गुरु अथवा उस्ताद ही इनमें जान फूंक सकता है। संगीत-परंपरा के पैतृक धन को इस आसानी और लापरवाही से बरबाद करने का अधिकार हमको नहीं है। यदि उसको सुरक्षित रखना हमारा धर्म है तो हमको इसके लिए कोई उपाय सोचना चाहिए। किसी धन को संचित रखने के लिए बुद्धि और कुशलता दोनों की आवश्यकता है।

तो इस आधुनिक संगीत की शिक्षा-पद्धति पर विचार करते हुए हम कुछ नतीजों पर पहुंचते हैं। क्या हर आदमी, जो अपनी फ़ीस दे सकता है, संगीत सीखने का अधिकार रखता है? क्या ललित कलाओं को सीखने के लिए किसी विशेष योग्यता अथवा प्रतिभा की आवश्यकता नहीं है? क्या सामान्य संगीत-शिक्षा के लिए भी कुछ आवश्यक नियम जरूरी नहीं हैं? क्या "सब आओ, सब सीखो" वाला संगीत-प्रचार का नारा भ्रान्तिमूलक नहीं है? क्या संगीत ऐसी ललित कला की शिक्षा के कुछ अलग सिद्धान्त नहीं है? क्या यह सम्भव है कि संगीत के क्षेत्र में भी प्रजातांत्रिक भावना का पूर्ण राज्य हो? इन प्रश्नों का उत्तर देने से हम समझ जायेंगे कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की क्या मुख्य आवश्यकतायें हैं ?

प्रायः जो संगीत की शिक्षा इन संगीत विद्यालयों में देते हैं वह संगीत शिक्षक ही होते हैं और उनको हम आम तौर से संगीतज्ञ नहीं कहते। यह शिक्षक संगीत को ऐसे ही पढ़ाते हैं जैसे इतिहास अथवा भूगोल पढ़ाया जाता है। चालीस अथवा पैंतालिस मिनट वाली कक्षाओं में अलग-अलग घण्टों के हिसाब से इस शिक्षा का आयोजन किया जाता है। साल भर के लिए कुछ विशेष रागों को चुना जाता है और उन्हीं में शिक्षा दी जाती है। फिर साल के अन्त में एक परीक्षा भी होती है जिसमें अधिक से अधिक छात्र पास हो जाते हैं और पांच साल के बाद उनको "संगीत-विशारद" अथवा "संगीत-प्रभाकर" की उपाधि भी मिल जाती है। उनकी योग्यता पर छाप लगा दी जाती है कि अब वह शिक्षित गायक अथवा वादक बन गये हैं। इसके बारे में उन्हें किसी और से सीखने की आवश्यकता नहीं होती। अपनी योग्यता पर पूरा संतोष हो जाना और आगे बढ़ने की अभिलाषा न होना—यह भावना एक संगीत विद्यार्थी के लिए हानिकारक और घातक है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले और उपाधि पाने वाले विद्यार्थी आसानी से गायक और वादक बन जाते हैं। ऐसे ही लोग संगीत-शिक्षा का काम भी करते हैं और दूसरों को भी अपनी तरह संगीत के प्रवीण बनाते हैं। यह स्वाभाविक है कि ऐसे लोगों में एक प्रकार की मानसिक संकीर्णता की भावना आ जाती हैं और वह अपने संकुचित क्षेत्र में ही देश भर के संगीत-संसार की कल्पना करते हैं और अपनी संगीत-सेवा और अपने संगीत-प्रदर्शन में पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाते हैं। इस कारण उनके जीवन में संगीत-कला का कोई विशेष प्रोत्साहन बाद में नहीं रहता। हम यहाँ आलोचना नहीं कर रहे है परन्तु यथार्थ की चर्चा कर रहे हैं।

इस वातावरण में शिक्षित समाज में संगीत के विषय में बहुत से मिथ्या और भ्रमजनक विचारों का जन्म भी होता है जिनका पोषण पढ़े-लिखे लोग ही ज्यादा करते हैं। ऐसा होने से आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की वास्तविकता का हमको कोई ज्ञान नहीं होता। कुछ कल्पित तथ्यों को हमने अपना बनाकर रखा है और जिन्हें हम बड़े उत्साह और असाधारण साहस से ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर दुहराते हैं। पहली निर्मूल भावना तो यह है कि उस्तादों की "तालीम" में अव्यवस्था का अधिक अंश होता है और उसका कोई निश्चित सैद्धान्तिक आधार नहीं होता। उत्तम घरानेदार तालीम पर यह दोषारोपण करना बिल्कुल ग़लत है और पम्परागत संगीत के सिद्धान्तों का तिरस्कार और अनादर करना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि स्वर-लिपि के द्वारा दी गई संगीत-शिक्षा को ही हम व्यवस्थित और यथा-क्रम मानते हैं और उसे "वैज्ञानिक" ऐसे विशेषण से सुशोभित करते हैं तो इसका अर्थ तो यही है कि हम पुरानी "तालीम" को अव्यवस्थित और अधूरा ही ठहराते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। यह हमारी भूल है। यह हमारी असहिष्णुता की भावना है। पुरानी तालीम अपने व्यावहारिक और सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण रूप से और सही अर्थ में वैज्ञानिक थी अथवा नियमबद्ध और सच्ची थी। शायद यह कहना गलत होगा कि कुछ बातों में वह हमारी आधुनिक संगीत-शिक्षा से कहीं अधिक वैज्ञानिक थी। उस शिक्षा का बड़ा गहरा सम्बन्ध व्यावहारिक संगीत से था। वह कोई कोरे सिद्धान्तों पर ही अवलम्बित नहीं थी। "तालीम" की पद्धति के अनुसार मारवा और टोड़ी विद्यार्थी को पहले साल में ही नहीं सिखाए जाते थे। दस ठाटों की पहिचान देने के लिए ही ऐसा करना अनिवार्य नहीं होता था। यदि तालीम का प्रारम्भ इमन कल्याण और भैरव में होता था तो क्या वह वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा नहीं थी?

पुरानी तालीम में अविश्वास का दूसरा कारण यह था कि पुराने उस्ताद अथवा गुरु अशिक्षित, अनपढ़े और प्रतिभाहीन होते थे। इस प्रकार की कल्पना से हम पुराने परम्परागत संगीत के उस्तादों और विद्वानों के साथ अन्याय करते हैं। यदि "अनपढ़" शब्द से हमारा अर्थ है कि अमुक व्यक्ति को अंग्रेजी और संस्कृत का ज्ञान नहीं है तो यह परिभाषा भ्रमकारी है और इससे एक बड़ी भूल का प्रचार होता है। हमारे बहुत से पुराने प्रतिष्ठित गायक और वादक अंग्रेजी और संस्कृत नहीं जानते थे मगर वह अपनी बोल-चाल की भाषा जानते थे और उन्हें रागों, स्वरों और तालों का विलक्षण ज्ञान था। उनकी बन्दिशें भी बड़ी चोटी की होती थीं और उनकी असाधारण प्रतिभा का पूर्ण परिचय हमें उनके गायन से मिलता था। तो क्या इस कसौटी से हम इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि हद्दू खां, हस्सू खां, बड़े मुहम्मद खां और मुबारकअली खां ऐसे गायक अशिक्षित गायक थे? क्या संगीत-शास्त्र और स्वर-लिपि को न जानने वाले तानरस खां, गुलाम अब्बास खां, नत्थन खां और ग्वालियर के सितार-वादक अमीर खां अशिक्षित संगीतज्ञ थे? क्या कुदऊ सिंह पखावजिये और निहाल सेन सितार-वादक अशिक्षित थे? क्या लखनऊ के बिन्दादीन जो कथक नाच के अन्वेषक थे और मौजुद्दीन ठुमरी-गायक अशिक्षित कलाकार थे? तो क्या फिर पढ़ा-लिखा, सभ्य गायक जो रागों को बेसुरा और ग़लत गाता है संगीत के क्षेत्र में अशिक्षित गायक नहीं कहलाया जायेगा? क्या किताबों की शिक्षा ही गायक अथवा वादक के लिए अनिवार्य है? क्या बुद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिभा, समझ-बूझ, अनुभव और असाधारण योग्यता संगीत के लिए अधिक आवश्यक नहीं है ? क्या शास्त्रों का ज्ञान सुरीले कण्ठ से अधिक लाभदायक होता है ? क्या स्वर लिपि की मदद से ही हम किसी विद्वान् उस्ताद की चीज को सही ढंग से सीख सकते हैं ? क्या शास्त्रों को न जानना एक गायक का दोष गिना जायेगा ? तो फिर शिक्षित गायक हम किसको कहेंगे ? क्या प्रतिभा और परिश्रम का प्रोत्साहन सबसे बड़ा और प्रभावशाली प्रोत्साहन संगीत-शिक्षा में नहीं होता ? इन सब बातों पर विचार करके हमको ज्ञात हो जायेगा कि जब हम घरानेदार उस्तादों को अशिक्षित कहते हैं तो हम सरासर उनके साथ अन्याय करते हैं। संगीत के क्षेत्र में हम शिक्षित गायक अथवा वादक उसी को कहेंगे जो अपने संगीत की उत्तम और दोषरहित कला को हमारे सामनें प्रतिभाशील ढंग से रखता है और हमें आनन्द पहुंचाता है।

संगीत का व्यापक प्रचार, रेडियो

आकाशवाणी से हिन्दुस्तानी संगीत कई घण्टे प्रसारित किया जाता है। इस कारण रेडियो हमारे संगीत से बहुत सम्बन्धित है। रेडियो ऐसी सरकारी संस्था के दो मुख्य उद्देश्य हैं—मनोरंजन और प्रचार। "प्रचार" शब्द का अर्थ है तरह-तरह की बातों और विचारों का प्रचार जिनका सारे देश से सम्बन्ध है। संगीत मनोरंजन के अन्तर्गत है। एक तरफ तो रेडियो से कुछ बातों का एक विशेप ढंग से अथवा एक विशेष दृष्टिकोण से प्रचार किया जाता है। दूसरी तरफ रेडियो यह भी कहता है कि वह आम जनता का शिक्षक भी है और वह उसकी चेतना को भिन्न-भिन्न स्तरों पर जागृत करता है। इस प्रकार रेडियो के दो प्रधान पक्ष हैं—प्रचार जिसको अंग्रेजी में "प्रौपेगैंडा" कहते हैं और जिसके भी कई प्रकार होते हैं। और दूसरा मनोरंजन और सामान्य शिक्षा। "शिक्षा" शब्द का बहुत बड़ा व्यापक अर्थ है और उसका प्रयोग बहुत से अवसरों पर बहुत सी अलग-अलग बातों के लिए किया जाता है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि आल इण्डिया रेडियो समाज को कैसे शिक्षित बनाता है और उसकी विचारधारा को किस दिशा की ओर ले जाता है।

रही संगीत की बात, इस प्रसंग में यह प्रश्न उठता है कि रेडियो देश के संगीत की किस प्रकार और क्या सेवा करता है ? इसके साथ-साथ एक दूसरा प्रश्न भी पूछा जा सकता है और वह है : क्या रेडियो का संगीत केवल मनोरंजन का साधन है और क्या उससे देश के संगीत की कोई विशेष सेवा भी होती है ? यह प्रश्न इसलिए उठता है क्योंकि रेडियो से प्रतिदिन कई घण्टे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरह-तरह का संगीत प्रसारित किया जाता है। तो क्या इस सारे संगीत का समाज की चेतना पर कोई विशेष प्रभाव पड़ता है ? यह तो हम जानते ही हैं कि इस संगीत के कार्यक्रम को पहले से तैयार किया जाता है। रेडियो का संगीत-विभाग ही इस सारे काम को करता है। इस काम में इस विभाग के मुख्य संगीत सलाहकारों की सहायता हमेशा मिल सकती है। रोज़ के कार्यक्रम बनाने वाले इस संगीत विभाग के कुछ विशेष व्यक्ति ही होते हैं जो तरह-तरह के कलाकारों के संगीत को अलग-अलग ढंग से प्रसारित करते हैं। कलाकारों की इतनी बड़ी संख्या होती है कि निर्णय करना मुश्किल होता है कि किसको इस कार्यक्रम में प्रत्येक मास रखा जाये और किसको छोड़ दिया जाये। प्रोग्राम बनाने वाले व्यक्तियों और उनके ऊपर के सलाहकारों का इसमें बहुत बड़ा हाथ होता है। कुछ कलाकारों की खपत प्रति मास होती है और कुछ को विशेष ढंग से खपाया जाता है। संगीत विभाग इन कलाकारों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में अपनी सुविधा के लिए विभाजित करता है और उनमें से कई कलाकार उसकी दया के पात्र बन जाते हैं और कुछ को यह आदर सौभाग्य अथवा नसीब नहीं होता। आख़िर इस प्रोग्राम को बनाने वाले लोग इंसान ही होते हैं, फरिश्ते तो नहीं होते। उनकी पसन्द और नापसन्द के लिए इस प्रकार के काम में काफी गुंजाइश होती है। किसी विशेष नीति का पालन करना ऐसे वातावरण में असंभव है। इसके पहले कि संगीत का माइक से प्रसारण हो उसे मेजों और फाइलों की सकरी मंज़िलों से गुज़रना होता है। इस संगीत को श्रोता के सामने आने के पहले बहुत कुछ दौड़ना-भागना पड़ता है। और जब वह पका-पकाया संगीत जनता के सामने आता है तो उसमें पहले बहुत से हाथ और बहुत से दिमाग लगाये जाते हैं। किसी ने कहा है कि होटल का गाहक उसके रसोईघर को अन्दर से देखे तो उसे पता चलेगा कि उसका खाना कैसे बनाया जाता है। यही हाल रेडियो के संगीत का है। इस संगीत के शाकाहारी भोजन को बहुत से लोग मिलकर बनाते हैं। कभी-कभी यह भोजन स्वादिष्ट भी बहुत होता है और उसमें कई तरह के मसाले पड़ते हैं।

यह तो हुई और बात। बात जो ध्यान में लाने की है वह यह है कि जो कुछ संगीत रेडियो से प्रसारित किया जाता है वह सुनने वालों के मनोरंजन ही के लिए किया जाता है। इसी कारण रेडियो के प्रतिदिन के संगीत के कार्यक्रम में एक प्रकार की समानता अथवा एकरूपता होती है। वही बातें और वही चीजें बार-बार दोहराई जाती हैं चाहे सुनने वालों की फ़रमाइश हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न हो। शायद यह फ़रमाइश प्रोग्राम बनाने वालों ही की होती है और यह भी बात सही है कि इस संगीत के प्रोग्राम बनाने वाले एक-दो विशेष व्यक्ति ही होते हैं जिनके संगीत-ज्ञान और संगीत-अनुभव पर मुख्य संगीत सलाहकार की सरकारी सील भी लगी रहती है। उनसे ग़लतियों की आशा करना मूर्खता समझी जाती है। उनको निष्पक्ष, निर्लिप्त और तटस्थ समझना ही समझदारी की बात है। उनके सेवा-भाव पर किसी प्रकार की टिप्पणी करना अनुचित समझा जाता है। परन्तु इसके कहने में कोई हर्ज नहीं है कि रेडियो का संगीत मेज़ पर तैयार किया जाता है और उसके तैयार करने वालों में कुछ ऐसे भी होते हैं जिनको न तो संगीत का कोई विशेष ज्ञान है और न उन्हें संगीत से कोई विशेष प्रेम है। वह अपने काम में इतनी ही तत्परता से संलग्न रहते यदि उनको बच्चों अथवा महिलाओं के प्रोग्राम की ज़िम्मेदारी दे दी जाती। संगीत के लिए उनमें कोई विशेष प्रवृत्ति या प्रतिभा नहीं होती। यदि रेडियो के संगीत विशेषज्ञों से यह बात कही जाये तो उनके पास अपने बचाव की बड़ी गुंजाइश है। वह शायद यही कहेंगे कि "रेडियो का काम सरकारी काम होता है। हम संगीत को भी सरकारी काम समझते हैं। उनका दैनिक कार्यक्रम बनाने के लिए हमें किसी विशेष प्रतिभा अथवा योग्यता का व्यक्ति नहीं चाहिए। कोई भी व्यक्ति, जिसमें योग्यता और अनुभव है, इस काम को अच्छे ढंग से कर सकता है। तजुर्बा सब कुछ सिखा देता है। संगीत का बहुत मामूली ज्ञान भी संगीत की फ़ाइल के लिए काफ़ी है। फिर हम जो यहां बैठे हैं। हम सब जगह निगाह रखते हैं। काम ऐसे ही चलता है। आप परेशान न हों।" ऐसे तर्क के बाद कुछ और कहना व्यर्थ है।

रेडियो संगीत का एक ही सिद्धान्त है और वह है अपने सुनने वालों को खुश करना। सुनने वाले जो कुछ सुनना चाहें उन्हें वह सुनाना चाहिए। जो संगीत मनोरंजन का साधन बन सकता है वही उत्तम संगीत है। इसलिए ध्रुपद और धमार से लेकर ग़ज़ल, नात, गीत, भजन और फ़िल्मी गानों तक रेडियो संगीत प्रसारित किया जाता है। जैसे एक फ़िल्म कम्पनी सिनेमा देखने वालों की रुचि पर निर्भर होती है उसी प्रकार रेडियो भी अपने तरह-तरह के सुनने वालों की रुचियों की पूर्ति करता है। उसका काम ही यह है। उसका क्या विशेष सम्बन्ध संगीत की उत्तमता से है? वह उसी संगीत को उत्तम समझता है जिसको उसके सुनने वाले पसंद करते हैं। वह इस झगड़े में नहीं पड़ता कि कौन सा संगीत श्रेष्ठ है और कौन सा निम्नश्रेणी का है। इसी तरह जहां तक रेडियो का सम्बन्ध आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत अथवा देश के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय संगीत से है वहां पर भी उसकी तटस्थ भावना ही दिखाई देती है। वह शास्त्रीय संगीत की थोड़ी-बहुत व्याख्या भी करता है और उसके विविध पक्षों पर एक तरह की संगीत चर्चा भी करता है जिसमें उसके अपने विशेषज्ञों के व्याख्यान और भाषण भी होते हैं और तरह-तरह के विद्वानों से बातचीत भी होती है और इस प्रकार विचार-विनिमय भी होता है। मगर उसकी तटस्थ भावना में कोई अन्तर नहीं आता। वह अपनी विचारधारा में अटल रहता है और अपने दृष्टिकोण को जनता के सामने कभी नहीं रखता। वह सबकी सुनता है और अपनी नहीं कहता है परन्तु सिर्फ़ अपनी करता है।

जिस संस्था में ऐसी तटस्थ भावना होती है और जो किसी विशेष दिशा में अग्रसर नहीं होती और न अपनी नीति का खुले आम प्रचार करती है उसके अपने कोई विचार नहीं होते और न उसके कोई निश्चित सिद्धांत होते हैं। रेडियो यदि केवल एक सरकारी दफ़्तर है जहां पर हर प्रकार के संगीत का आयोजन किया जाता है तो संगीत के विषय में उसकी ठीक-ठीक नीति क्या है? इसका उत्तर रेडियो वाले नहीं दे सकते। वहां के संगीत विशेषज्ञ और सलाहकार भी इस विषय में कुछ नहीं कह सकते। उनकी नीति यही है कि वह अपनी नीति न बतायें। यथार्थ तो यह है कि संगीत के मामले में रेडियो केवल एक प्रकाशक है। वह मौलिक लेखक नहीं है। वह संगीत को छापता है, उसको लिखता नहीं। वह केवल उसको प्रसारित करता है, उसका निर्माण नहीं करता। उसकी अपनी कोई राय नहीं है। रेडियो की राय उसके विचारकों और उसके विद्वानों की राय नहीं है। वह सब प्रकार के विचारों को प्रकाशित करता है परन्तु अपने विचारों को नहीं बताता। वह एक ऐसे दैनिक समाचार पत्र की तरह है जिसमें सब तरह की खबरें और सब तरह के विचार छपते हैं मगर उसमें उसके संपादक के विचार नहीं होते और न उसकी टिप्पणी होती है। इस कारण हमको पता नहीं चलता कि उस समाचार-पत्र की नीति क्या है। यही हाल रेडियो की संगीत-नीति का है। तो इसका अर्थ यही है कि रेडियो अपने संगीत के सलाहकारों की नियुक्ति इसलिए करता है कि उसको उनकी सलाह ठीक लगे और उसके लिए वह सलाह उपयुक्त और लाभदायक भी हो। इस बात में संगीत के हित की कोई बात नहीं है। इसमें केवल रेडियो की संगीत-नीति और उसके अपने हित की बात है। प्रकाशक की ज़िम्मेदारी केवल किताब छापने ही से सम्बन्धित है। प्रकाशक को किताब की उत्तमता से कोई मतलब नहीं। रेडियो सब प्रकार का संगीत प्रसारित करता है। इस बात में वह अपने श्रोताओं का मार्ग-प्रदर्शक नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत क्षेत्र में रेडियो संगीत का फिर क्या विशेष महत्व है ? क्या रेडियो अपने "आडीशन बोर्ड" के विद्वान् और अनुभवी सदस्यों के फ़ैसलों को हमेशा मानता है ? क्या वह उनके विचारों और उनके फैसलों का आदर करता है ? क्या वह अपनी नीति के आगे ऐसे निर्णय और ऐसे परामर्श का तिरस्कार नहीं करता ? क्या वह अपनी संगीत की नीति का किसी क़ीमत पर भी परित्याग कर सकता है ? क्या उसके "नेशनल प्रोग्राम" में कोई विशेष संगीत आयोजित और निर्धारित किया जाता है ? क्या उसका स्तर ऊंचा रहता है ? क्या इस प्रोग्राम का कोई विशेष राष्ट्रीय महत्व होता है ? क्या सब राग सब गायक गा सकते हैं ? क्या प्रतिबन्ध उस गायक पर लगाया जाता है जो मेघ मलार ऐसी रागों को ग़लत और अधूरा गाता है ? रेडियो का अपना फैसला संगीतज्ञों के बारे में क्या है ? क्या उसने कोई विशेष प्रोत्साहन संगीत की उन्नति के लिए दिया है ? शास्त्रीय संगीत की व्याख्या के लिए रेडियो ने कौन से साधन उपलब्ध किये हैं ? क्या रेडियो संगीत के नये निर्माण के लिए नये खून की जरूरत नहीं है ? क्या रेडियो की उन्नति के लिए योग्य और प्रतिभाशील विद्वानों की आवश्यकता नहीं हैं जिनको व्यावहारिक संगीत का भी अनुभव हो ? क्या संगीत-शास्त्र के विद्वानों से रेडियो के व्यावहारिक संगीत को कोई लाभ पहुंच सकता है ? क्या रेडियो कोई विशेष प्रयत्न कर रहा है कि परम्परागत हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति हो ? क्या रेडियो संगीत की जागृति की चर्चा करके संगीत की उन्नति के लिए भी कुछ कर रहा है ? क्या संगीत के विषय में रेडियो व्यक्तिगत एकाधिकार के सिद्धांत का समर्थन नहीं करता है ? तो यदि रेडियो सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना सहयोग देता है तो हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति और उसकी उत्तम व्याख्या के लिए वह क्या प्रयत्न कर रहा है ?

यदि रेडियो इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता तो हमको स्वयं इनका उत्तर देना चाहिए। संगीत का मननशील विद्यार्थी इन प्रश्नों का उत्तर देकर समझ सकता है कि हिन्दुस्तानी संगीत से रेडियो का क्या विशेष सम्बन्ध है और रेडियो इस संगीत के उत्तम प्रसारण के लिए क्या उपाय कर रहा है।

फिल्मी संगीत

रेडियो का 'विविध भारती' का प्रोग्राम इस बात को साबित करता है कि आकाशवाणी शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत का समर्थन केवल अपनी निश्चित सीमाओं के अन्दर कर सकती है। फ़िल्म का संगीत उसके संगीत-प्रसारण का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनिवार्य अंग है और उसको हर तरह रोचक बनाता है। संगीत के क्षेत्र में आम जनता की रुचि को बनाने और बिगाड़ने में फ़िल्मी गानों का बहुत बड़ा हाथ है। प्रश्न यह उठता है कि इन गानों का आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत से क्या सम्बन्ध है ? बीस-पच्चीस वर्ष पहले जब फ़िल्म के संगीत का विस्तार इतना बड़ा नहीं था शायद यह प्रश्न नहीं पूछा जाता था। परन्तु अब इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक हो गया है। उसका विशेष कारण यह है कि आजकल का फ़िल्म का संगीत सीमारहित प्रयोगवाद के पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है। वह संसार के हर प्रकार के संगीत से चाहे वह लोक-संगीत हो या नीग्रो संगीत हो, स्पैनिश धुन हो, या मिस्र और ईरान का संगीत हो या नाचघर का संगीत हो, गिरजे घर का धार्मिक संगीत हो या क़हवे खाने की धुनें हों, गांव देहात का संगीत हो या पाश्चात्य का हर प्रकार शुद्ध और अशुद्ध संगीत हो या और संगीत हो, अच्छा या बुरा, सभ्य या असभ्य, भौंड़ा या अपरिमार्जित, भावुक या कामुक, सात्विक या वासना-उत्तेजक, ऊंचा या नीचा—सबसे उधार मांगता है और सबके आगे अपना हाथ फैलाता है। अब उसके आत्म-अभिमान का अंत हो गया है। अब वह विद्रोह की भावना से, लज्जा और संयम को त्याग करके जहां से चाहता है अपनी तर्जों और धुनों की सामग्री को लाता है और उसे अपनी जायदाद बनाता है। फ़िल्म के संगीत को अब कोई संकोच नहीं होता कि वह कहां चोरी करता है और कहां डाका मारता है। संसार की संगीत शैलियों और धुनों को वह खंगाल कर रख देता है। उसके भड़कीले वस्त्र पर तरह-तरह के थिगड़े लगे होते हैं। मगर वह बड़ी निर्लज्जता से, अजीब हिम्मत और मर्दाना हिसाब से, पूरी दिलेरी से और बड़े गर्व से अपने उधार के कपड़े पहन कर बाहर निकलता है और दुनिया की परवाह नहीं करता। जब कोई इस संगीत से कहता है "तुम्हारे पास चोरी और उधार का माल है", तो वह तड़ाक से उत्तर देता है, "यह मेरे ही बुने और सिले कपड़े हैं, किसी और के नहीं हैं।" ऐसा कहकर वह अपनी किसी नई धुन को दुहराता है और किसी नाचघर में घुस जाता है।

फ़िल्मी गाने और तर्जें बनाने वाले फ़िल्म के संगीतकार जो अपने को संगीत के किसी विद्वान् से कम नहीं समझते, रात-दिन इसी उधेड़बुन में रहते हैं कि तरह-तरह की विचित्र धुनों का आविष्कार करें जो बिल्कुल नई हों और जो पहले कभी न गाई गई हों। इन धुनों के संगीत का नाम रखना असम्भव होता है। इनके मिश्रित स्वरों के विचित्र निर्माण में जो दिमाग लड़ाया जाता है इससे बहुत से और दिमागों की कसरत का पता चलता है जिससे हर प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का असली, नकली और हर तरह का संगीत रोज सुबह-शाम बना करता है जो एक पहेली बनकर रह जाता है।

फ़िल्म के संगीत की भावना शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत के प्रति क्या होती है? इसका उत्तर केवल यह है कि फ़िल्मी दुनिया के संगीत को इस देश के प्राचीन संगीत के लिए किसी प्रकार की श्रद्धा का भाव नहीं है। वह शास्त्रीय संगीत की मनमानी चोरी करता है और उससे लाभ उठाकर फिर उसी का विरोध भी करता है। आज इस देश में फ़िल्मी संगीत ही हमारे देश के संगीत का सबसे बड़ा विरोधी है और उसकी सबसे भयंकर प्रतिक्रिया है। वह अपनी अराजकता की सीमाओं को लांघ चुका है और वह अब दिन दहाड़े हिन्दुस्तानी संगीत के घर में घुसकर डाका मारता है और उसको भद्दा और बदशकल बनाने में कोई कसर नहीं रखता। इस प्राचीन परंपरागत संगीत के साथ वह हंसी करता है और उसका मज़ाक उड़ाकर उसका खुलेआम अनादर भी करता है। वह रागों के स्वरों के साथ मनमानी करता है, अन्याय करता है और उनको बिगाड़ कर और उनके साथ खेलकर उन्हें जिस तरह चाहे बदलता और बिगाड़ता है। वह शास्त्रीय संगीत का समर्थन और आदर नहीं करता। वह केवल उसको अपने मतलब और स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करता है। और जिस ढंग से चाहता है रागों के स्वरों का असभ्य और अश्लील उच्चारण भी करता है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि फ़िल्म के संगीतकार शास्त्रीय संगीत को जनता के सामने बड़ी खूबी से ला रहे हैं। यह मिथ्या विचार है और लोगों को इससे धोखा होता है। इन संगीतकारों से एक ही प्रश्न पूछना है और वह यह है; जब तुम शास्त्रीय संगीत को ठीक तरह से नहीं जानते हो तो अपने "प्ले बैक गायकों से जान-बूझकर गलत रागों को और बिगड़ी हुई रचनाओं को क्यों गवाते हो? तुमको ऐसा करने के लिए यह जन्मसिद्ध अधिकार किसने दिया है?" क्या इस प्रश्न का उत्तर हमें मिल सकता है? कभी नहीं। सवाल उठता है कि क्या जरूरत थी कि राग हमीर में रफ़ी से एक रचना को गवा कर—"मधुवन में राधिका नाचे", इस राग की मर्यादा का अनादर किया जाता? क्या वह दूसरा व्यक्ति, जो उसमें ताने लेता है, राग हमीर की तानें लेता है? तो फिर ऐसे भद्दे राग प्रदर्शन की क्या आवश्यकता थी? फिर गायकों के पुरानी रचनाओं का संहार करने से और खून करने से इन संगीत के बददिमाग विशेषज्ञों को क्या मिलता है? क्या हम अपने हज़ारों और लाखों दर्शकों और श्रोताओं को—शास्त्रीय संगीत का धोखा देकर उन्हें खुश करना चाहते हैं? यदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन रागों का इस्तेमाल इसीलिए कियां जाता है तो वह उनका रोजगार करते हैं और उनसे नाजायज फ़ायदा उठाते हैं। ऐसी आलोचना की जरूरत इसलिए है क्योंकि यह ढोंग की फ़िल्म वाले हिन्दुस्तानी संगीत का प्रचार कर रहे हैं, सरासर झूठ है और यह केवल उनके पाखण्ड का एक नमूना है।

फ़िल्म के संगीतकारों का यह सौभाग्य है कि यदि वह चाहते तो हिन्दुस्तानी संगीत की उचित सेवा करते। परन्तु उन्होंने ऐसे अवसर को खो दिया। जब तक वह अपनी इस भूल को नहीं पहचानेंगे तब तक वह शास्त्रीय संगीत का सही और सच्चा प्रसारण किसी कीमत पर नहीं कर सकते। वह केवल उसका संगठित विरोध ही करते हैं।

संगीत-सम्मेलन

यदि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के व्यापक प्रचार का माध्यम बनने का सौभाग्य रेडियो और फिल्म को है तो इसी तरह हमारे देश के संगीत-सम्मेलनों से भी हिन्दुस्तानी संगीत काफी प्रसारित किया जाता है। परन्तु संगीत-सम्मेलनों की कल्पना करते हुए हमें अपने देश के पुराने चोटी के संगीत-सम्मेलनों की याद ताजा हो जाती है। बड़ौदा, बनारस और लखनऊ के शानदार संगीत-सम्मेलन, जो उन्नीस सौ पच्चीस तक आयोजित किये गये थे, उन सबके चित्र आंखों के सामने आ जाते हैं। उन्नीस सौ चौबीस के पहले आयोजित किया गया संगीत-सम्मेलन धुरन्धर गायकों और वादकों के संगीत से सुशोभित था। इसी की एक गोष्ठी में जब बड़ौदे के प्रसिद्ध ख्याल-गायक फ़ैयाज खां अपने ख्याल-गायन के पहले राग मुलतानी आलापे और उसी राग में एक धमार की रचना भी गाये तो अलवर के सुविख्यात ध्रुपद-गायक दोनों भाई अलाबन्दे खां और जाकिरुद्दीन खां चौंक पड़े। जाकिरुद्दीन खां के मुंह से यह शब्द निकले कि "मालूम पड़ता है फैयाज खां से कोई अंग छूटेगा नहीं।" और यह कहकर उन्होंने फैयाज खां की विलक्षण प्रतिभा की बहुत प्रशंसा की। एक ख्याल-गायक के कण्ठ से आलाप सुनकर लोग अचम्भे में आ गये। यह वह जमाना था जब प्रशंसा सच्ची और स्वाभाविक होती थी और उसमें कोई बनावट अथवा ढोंग नहीं होता था।

उसके बाद के उन्नीस सौ चौबीस और उन्नीस सौ पच्चीस वाले संगीत-सम्मेलनों की भी याद आती है जो अपने ढंग के निराले थे। मथुरा के स्वर्गीय चन्दन चौबे का भावुक गायन, बनारस के बीरू मिश्र का तबला, रामपुर के फ़िदाहुसेन सरोदिए का सरोद, बड़ौदे के फ़ैयाज खां की बेजोड़ गायकी, रामपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और मैहर के बैंड, अलाबन्दे खां और जाकिरुद्दीन खां का आलाप और ध्रुपद; लखनऊ के आबिद हुसैन का तबला, टीकमगढ़ के एक पखावज-वादक की पखावज और प्रयाग के सुप्रसिद्ध मुनीम जी का निराला हारमोनियम-वादन—यह सब अभी भी आंखों के सामने एक बार फिर आ जाते हैं।

उन्नीस सौ तीस से उन्नीस सौ पचास तक भी अच्छे-अच्छे संगीत-सम्मेलन इलाहाबाद, गया, कलकत्ता, बनारस, मुजफ्फरपुर, देहली और लखनऊ में हुए जिनमें थोड़ी-बहुत संगीत-चर्चा भी हुई। इसके बाद तो संगीत-सम्मेलनों की ऐसी भरमार हुई कि छोटी-छोटी जगहों में भी लड़ाई के जमाने से लेकर अधिक काल तक इस प्रकार के संगीत-सम्मेलन आयोजित किये गये। बांदा, मैनपुरी, इटावा, सीतापुर और रायबरेली और उन्नाव ऐसे छोटे शहरों में भी अच्छे संगीत-सम्मेलन आयोजित किये गये। इनमें अच्छे-अच्छे कलाकारों ने भाग लिया और हजारों की तादाद में श्रोता आये। बरेली, मेरठ, और गोरखपुर ऐसे शहरों में भी इस प्रकार के सम्मेलनों का अच्छा आयोजन किया गया और लोगों का अच्छा-अच्छा गाना-बजाना सुनने को मिला। अब तो इलाहाबाद के संगीत-सम्मेलनों का नाम भी सुनने में नहीं आता। बम्बई के शानदार संगीत-सम्मेलन तो अब स्वप्न बनकर रह गये हैं। केवल कलकत्ते के संगीत-सम्मेलनों की प्रथा का अभी तक अन्त नहीं हुआ है।

इन संगीत-सम्मेलनों की सफलता का श्रेय बहुत कुछ उनके आयोजन करने वालों पर होता था। उनके व्यक्तित्व की छाप उन पर होती थी। बहुत से गायक और वादक इनसे अथवा उनके नामों से भली-भांति परिचित थे। लोग अक्सर कहा करते थे "अमुक की कानफ्रेन्स" और उनका नाम लेते थे। कलकत्ते के भूपेन घोष और लाला बाबू को लोग अब तक याद करते हैं। मेरठ, बरेली और इलाहाबाद के श्री महेश्वरीदयाल को लोग अब तक याद रखते हैं। इलाहाबाद के बाबू बैजनाथ सहाय और डाक्टर भट्टाचार्य को भी लोग अब तक याद करते हैं। इन व्यक्तियों का सम्पर्क संगीतज्ञों से था और वह एक दूसरे से बहुत परिचित थे। यही कारण था कि इन संगीत-सम्मेलनों के वातावरण में भी मेल-जोल और सहृदयता की भावना थी।

परन्तु आजकल दो-एक संगीत-सम्मेलनों को छोड़कर, बाक़ी संगीत-सम्मेलनों का उद्देश्य कुछ और होता है। हम यहां रेडियो संगीत-सम्मेलन का उदाहरण लेते हैं। इस संगीत-सम्मेलन का दृष्टिकोण कुछ दूसरा ही है। इसका उद्देश्य अथवा लक्ष्य केवल मनोरंजन ही होता है। आजकल के और संगीत-सम्मेलनों की तरह रेडियो संगीत-सम्मेलन भी अपने श्रोताओं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोरंजन की बात को सबसे पहले सोचता है। रेडियो संगीत के संगठक अथवा आयोजक इस संगीत-सम्मेलन को केवल मनोरंजन ही का साधन बनाते हैं। यदि इसमें परोक्ष रूप से संगीत शिक्षा की भी कोई भावना होती है तो उसमें भी एक सामूहिक प्रणाली का ही प्रयोग किया जाता है। शिक्षा का आवरण पहन कर रेडियो का संगीत मनोरंजन के सिद्धान्त ही का प्रचार करता है। जो सिद्धान्त फिल्म के संगीत पर लागू होता है वही सिद्धान्त रेडियो संगीत के संगीत पर भी लागू होता है। जिस सरकारी संस्था का ध्येय केवल श्रोताओं का मनोरंजन होता है वह उनकी रुचि के स्तर को ऊंचा करने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं कर पाती। यदि रेडियो से संगीत का ध्येय शैक्षिक प्रसारण नहीं हो सकता और केवल मनोरंजन ही उसका ध्येय है तो श्रोताओं की रुचि जहां है वहीं स्थिर रहेगी। रेडियो अपने विविध भण्डार से तरह-तरह के संगीत को निकाल अपने श्रोताओं को सुनवाता है और उनके मनोरंजन का पूरा प्रबन्ध करता है। यह संगीत का कार्यक्रम तलाऊपर होता है और उसमें कोई विशेष प्रकार का निदेश नहीं होता। सस्ते भावुक संगीत से लेकर नीरस गम्भीर संगीत तक इस प्रसारण का विस्तार होता है। इसको यदि हम संगीत-सम्मेलन न कहकर संगीत-समारोह कहें तो अधिक उपयुक्त होगा और उसमें 'सम्मेलन' की ग़लत भावना न होगी।

आजकल के संगीत-सम्मेलन संगीत की नुमाइश अथवा तीन दिन वाले सरकस के समान है। उसके विविध भण्डार में तरह तरह की संगीत की शैलियां और धुनें और तर्जें पड़ी रहती हैं। इस दो दिन के अथवा तीन दिन के संगीत के आम मेले में संगीत-चर्चा का कोई स्थान नहीं होता। संगीत के विषय में किसी प्रकार के विचार-विनिमय की इसमें कोई गुंजाइश नहीं होती। आयोजकों को सबसे बड़ी चिंता इस बात की होती है कि अधिक से अधिक टिकट कैसे बिकें। यदि संगीत के साथ आमदनी का प्रश्न भी उठता है तो वह बिना संकोच के फिल्म की किसी अभिनेत्री को बुला लेते हैं जिसकी सूरत उसके संगीत से ज्यादा भली होती है। ऐसे सम्मेलनों को हम किसी पंसारी की दूकान ही कह सकते हैं। यहां फ़िल्मी गानों से लेकर ध्रुपद तक गाया जाता है और सरोद से लेकर जलतरंग तक बजाया जाता है। लम्बे-लम्बे भाषणों के साथ-साथ ऐसे सम्मेलनों में कार्यक्रम से संबन्धित सूचनायें भी भावुक, संस्कृत-गर्भित भाषा में दी जाती हैं और कलाकारों की प्रशंसा में रंगीन विशेषणों का प्रयोग किया जाता है। गायन और वादन के प्रोग्राम के साथ ऐसे सम्मेलनों में नृत्य के भी कई प्रकार अभिनय होते हैं। भरत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यम, कथाकली, मनीपुरी और कथक के अलावा कामुक भावना को उत्तेजित करने वाले भी बहुत से नाच होते हैं जिनको देखकर दर्शक बार-बार तालियां बजाते हैं। प्रतिदिन संगीत का कार्यक्रम सुबह सात बजे तक चलता है और दस बजे दिन से लेकर तीन बजे दिन तक फिर इसी प्रकार का प्रोग्राम लोगों को सुनवाया जाता है। लोगों के अलावा कलाकारों की भी भीड़ होती है जिनसे पत्रकार भेंट करते हैं और उनमें से कुछ के चित्र भी लेते हैं।

तो फिर इस चौबीस घण्टे के तलाऊपर संगीत के कार्यक्रम के बाद किसको समय मिल सकता है कि संगीत की सारगर्भित चर्चा भी करे? गायकों और वादकों को छोड़कर संगीत के विद्वानों को भी यदि रात में नींद नहीं मिलती है तो वह दिन में ऊंघते हैं। उनके पास न समय है और न रुचि है कि संगीत के गम्भीर प्रश्नों पर विचार-विनिमय करें। यही आयोजकों का हाल है। वह भी दूसरा कार्यक्रम बनाने में इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें संगीत-चर्चा ऐसी फ़िज़ूल बात सूझती ही नहीं। उनको क्या पड़ी है कि वह ऐसी बात छेड़ें? वह यह खूब जानते हैं कि न तो श्रोताओं का इस ओर ध्यान है और न गायकों और वादकों का। दो-चार विद्वान् भी अगर यहां होते हैं तो वह अपनी आवाज़ इस विषय में उठा कर क्या करेंगे? सम्मेलन का वातावरण ही ऐसा होता है कि इस प्रकार की संगीत-चर्चा का उसमें कोई स्थान नहीं होता।

तो फिर इन सम्मेलनों को 'कान्फ्रेंस' के नाम से क्यों पुकारा जाता है? यदि यह संगीत-सम्मेलन केवल संगीत के मेले हैं तो उनके दो ही उद्देश्य हो सकते हैं—मिलना-जुलना और सब तरह का संगीत सुनना। तो फिर लोगों को इन सम्मेलनों में हिन्दुस्तानी संगीत कला के चत्मकारों पर बड़े-बड़े भाषण क्यों दिये जाते हैं? इन भाषणों में गंधर्वों, शिव, नारद, सरस्वती, हरिदास स्वामी, तानसेन, बैजूबावरा, नायक गोपाल और शारंगरव की चर्चा क्यों छेड़ी जाती है? इसके अलावा कलाकार और समाज, संगीत और भक्ति, संगीत और मोक्ष, संगीत और राष्ट्रीय संस्कृति, संगीत और आधुनिक शिक्षा ऐसे विषयों पर टिप्पणी क्यों की जाती है? इस बात की क्या आवश्यकता है जब इन प्रश्नों के बारे में विचार-विनिमय और वाद-विवाद का कोई आयोजन नहीं किया जाता? कभी-कभी किसी ऐसे संगीत सम्मेलन का उद्घाटन किसी विद्वान् से कराया जाता है जो अपने भाषण में कला के विषय में बड़ी महत्वपूर्ण बातें कहता है। वह सौंदर्य बोध-शिक्षा और सौंदर्य गुण विवेचन ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयों पर अपने विचार प्रकट करता है। और मनुष्य की सौंदर्य बोध-शक्ति और उसके सौंदर्योपभोग के बारे में भी कुछ गहरी बातें कहता है। इस प्रकार वह अपने भाषण में सौंदर्य शास्त्र पर अद्भुत प्रकाश डालता है। उसके भाषण पर इस संगीत सम्मेलन के आयोजक और उसकी सलाहकारी समिति के सदस्य फूले नहीं समाते और सबसे पहले तालियां बजाते हैं। दूसरे दिन सुबह समाचार-पत्रों में इन भाषण पर एक, लम्बी टिप्पणी निकलती है और आयोजकों को ऐसे संगीत के आयोजन पर बधाई भी दी जाती है। साथ-साथ मंच पर सुनाये गये संगीत के कार्यक्रम की भी बड़ी प्रशंसा की जाती है। इस सबके साथ राज्यपाल का सन्देश भी छापा जाता है और कुछ विशेष कलाकारों के, जिनमें लड़कियां अधिक होती हैं, चित्र भी दिये जाते हैं। सम्पादक प्रधान आयोजक को बधाई देते हुए जनता की ओर से उन्हें धन्यवाद भी देता है। तीन दिन तक समाचार-पत्र इसी संगीत-सम्मेलन की ख़बरों से भरे रहते हैं। यहां तक कि लोग पाकिस्तान के प्रधान मंत्री भुट्टो की बकवास को भी नहीं पढ़ते और संगीत के आनन्द ही में डूबे रहते हैं। आयोजकों के लिए इस संगीत सम्मेलन ने बड़ी शानदार सफलता प्राप्त की। श्रोताओं और दर्शकों के दृष्टिकोण से भी यह संगीत-सम्मेलन तीन दिन के मनोरंजन का विराट् साधन बना। कलाकार भी अपने संगीत-प्रदर्शन से बहुत सन्तुष्ट हुए और उनको अपनी फीसों पर बहुत संतोष था। शिकायत केवल हिन्दुस्तानी संगीत को थी कि उसके बारे में किसी ने कुछ नहीं पूछा। वह आकर फिर चला गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय सात

हिन्दुस्तानी संगीत के कुछ विशेष घराने

घराना

"घराना" किसको कहते हैं ? घराने की क्या विशेषतायें हैं ? इस प्रकार के प्रश्नों का सही उत्तर देना आवश्यक है। लोग प्रायः घराने क्या है नहीं समझते। अक्सर हम लोगों को "घरानेदार गवैया", "घरानेदार गायकी" ऐसे शब्दों को कहते सुनते हैं मगर शायद वह उनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं जानते। कभी-कभी यह भी प्रश्न उठता है कि संगीत कला से और संगीत परम्परा से घरानों का विशेष सम्बन्ध है ? लोग यह भी कभी-कभी पूछते हैं कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का घरानों से क्या सम्बन्ध है ? ऐसे प्रश्न स्वाभाविक हैं। आजकल संगीत-प्रचार, संगीत-शिक्षा और संगीत-प्रदर्शन के साधन कुछ और हो गये हैं। साथ-साथ संगीत का दृष्टिकोण भी बहुत कुछ बदल गया है। आधुनिक संगीत शिक्षा के सन्दर्भ अथवा प्रसंग में "घराना"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और "तालीम" ऐसे शब्द किसी अनजानी, विदेशी भाषा के शब्द लगते हैं जिन्हें आजकल का संगीत–विद्यार्थी नहीं जानता है। यह शब्द उसके कानों को अजीब लगते हैं। उसे यह भी कभी-कभी बताया जाता है कि वह जो संगीत-शिक्षा पा रहा है वह "तालीम" ऐसी अपरिष्कृत पुरानी शिक्षा-प्रणाली की प्रतिकारक है और उसका शोधन और विशुद्ध रूप भी है। रही "घराने" की बात उसको आजकल के संगीत-शिक्षक एक पुरानी अप्रचलित प्रथा कहकर ही छोड़ देते हैं। और यदि उनसे कोई विद्यार्थी "परम्परा" शब्द का अर्थ पूछ बैठता है तो वह उसको केवल अन्धविश्वास कहकर ही छोड़ देते हैं। यह सब देखकर ऐसा लगता है कि इस प्रकार की मिथ्या धारणा का विरोध और खण्डन करना बहुत आवश्यक हो गया है। आजकल आधुनिक संगीत-शिक्षा प्रणाली और पुरानी "तालीम" के बीच की खाई को भरा नहीं जा रहा है परन्तु उसे और चौड़ा किया जा रहा है। यदि हमारी आधुनिक विचारधारा "तालीम" और "परम्परा" ऐसी चीजों का खण्डन और विरोध करती है तो "घराना" शब्द की व्याख्या करना भी असम्भव लगता है।

इस कारण बहुत से लोगों के लिए घराना एक पहेली ही बनकर रह गया है। साहित्य में घराने नहीं होते। चित्रकारी और शिल्पकला के भी घराने नहीं होते, केवल 'स्कूल' होते हैं जिनका अर्थ होता है कलाकारों का समूह जो कला की किसी विशेष परम्परा अथवा शैली के अनुयायी होते हैं। घरानों की कल्पना बिल्कुल दूसरे ढंग की है। घराना का अर्थ है एक कुटुम्ब अथवा परिवार के लोग और सम्बन्धी जिनका आपस में खून का रिश्ता होता है और जो अपने घराने की प्रतिष्ठा और उसके आदर को बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। इस प्रत्यय अथवा सिद्धान्त की यही विशेषता है कि केवल संगीत ऐसी ललित कला ही में घराने होते हैं और किसी कला में घराने नहीं होते।

इसके अलावा यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि गायकों के घराने होते हैं परन्तु प्रत्येक गायन-शैली के घराने नहीं होते। किसी ने कभी यह नहीं सुना है कि भाव-गीत, लावनी, नाट्यसंगीत अथवा ठुमरी के भी घराने होते हैं। पूरब अंग की ठुमरी में लखनऊ अंग और बनारस अंग दो अलग-अलग शैलियां होती हैं। परन्तु ठुमरी के घराने नहीं होते। पंजाब अंग की ठुमरी, जो तीसरी नई ठुमरी की शैली है, वह भी ठुमरी गाने का एक विशेष ढंग है। उसका भी कोई अपना घराना नहीं है। इसी प्रकार वाद्य संगीत में भी "बाज" होते हैं परन्तु साथ-साथ कुछ वाद्यों के जैसे वीणा, सरोद, सितार, पखावज, तबला इत्यादि के घराने भी हुए हैं। परन्तु सच तो यह है कि गवैयों ही के घराने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं जिनमें ख्याल के घरानों की संख्या सबसे अधिक है। ध्रुपद-गायकों के भी घराने हुए हैं जैसे बहराम खाँ का घराना, सेनियों का घराना, बंगाल का ध्रुपद घराना, दरभंगे का ध्रुपद घराना इत्यादि। परन्तु इन घरानों की संख्या बहुत कम है और न होने के बराबर है।

सबसे अधिक संख्या ख्याल के घरानों की है। इसलिए "घराना" शब्द ज्यादातर ख्याल-गायकों पर ही अधिक लागू होता है। मगर पूछा जा सकता है कि ऐसा क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर देते समय हमें एक विशेष बात को ध्यान में रखना चाहिए वह यह है कि पुरानी संगीत शिक्षा "गुरु-शिष्य" अथवा "उस्ताद-शागिर्द-सम्बन्ध ही में केन्द्रित थी। एक गुरु का एक समय एक ही शिष्य होता था और वह उसको ही अपनी विद्या देता था। इसका क्या विशेष कारण था यह भी हमें समझना चाहिए। संगीत की गायन-कला का उपादान अथवा उसकी सामग्री कण्ठ अथवा आवाज़ है और उसका साधन स्वर हैं। इन दोनों सहयोग से जिस संगीत का जन्म होता है उसमें निरन्तरता अथवा अविच्छिन्नता की भावना होती है। इन दोनों बातों को अलग-अलग समझना चाहिए। "स्वर" शब्द का अर्थ गाने वाली आवाज़ है जो बोलने वाली आवाज़ से अलग होती है। गुरु अपने शिष्य की स्वरों को उच्चारण करने वाली आवाज़ को धैर्य और मेहनत से तैयार करता और इसमें काफी समय भी लग जाता है। कभी-कभी इस प्रकार की साधना में कई वर्ष लग जाते हैं। यह तालीम का अनिवार्य अंग होता था। आधुनिक सामूहिक संगीत शिक्षा में इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है और न दिया जा सकता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए आधुनिक संगीत शिक्षा-प्रणाली में कोई स्थान नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से यह एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है। पहले खून और नस्ल के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संगीत की जीवित परम्परा पहुंचायी जाती थी। इस प्रकार संगीत-विद्या पैतृक, मौरूसी पुश्तैनी, वंशगत अधिकार के समान बन जाती थी। यह बात केवल व्यावहारिक संगीत पर लागू होती थी जो एक परिवार की आने वाली पीढ़ियों की सम्पत्ति बन जाता था। संगीत की चेतना की प्रक्रिया के सहारे इन घरानों के माध्यम से परम्परा अपने क़दम आगे बढ़ाती जाती थी। घराने ही परम्परा के पोषक थे।

आवाज़ शरीर-क्रियात्मक तत्व है। जितने प्रकार के मनुष्य हैं उतनी ही प्रकार की आवाज़ें हैं। एक की आवाज़ दूसरे की आवाज़ से बिल्कुल नहीं मिलती है। एक आवाज़ का गठन, उसका वज़न और उसकी स्वरिता और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवाज़ों के बिल्कुल अलग होते हैं। प्रत्येक गायक की आवाज के स्वरों के सवांज और आभूषण और उसके सिंगार अलग होते हैं और उनका प्रभाव भी श्रोताओं पर अलग अलग पड़ता है। किसी आवाज में गम्भीरता होती है तो किसी आवाज़ में भावुक चंचलता होती है। किसी की आवाज में मधुर 'कन' होते हैं तो किसी की आवाज़ में जिसे कहते हैं 'पत्ती' लगती और वह कानों को बहुत अच्छी लगती है। कुछ आवाज़ों में एक प्रकार का खटका होता है और कुछ में स्वाभाविक लोच अथवा मिठास। कभी-कभी आवाज से गायक के व्यक्तित्व का भी पता चलता है। कुछ आवाज़ें खड़ी-खड़ी, नीरस भी होती हैं और कुछ स्वाभाविक रूप से बड़े सुर में भीगी हुई आवाजें होती हैं। यह भी सच है कि गाने वाली आवाज़ में बोलने वाली आवाज़ के भी कुछ लक्षण होते हैं।

एक ही घराने में एक आवाज़ से दूसरी आवाज तक संगीत पहुँचाने का काम बहुधा दुष्कर होता है। यह आवाजें अलग-अलग होती हैं। गुरु को अपने शिष्य की आवाज बनाने में काफी समय लगता है। कभी-कभी कई वर्ष लग जाते हैं। तभी यह सम्भव हो सकता है कि गुरु की आवाज के गुण शिष्य की आवाज़ में बिठा दिये जायें। संगीत ही में इस प्रकार के प्रशिक्षण में गुरु-शिष्य सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ और गहरा होता है। विना इस प्रकार के सम्बन्ध के उत्तम संगीत-शिक्षा सम्भव नहीं हो सकती। क्या आधुनिक संगीत-शिक्षा में कक्षा के दस विद्यार्थियों के साथ आजकल के शिक्षक में इस प्रकार की गुरु-शिष्य सम्बन्ध की भावना हो सकती है? हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परागत गायन-शैली को छोड़कर और किसी संसार की संगीत-कला अथवा ललित कला में इस प्रकार के सम्बन्ध का महत्व नहीं है। पाश्चात्य की कला में परंपरा और शैली के अनुसार कला के अलग-अलग मत हुये हैं जिनमें कलाकारों ने लगन और साहस के साथ भाग लिया है और काम भी किया है चाहे इन विभिन्न शैलियों के नाम रियलिज्म, इम्प्रैशनिज्म, क्यूबिज्म, फ्यूचरिस्ट आदि, पर डाडाइज्म या कुछ और रहे हों। मगर इस प्रकार के गुरु-शिष्य सम्बन्ध की भावना न तो वहाँ के साहित्य, न संगीत और न वहाँ की कला में भी। यह तो हमारी प्राचीन-शिक्षा-पद्धति ही की अनन्यता थी कि ऐसा गुरु-शिष्य सम्बन्ध प्राचीन काल में स्थापित किया गया। ज्ञान और विद्या की शिक्षा इसी प्रकार दी जाती थी चाहे अध्ययन का विषय कुछ हो—भक्ति, ज्ञान, साधना, दर्शन, काव्य, व्याकरण, कला अथवा साहित्य। "तालीम" इसी मूल सिद्धान्त पर आधारित थी। आश्चर्य इस बात का है कि विद्वान् और प्रतिभाशील घरानेदार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायकों ने इस प्राचीन प्रथा का पालन उस काल से लेकर अब तक किया है। वह भारतीय शिक्षा के इस प्राचीन सम्बन्ध को कभी नहीं भूले। आधुनिक संगीत-शिक्षा के नये-नये साधनों के आविष्कार के बाद भी वह इस पुरानी प्रथा का ही पालन करते रहे हैं। बड़ौदे के स्वर्गीय उस्ताद मौलाबक्श को छोड़ कर किसी और उस्ताद ने इस देश में स्वर-लिपि और आधुनिक संगीत-शिक्षा में कभी कोई रुचि नहीं दिखाई। वह "तालीम" की शिक्षा-पद्धति के ही अनुयायी अब तक रहे हैं और रहेंगे। संगीत में इस गुरु-शिष्य सम्बन्ध ने घरानेदार संगीत को स्थापित करने में और उसका निर्माण करने में बहुत ही बड़ा काम किया है जिसको हम कभी भुला नहीं सकते।

यहां पर यह बात बताना भी आवश्यक है कि घरानों में आवाज़ को बनाने का रिवाज हमेशा रहा है। आवाज़ कैसे अच्छी बनाई जाये इस पर घरानेदार गायकों ने हमेशा ध्यान दिया है। विद्वान् गायकों ने कण्ठ को बनाने में स्वर प्रशिक्षण पर काफी जोर दिया है जिससे सम्बन्धित उनका सौंदर्य-बोध प्रशिक्षण भी रहा है। पाश्चात्य के संगीत में भी गला बनाने का रिवाज रहा है। हमारे संगीत में भी स्वर-प्रशिक्षण का सम्बन्ध स्वर-नियंत्रण से रहा है और इसी कारण स्वर उच्चारण के महत्व को गायकों ने हमेशा समझाया है। इसी तरह जब कुछ तरुण विद्यार्थियों की आवाजें "डोक" में आ जाती हैं तो अनुभवी गायक इन आवाज़ों को डोक से निकालकर बनाता है और संगीत के लिये उपयुक्त बनाता है। इस प्रसंग में गुरु अपने शिष्य को "रियाज़" करना सिखाता है। 'तालीम', 'रियाज' और 'मेहनत' यह शब्द पुरानी तालीम की शिक्षा-पद्धति के शब्द हैं जो अभी भी प्रयोग में लाये जाते हैं। रियाज़ ही से गला बनता है और गले में "रोशनी" पैदा होती है। इसी से स्वरों में ठहराव पैदा होता है और चमक भी पैदा होती है। आधुनिक संगीत-शिक्षा में रियाज़ के मूल सिद्धान्त पर बहुत कम ज़ोर दिया जाता है और इस तरह तालीम के सैद्धान्तिक आधार का भी परित्याग किया जाता है। जैसे पहले कहा गया है, हम इस बात पर ज़ोर देते हैं कि आधुनिक संगीत-शिक्षा को "तालीम" के मूल सिद्धान्तों से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाना चाहिए और उदासीनता की भावना को दूर करना चाहिये। रियाज़ ही एक चीज है जिससे गला बनता है और गले में रोशनी पैदा होती है। जब तक शिष्य के गले में रोशनी नहीं आती तब तक गुरु अपने परिश्रम को नहीं छोड़ता और न शिष्य अपने अभ्यास में कमी करता है। गला बनाने में गुरु और शिष्य दोनों का हाथ होता है। शिष्य से अधिक गुरु परिश्रम करता है। परन्तु आजकल यह ज़रा कम होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत के कुछ विद्वानों का विश्वास है कि स्वर के चारों तरफ़ एक ज्योतिष्मान क्षेत्र होता है जिसको हम प्रभामण्डल के नांम से पुकार सकते हैं और जिसको अब अंग्रेजी में "हैलो" कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जिसको हम स्वर कहते हैं वह एक प्रकार की काल्पनिक रेखा के समान है जो इस क्षेत्र के बीचो बीच खींच दी गयी है। कभी-कभी कोई गायक इस रेखा के ऊपर या नीचे स्वर के कणों को उच्चारित करता है। इन कणों की सहायता से उस स्वर का उच्चारण और भी मधुर हो जाता है। किसी भी स्वर के कण उस सप्तक के चढ़े और उतरे स्वरों से बिल्कुल अलग होते हैं। उदाहरण के लिए यदि गंधार का उच्चारण होता है तो यह कण न तो रिषभ और न मध्यम होते हैं और न यह श्रुतियां ही होती हैं। यह कण इन श्रुतियों से भी अधिक सूक्ष्म होते हैं और इस क्षेत्र में किसी एक विशेष स्वर से सम्बन्धित होते हैं। और न यह कण वह है जिनको पण्डित भातखण्डे ने "राग वाचक" कण कहा है। इस विषय पर कुछ विद्वान् और भी प्रकाश डाल सकते हैं। यहाँ पर हमको केवल यह जानना आवश्यक है कि किसी स्वर के उच्चारण में दो बातें मुख्य हैं। पहली बात तो यह है कि आवाज़ को उसी काल्पनिक रेखा पर केन्द्रित करना है। दूसरी जरूरी बात यह है कि उस रेखा के ऊपर और नीचे के कणों का भी उच्चारण करना है। आवाज़ को मधुर बनाने में इन कणों का इतना बड़ा हाथ होता है कि कुछ घराने निरन्तर अभ्यास पर ज़ोर देते हैं। रियाज़ ही आवाज़ में यह बात पैदा कर देता है।

इसके अलावा रियाज़ में आवाज़ से एक और गुण आ जाता है जो एक प्रकार का बल होता है और जिसे गायक "वज़न" कहते हैं। इसका मतलब यह है कि आवाज में रोशनी के साथ एक प्रकार का बल अथवा वज़न पैदा होता है। परन्तु यह केवल रियाज़ ही से सम्भव हो सकता है। गायक की आवाज़ में वज़न होना उसके गायन की शोभा को बढ़ाता है। बग़ैर इस वज़न के गायक के गायन में एक प्रकार की शिथिलता सी होती है जिससे श्रोता कभी प्रभावित नहीं होते। गायक के गायन का दबदबा इसी वज़न से पैदा होता है। आवाज़ मीठी हो सकती है और उसमें लोच भी हो सकता है। परन्तु जब तक उसमें वज़न नहीं होता तो उसमें गाये गये संगीत का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। औरतों की आवाज़ें प्रायः ऊंची, पतली और मधुर होती हैं मगर उनमें अक्सर वज़न नहीं होता। मगर इस विषय में अपवाद भी होते हैं। रोशनआरा बेगम की आवाज़ में तैयारी के साथ वज़न भी था। गंगू बाई हंगल की आवाज़ में भी वज़न है। अब्दुल करीम खां की आवाज़ में विलक्षण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माधुर्य था परन्तु वज़न नहीं था। इस कारण कुछ गम्भीर रागें उनके कण्ठ से बहुत अच्छी नहीं लगती थीं। आगरे की ज़ोहराबाई के गाने में गवैयों के से तेवर थे और स्थाई और अंतरा कहने में उनकी आवाज़ में वज़न भी दिखाई देता था। मुश्तरी फतेहाबादी बहुत बड़ी गायिका तो न थीं परन्तु उनकी आवाज़ में भी एक प्रकार का वज़न था। ऐसे और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि निरन्तर रियाज़ से आवाज़ में यह वज़न पैदा होता है। जिस आवाज़ में वज़न होता है उसमें प्रायः रोशनी भी होती है। ऐसी आवाज़ों से यदि केवल स्थायी और अन्तरा ही कायदे से भरा जाये तो बंदिश की रचनात्मक कला का बहुत आनन्द आ जाता है। और जो आवाज़ रोशन और वजनदार होती हैं उसका कलात्मक माधुर्य भी अपने ढंग का निराला होता है।

यह रियाज़ गुरु की देखभाल में होता है। गुरु अपने उत्तरदायित्व को इस मामले में कभी नहीं भूलता है। इस रियाज़ में उनकी संरक्षकता अनिवार्य है। शिष्य को गुरु के कड़े अनुशासन का पालन करना पड़ता है। स्वर भरते समय वह अपना गला नहीं हिला सकता। उसके स्वर-ज्ञान के अभ्यास में स्वरों का उच्चारण धीरे-धीरे किया जाता है और तान पलटों की मंजिल तो बहुत दूर होती है। इस कड़े अभ्यास में शीघ्रता करना पाप समझा जाता है। आवाज़ को एक स्वर पर टिकाना और स्वरों को कन के साथ लेना और इस प्रकार निरन्तर रियाज़ करने ही से आवाज़ धीरे-धीरे बनती है। इसमें गुरु की देखभाल बराबर होती है और उसकी संरक्षकता ही में शिष्य अपना अभ्यास करता है। गुरु के कठोर अनुशासन ही से यह रियाज़ सफल होता है। बाद में भी जब शिष्य गाने लगता है तब भी गुरु का अनुशासन जारी रहता है।

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि घराना बनने के लिए कम से कम तीन पीढ़ियों की आवश्यकता होती है। मगर यह सिद्धान्त पुराने घरानों पर लागू नहीं किया जा सकता। कुछ ख्याल की शैलियां ऐसी हैं जिनका लोकप्रिय प्रचार इतना अधिक हो जाता है कि उनके नये-नये घराने स्थापित कर लिये जाते हैं उदाहरण के लिए आजकल अब्दुल करीम खां का भी घराना बन गया है। उनके अपने प्रमुख शिष्यों के नाम हैं सुरेश बाबू माने, राम भाऊ, सवाई गंधर्व, गनपत बुआ बेहरे और हीराबाई बड़ोदकर। परन्तु यहां यह भी जानना आवश्यक है कि हीराबाई बड़ोदकर के असली गुरु किराना घराने के अब्दुल वहीद खां थे जो आधुनिक किराना गायकी के अन्वेषक माने जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब्दुल करीम खां के तीसरी पीढ़ी के प्रमुख शिष्यों के नाम हैं गंगूबाई हेगल, भीमसेन जोशी और फिरोज़ दस्तूर। मगर यह कहना कि अल्लादिये खां का जयपुर का ख्याल घराना है ठीक नहीं है। उनके और उनके भाइयों हैदर खां और नत्थन खां के शिष्यों में प्रमुख नाम मंजी खां, भूरजी खां, केसरबाई, लक्ष्मीबाई और मोगूबाई के हैं। परन्तु यदि यह घराना है तो इसकी तीसरी पीढ़ी में कोई प्रमुख गायक नहीं है। यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि अल्लादिये खां की अलग शैली है। इसी तरह जिसको लोग पटियाला घराना कहते हैं वह भी कोई अलग घराना नहीं माना जा सकता। वह असल में देहली घराने ही की एक शाखा है। जिसको पटियाला "घराना" कहते हैं उसके अन्वेषक फतह अली खां और अली बख्श थे जो देहली के तानरस खां के शिष्य थे और बहुत अच्छा गाते थे। फतह अली खां के सुपुत्र लाहौर के आशिक अली खां थे और अली बख्श के सुपुत्र का नाम था अख़्तर हुसैन। यह दोनों किसी हद तक अपने बुजुर्गों की गायकी गाते थे। फतह अली खां के और भी एक शिष्य थे जिनका नाम था अलीबख्श जिनके ही सुविख्यात सुपुत्र बड़े गुलाम अली खां जिन्होंने पटियाला गायकी में तो नहीं, पंजाब की ठुमरी में बहुत नाम कमाया। फतह अली खां और अलीबख्श धुरन्धर गायकों में थे मगर उनका कोई पटियाला घराना नहीं था। फतहअली खां के दो और शिष्यों का भी नाम बहुत हुआ जिनके नाम थे मियां जान खां और काले खां। मगर उनको भी हम केवल पटियाला का कह सकते हैं, पटियाला घराने का नहीं कह सकते। पटियाले में अच्छे-अच्छे गायक हुए परन्तु पटियाला घराना कोई अलग घराना नहीं था। इसी तरह जब लोग कहते हैं कि अमीर खां इन्दौर घराने के हैं तो यह भी भ्रमजनक है। इन्दौर में कोई ख्याल का घराना नहीं हुआ। अमीर खां को अपने पिता शामीर खां सारंगी-वादक से गायन की शिक्षा मिली। मगर वह स्वर्गीय अब्दुल वहीद खां की गायकी को (किराना गायकी को) अपना आदर्श मानते हैं और उसी का अनुकरण भी क़रते हैं।

किसी घराने का सिलसिला जारी रहने के लिए कई पीढ़ियों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक घराने में निरन्तरता की भावना होनी चाहिए। पुश्त-दर-पुश्त जो घराना चलता है; उसी में घराने की मर्यादा होती है। किसी विशेष गायक की व्यक्तिगत प्रतिभा के प्रोत्साहन से ही जरूरी नहीं है कि एक घराना कायम हो जाये यदि कई पीढ़ियों तक गायक उसकी शैली की परम्परा का अनुकरण न करें जैसे ग्वालियर, आगरा, देहली घराने। जैसे पंजाब में ध्रुपद का तिलबंडी घराना प्रतिष्ठित ध्रुपद के घरानों में है। मगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पटियाला के ख्याल-गायक देहली घराने के ही अन्तर्गत माने जायेंगे। इसके अलावा प्रत्येक घराने में कुछ विशेष लय होती है जिनमें कुछ बहुत जरूरी हैं।

(क) प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने का एक अलग कलात्मक अनुशासन होता है जिससे उनकी शैली का जन्म होता है।

(ख) प्रत्येक घराने की आवाज़ का लगाव और उसका स्वर-उच्चारण अलग होता है। घराने के शिष्य अपने गुरु की आवाज़ और उसकी गायन-शैली का अनुकरण करते हैं।

(ग) प्रत्येक घराने के कुछ मुख्य राग और अपनी बंदिशें अलग-अलग होती हैं। इन बंदिशों के कारण कभी-कभी कोई घराना मशहूर हो जाता है।

(घ) प्रत्येक घराना अपनी मौलिक गायकी से ही जाना जाता है। जिस घराने की गायकी में और शैलियों की मांगी हुई विशेषतायें होती हैं वह गायकी मौलिक अथवा खालिस नहीं मानी जाती। इसके साथ-साथ हर गायकी में गायकी के मुख्य सिद्धांतों का पालन होना चाहिए।

सामान्य रूप से किसी भी घराने के सामाजिक वातावरण का अध्ययन करने में हमें उसकी परंपरा का भी ज्ञान होता है। दैनिक जीवन में इस परम्परा का प्रदर्शन इस घराने के आचार-विचार, उसकी जीवन क्रियाओं और उसके सांस्कृतिक स्तर से होता है। घराने के सामूहिक व्यवहार और उसके आचरण का पता भी इसी परम्परा से चलता है। इसी घराने के संयम और उसके अनुशासन का भी पता चलता है। एक घराने से एक परिवार का भी पता चलता है।

एक घराने की गायकी से पता चलता है कि कलात्मक उत्तमता के क्या विशेष गुण हैं। अथवा गायन-कला की दृष्टि में इस गायकी की क्या मुख्य विशेषतायें हैं। यह भी मालूम हो सकता है कि इस घराने की गायकी से किन-किन कलात्मक युक्तियों, उपायों और तरकीबों का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह इसका पता भी चल जाता है कि इस घराने में कौन-कौन सी खास तानों का प्रयोग होता है। या तानें इस ढंग से और किस तरह की लगाई जाती हैं और उसके ख्याल-गायन को किन ज़ेवरों अथवा आभूषणों से सजाया जाता है। इसके अलावा घराने की गायकी की क्या-क्या विशेषतायें हैं और उसके क्या-क्या हथकंडे हैं।

प्रत्येक घराने का मान-सम्मान, उसकी प्रतिष्ठा, उसकी गायकी और उसके कला-प्रदर्शन पर निर्भर होता है। इस प्रतिष्ठा और सम्मान को स्थापित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने वाले घराने के चोटी के गवैये ही होते हैं। इन्हीं गायकों में एक घराने की इज्जत बढ़ती है और उसको ख्याति मिलती है। देहली घराने के तानरस खां, उमराव खां, सरदार खां, जहूर खां और शब्बू खां का नाम अभी भी लोग याद करते हैं। देहली घराने की शिष्य-परम्परा में जैसा नाम फ़तह अली और अली बख्श अथवा "अलिया फत्तू" का हुआ वैसा किसी और का नहीं हुआ। बहराम खां के ध्रुपद घराने में जैसा नाम जाकिरुद्दीन, अलावन्दे खां, नसीरुद्दीन, ज़ियाउद्दीन और डागुर बंधु का हुआ उतना और किसी का नहीं हुआ। कुछ विशेष गायक ही एक घराने के सम्मान को बढ़ाते हैं। यही उस घराने के असली प्रचारक होते हैं। इन्हीं के गायन से पता चलता है कि यह घराना ख्याति के किस उच्च शिखर पर पहुंचा था। श्रोता इस घराने के कुछ विशेष गायकों को ही याद करते हैं। यह वही गायक होते हैं जो उस घराने की संगीत कला और उसकी विशेष गायकी दोनों के सम्मान को सुरक्षित रखते हैं। इन्हीं की अलौकिक प्रतिभा से उस घराने में जान पड़ जाती है। बड़ौदे के स्वर्गीय उस्ताद फैयाज़ के नाम के साथ आगरा घराने का भी नाम हुआ। इसी कारण इस युग में वह इस घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक माने गये हैं और अभी भी लोग उन्हें याद करते हैं।

प्रत्येक घराने का शिष्य अपने गुरु की आवाज़ की नकल करता है। जिस शिष्य की आवाज़ में अपने गुरु के गले की थोड़ी-बहुत विशेषतायें भी नहीं होतीं वह उसकी गायकी का अनुकरण ठीक ढंग से नहीं कर सकता। और यदि किसी शिष्य में न तो अपने गुरु का स्वभाव होता है और न उसकी आवाज में अपने गुरु की आवाज के कोई लक्षण होते हैं तो ऐसा शिष्य अपने गुरु की गायकी का अनुमान नहीं लगा सकता और न उसका कोई अनुकरण ही कर सकता है। जिसमें गुरु के स्वभाव की कोई छाया नहीं होती और न उसकी आवाज में अपने गुरु की आवाज के सूक्ष्म गुणों को ग्रहण करने की कोई क्षमता नहीं होती है वह अपने गुरु की गायकी कभी नहीं गा सकता। गायकी की नकल ही करना काफ़ी नहीं है। उसे सीख लेना और हज़्म कर लेने की योग्यता होना भी बहुत ज़रूरी है। जो गायक किसी प्रतिष्ठित गुरु का शिष्य केवल अपने नाम के लिए हो जाता है उस गायक की गुरु-भक्ति में स्वार्थ की भावना होती है और वह व्यावहारिक संगीत में कभी कोई अच्छी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण हैं। गुरु के गाने की छाप शिष्य के गाने में होना बहुत ज़रूरी है अभी उसका संगीत प्रमाणित समझा जायेगा। यदि कोई गायक किसी धुरन्धर गायक को अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु कहे और उसकी गायकी न गा सके और केवल उसकी बातें ही करे तो उसके पास गायकी का कोई प्रमाण नहीं है। वह एक खोटे सिक्के के समान है। यदि व्यावहारिक संगीत में किसी विशेष गायकी का प्रदर्शन नहीं किया जा सकता तो उस गायकी की चर्चा करना भी व्यर्थ है।

हम आसानी से बता सकते हैं किसी ने घरानेदार संगीत सीखा है कि नहीं। आधुनिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार जो संगीत-शिक्षा संगीत विद्यालयों में दी जानी है वह एक समान होती है और उसमें समानता और एकरूपता की भावना होती है। संगीत की किताब और उसकी स्वर-लिपि में संगीत सीखने वाले विद्यार्थी क़रीब-क़रीब एक ही ढंग से गाते हैं। उनके संगीत का सैद्धान्तिक मत कुछ भी रहा हो और उनकी स्वर-लिपि किसी भी ढंग की रही हो, परन्तु उनके गाने ही से पता चल जाता है कि उन्होंने किसी विद्यालय में या किसी ऐसे संगीत-शिक्षक ही से शिक्षा पाई है। इस शिक्षा की भी अपनी अलग छाप होती है जिसका पता किसी के गायन से ही चल जाता है। यह गायन प्रायः एक ही तरह का होता है। परन्तु किसी अच्छे घरानेदार गायक से सीखने का सबसे बड़ा प्रमाण यह होता है कि ऐसे शिष्य के गायन में उस गायक की गायकी के गुण यदि अधिक नहीं तो थोड़े-बहुत तो अवश्य दिखाई देते हैं। सच्ची तालीम छिपती नहीं है और गायक को कोई सुबूत नहीं देना पड़ता। इन दोनों की सच्चाई छिपाये नहीं छिपती। इस गायकी के दो विशेष गुण हैं, राग की सही व्याख्या और गायन कला की कलात्मक शोभा। इन दोनों गुणों से सबसे पहले हमें किसी घराने का परिचय मिलता है।

घराने और परंपरा

संगीत की जागृति में परंपरागत संगीत का विशेष स्थान है। जब हम आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के व्यापक प्रचार के प्रसंग में उसके पुनरुज्जीवन और पुनरुद्धार की बात करते हैं तो अक्सर हम परंपरागत संगीत को छोड़ जाते हैं। ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से इस प्रकार का निरीक्षण अपूर्ण माना जायेगा। जिस संगीत का पुनरुत्थान हम चाहते हैं वह हमारा परंपरागत संगीत है। परंपरा को छोड़ कर इस संगीत की कल्पना करना असम्भव है। परंपरा के ऐतिहासिक वातावरण में ही हम इस संगीत को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की बात करते समय हम उसकी परंपरा को भुला नहीं सकते। परंपरा ही पुराने संगीत को आजकल के संगीत से जोड़ती है और अलग करती है और विभाजित भी करती है। हमारे व्याव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हारिक संगीत का असली इतिहास हमें उसकी परंपरा ही में मिलता है। इस कारण संगीत में परंपरा की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

राष्ट्रीय संस्कृति की कल्पना करते समय हम परंपरावाद का बहिष्कार नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानी संगीत को हम ललित कला ही मानते हैं, वैज्ञानिक कला नहीं मानते और न हम उसके वैज्ञानिक ज्ञान ही को सब कुछ समझते हैं। यदि संगीत हमारी संस्कृति के अन्तर्गत है तो प्राचीन परंपरा से उसका सम्बन्ध जोड़ना असंगत नहीं है। यदि आधुनिक संगीत प्रचार संगीत की परंपरा का विरोध है और उसकी आक्रमणकारी प्रतिक्रिया ही है तो हम संगीत की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का खण्डन करते हैं। इस प्रकार की विचार-धारा हमें मजबूर करती है कि हम भारतीय संस्कृति और हिन्दुस्तानी संगीत के बीच की सांस्कृतिक बंधुता को भूल जायें और अपने सांस्कृतिक आदर्शों का भी खण्डन करें। हिन्दुस्तानी संगीत हमारी सांस्कृतिक पैत्रिकी है और हमारे सांस्कृतिक महानता का प्रतीक है। यदि यह सच है तो संगीत के क्षेत्र में हम परंपरा की उपेक्षा नहीं कर सकते। आधुनिक संगीत-प्रचार की सबसे बड़ी कमजोरी और उसका मर्मस्थल अथवा दोष यही है कि हिन्दुस्तानी संगीत के प्रचारक और विचारक उसकी घरानेदार परंपरा का विरोध और खण्डन करते हैं और उसे अंधविश्वास की श्रेणी में रखते हैं। यही कारण है कि इस वास्तविक प्रश्न पर कोई ठीक से ध्यान नहीं देता। क्या कारण है कि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के उत्साही और साहसी समर्थक और विचारक, जो विद्वान् भी हैं, इस बात को नहीं समझते कि हमारे सामने सबसे बड़ा वास्तविक प्रश्न यह है कि आधुनिक संगीत पद्धति और परंपरागत संगीत के बीच की खाई को हम कैसे भरें और इसके लिए हम क्या उपाय सोचें? यदि हम इस समस्या का समाधान न करेंगे और इस मुश्किल को सुलझायेंगे नहीं तो यह खाई और बढ़ती चली जायेगी। इसका भयंकर परिणाम यह होगा कि संगीतज्ञ और कलाकार दो विरोधी दलों में विभाजित हो जायेंगे और अपने-अपने मोर्चों पर डट जायेंगे। ऐसे भीषण संघर्ष की कल्पना करना आधुनिक संगीत के लिए घातक होगा।

क्या हम संगीत परंपरा की निरंतरता और उसकी अखण्ड अविच्छिन्नता का बंटवारा करना चाहते हैं? क्या हम इस प्राचीन संगीत की अविरत, अविच्छिन्न और स्वतन्त्र गति और उसके निरंतर प्रवाह को रोकना चाहते हैं या उसमें नई विचारधारा का बाँध लगाना चाहते हैं? क्या हम संगीत की परंपरा को दो विरोधी फ़ौजों में बाँटना चाहते हैं? क्या हम इस देश के संगीतज्ञों को दो अलग-अलग परंपरागत और आधुनिक क्षेत्रों में विभाजित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना चाहते हैं ? यदि ऐसा है तो इसमें राष्ट्रीयता की भावना का पूर्ण अभाव है। परंपरागत संगीत की गति को रोकने के लिए जिस बाँध का हम निर्माण करना सोच रहे हैं वह टूट जायेगा, रुक नहीं सकता। यह बिल्कुल आवश्यक और अस्वाभाविक है कि हम संगीत का दो विरोधी वर्गों और पक्षों में विभाजित करें—अशिक्षित, असभ्य, परंपरागत संगीत और शिक्षित, सभ्य, वैज्ञानिक संगीत। यह तो किसी भी बंटवारे से न होगा और हम संगीत के समूचे राष्ट्र को विभाजित करके उसकी अखण्ड राष्ट्रीयता का भी खण्डन करेंगे। ऐसा करने से आधुनिक संगीत के क्षेत्र में एक बड़ी भयंकर साम्प्रदायिकता का जन्म होगा जिससे हिन्दुस्तानी संगीत को बड़ा भारी नुकसान पहुंचेगा। हमें सतर्क और सावधान रहना चाहिए।

कोई भी प्राचीन कला हो हम उसकी परंपरा की उपेक्षा नहीं कर सकते। यह भी मिथ्या विचार है कि परंपरावाद रूढ़िवाद ही का अनुवाद है। अथवा यह कहना कि आधुनिक कला प्राचीन कला से अधिक उन्नतिशील और प्रतिभाशील है। साहित्य के क्षेत्र में भी इस प्रकार की धारणा कभी-कभी ग़लत साबित होती है। संगीत में, विशेषकर हिन्दुस्तानी संगीत में, परंपरा की उपेक्षा करना ग़लत ही नहीं, असंगत भी है। शास्त्रीय संगीत के सिद्धान्तों के क्षेत्र में भी अतीत की विचारधारा की अवहेलना नहीं की जा सकती। हम "संगीत रत्नाकर" ऐसे संगीत शास्त्र की पृष्ठभूमि के बिना आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की कल्पना कैसे कर सकते हैं ? क्या हम भरत के 'नाट्य शास्त्र' के बिना अपने साहित्य और अपने संगीत की प्राचीन विचारधारा का सही अंदाजा लगा सकते हैं ? क्या हम संगीत की परंपरा को भूलकर अपने देश के लोक-संगीत की कल्पना कर सकते हैं ? क्या लोक विश्वास, लोक-रीति, लोक-कथा, लोकचित्र, लोक आख्यान, लोक नृत्य, लोकगीत और लोक कहानी परंपरा के अन्तर्गत नहीं हैं ? क्या हमारा लोक-संगीत हमारे हिन्दुस्तानी संगीत की परंपरा से अलग है ? क्या शास्त्रों के अलावा व्यावहारिक घरानेदार संगीत की परंपरा का कोई अस्तित्व नहीं है ?

आधुनिक संगीत का सांस्कृतिक वातावरण में उसका ऐतिहासिक निरीक्षण करते समय हम उसकी परंपरा की पृष्ठभूमि का भी अध्ययन करते हैं। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि हम व्यावहारिक संगीत की चर्चा करें और परंपरा और घरानों को भूल जायें। 'घराना' शब्द से लोगों के मन में एक गलत आशंका, एक निर्मूल भावना का जन्म होता है। संगीत-शिक्षकों और संगीत प्रचारकों ने कभी-कभी घरानों की ग़लत व्याख्या की है। एक प्रकार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार साहचर्य के द्वारा घराना रूढ़िवाद, अज्ञान और निरक्षरता का प्रतीक बन गया है और हमारे कानों में इसी मिथ्या प्रचार के शब्दों ने वर्षों तक आघात किया है। इसीलिए किसी हद तक इस प्रभाव से हमारी विचारधारा भी दूषित हो गई है। हमने दूसरे के दोषों को परंपरा पर थोपा है और प्रतिष्ठित घरानों के साथ अनजाने अन्याय किया है।

घराने परंपरा के संकेत अथवा प्रतीक हैं और परंपरागत संगीत के प्रतिनिधि भी हैं। इसलिए प्रतिष्ठित घरानेदार गायक परंपरागत संगीत के स्तम्भ हैं और उसकी जिन्दा तस्वीरें अथवा जीवित चित्र हैं। एक संगीत के विद्वान् समालोचक ने एक महान्, सर्वश्रेष्ठ गायक के बारे में कहा था कि वह 'मुजस्सिम संगीत' अथवा संगीत की सजीव प्रतिमूर्ति था। इस सारगर्भित कथन में ही घराने की सही और सच्ची परिभाषा मिलती है। घराने संगीत की परंपरा कीं सजीव मूर्ति हैं। घराने परंपरा की निरंतरता और उसकी अविच्छिन्नता का रूप हैं। घरानों ही से पता चलता है कि संगीत की परंपरा जीवित है। व्यावहारिक, घरानेदार संगीत परंपरा का प्रत्यक्ष रूप है, उसकी अभिव्यक्ति है, उसका सजीव प्रदर्शन है। प्राचीन शास्त्रीय संगीत का अनुवाद घरानों ही के द्वारा हुआ। यह घराने ही इस परंपरा का निर्माण करने वाले थे और उसको सजीव बनाने वाले थे। संगीत-शास्त्री संगीत के सिद्धान्तों का अध्ययन करता है और उनको प्रकाशित करता है। वह कला के माध्यम से उनका प्रदर्शन नहीं कर सकता। उत्तम कलाकार अथवा व्यावहारिक संगीत का कुशल विशेषज्ञ, प्रतिभाशील और भावुक गायक इन सिद्धान्तों का प्रदर्शन अपनी गायन-कला से ही करता है। इसलिए परंपरागत संगीत परंपरा ही की देन है और उसकी अमूल्य निधि है।

इस परंपरागत संगीत की शिक्षा और उसकी उत्तम व्याख्या इन्हीं घरानों के माध्यम से हुई। तालीम और रियाज़ ने इस संगीत को जीवित और सुरक्षित रखा। घरानों के संगीत में यह परंपरागत संगीत प्राचीन काल से सुरक्षित रहा। यदि हमारा आधुनिक संगीत परंपरागत संगीत से विभाजित होकर और अलग होकर उन्नति करना चाहता तो ऐसा होना असम्भव ही होगा। जिस संगीत की जागृति और पुनरुत्थान में लोग संलग्न हैं वह परंपरागत संगीत ही है जिसका कलात्मक प्रदर्शन और प्रचार श्रेष्ठ घरानेदार गायकों ने अपने घराने के जरिये किया था। यह वही प्रामाणिक संगीत है जिसे हम घरानेदार संगीत के नाम से पुकारते हैं। इसी की शैली को हम घरानेदार, टकसाली गायकी भी कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिए घराने की अनिवार्य आवश्यकता परंपरा है। क्या स्वर-लिपि में लिखी गई संगीत की पुस्तकें इस परंपरा का परित्याग करती हैं ? यदि ऐसा है तो क्या आधुनिक संगीत शिक्षा पद्धति में परंपरागत संगीत का विरोध है अथवा प्रतिक्रिया है ? यह प्रतिक्रिया यदि संगीत शिक्षा के नये साधनों तक सीमित है और केवल नई सुविधाओं का आयोजन करती है तो आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को उससे कोई ख़तरा नहीं है। परन्तु यदि इस प्रकार की प्रतिक्रिया में परंपरागत घरानेदार संगीत में आक्रमणकारी विरोध है तो इस पीढ़ी और अगली पीढ़ी की संगीत की बपौती अथवा पैतृक सम्पत्ति उससे छीन ली जायेगी। आधुनिक संगीत का पौधा मुरझा जायेगा यदि उसकी जड़ें कमज़ोर हो जायेंगी या काट डाली जायेंगी। परंपरा और घरानों का बहिष्कार और तिरस्कार करके हम आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की कल्पना नहीं कर सकते। यह अटल सत्य है इसका विरोध हम नहीं कर सकते।

दो सौ वर्ष से हमारे संगीत में घराने रहे हैं। देशी राज्य और रजवाड़े संगीत के पोषक और संरक्षक रहे हैं। इस विषय में कुछ राज्यों और रियासतों ने बड़ी ख्याति पाई जिसमें इन्दौर, जयपुर, अलवर, पटियाला, बड़ौदा, ग्वालियर, मैसूर, रामपुर, लखनऊ, बनारस, गिद्धौर, दतिया इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। संगीत के भक्तों और सहृदय संरक्षकों में ऐसे व्यक्तियों के नाम हैं जैसे देहली के मुहम्मद शाह 'रंगीले, लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह, ग्वालियर के जीवाजी राव और दौलत राव शिंदे, रामपुर के नवाब कल्बे अली खां, नवाब हामिदअली खां, नवाब हैदरअली खां, नवाब रज़ाअली खां, वितदी के नवाब छम्मन साहब, इन्दौर के तुको जी राव होलकर, बड़ौदा के सयाजीराव गायकवाड़, कोल्हापुर के शाहू महाराज, इचलकरंजी के घोरपड़े और मिरज के पटवर्धन इत्यादि। यह मानना पड़ेगा कि प्रजातन्त्रवाद, साम्यवाद और समाजवाद के इस युग में देशी राज्यों का अन्त हो जाने से हिन्दुस्तानी संगीत को काफ़ी धक्का पहुंचा। हमारा नया शक्तिशाली शासन अथवा धनवान वर्ग उनका स्थान नहीं ले सकता। हमारी सरकार संगीत की उन्नति के लिए बहुत कुछ प्रोत्साहन दे रही है मगर यह काफ़ी नहीं है।

घरानेदार संगीत कला की जागृति और उसके पुनरुत्थान के अलावा नये-नये घरानों और शैलियों का आविष्कार भी हो रहा है जिन पर कोई संस्था कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगा सकती। 'संगीत नाटक अकादमी' भी इस विषय में कुछ नहीं कर सकती। आधुनिक विचारधारा के निरंकुश शासन में एक नई अराजकता की भावना आ गयी है जिसमें हर प्रकार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुशासन का परित्याग किया जा रहा है। ऐसे वातावरण में नये घरानों का भी जन्म हो सकता है। मगर अभी तो हमारे प्रमुख और श्रेष्ठ घराने की संगीत-कला की जागृति नहीं हुई है जिससे हमें बहुत कुछ सीखना है। नये आविष्कार और नये प्रयोगवाद के उन्माद से प्रोत्साहित होकर ऐसा न हो कि हम अपने संगीत की बहुमूल्य परंपरा को भूल जायें। प्रतिष्ठित घरानों की गायन कला के आदर्श ही हमारे प्रोत्साहन का स्रोत बनेंगे। उनसे हमारे गायकों और हमारे आधुनिक संगीत के गम्भीर विद्यार्थियों को बहुत सीखना है। वह हमारे व्यावहारिक संगीत के मार्गदर्शक हैं और उनके कलात्मक अनुशासन का बहिष्कार करके हम पथभ्रष्ट भी हो सकते हैं। इसलिए उनको भूल जाना हमारे लिए लाभदायक न होगा। वह हमारी आधुनिक शैलियों के उद्गम स्थान हैं और हमारे व्यावहारिक संगीत को उनसे बहुत लाभ पहुंच सकता है। इसलिए उनका संक्षिप्त वर्णन हमारे लिए उपयुक्त और उपयोगी होगा।

कुछ विशेष घराने

ग्वालियर

जहां तक ख्याल-गायन का सम्बन्ध है, ग्वालियर घराना सर्वश्रेष्ठ घराना माना गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में इस घराने का जन्म हो चुका था। कुछ लोग नत्थन पीर बख्श को इस घराने का अन्वेषक और पूर्वज मानते हैं। कुछ लोग इस घराने की गायकी की चर्चा करते हुए बड़े मुहम्मद खां को इस घराने का अन्वेषक मानते हैं। लखनऊ के गायक गुलाम रसूल ख्याल-शैली के आदि पुरुष माने जाते हैं। कहा जाता है कि इन्हीं के वंशज शक्कर खां, मक्खन खां थे जिनसे कव्वाल बच्चों का घराना शुरु होता है और जिस घराने के बेजोड़ गायक बड़े मुहम्मद खां थे जो शक्कर खां के लड़के थे और लखनऊ, ग्वालियर और देहली के माने जाते थे। नत्थन पीरबख्श अपने तीनों पुत्रों, हद्दू-हस्सू खां को ग्वालियर लेकर आये और किशोर अवस्था से उन्हें ख्याल-गायन की शिक्षा दी। सुनते हैं कि ग्वालियर-नरेश ने हद्दू-हस्सू खां को छिपा कर बड़े मुहम्मद खां का गाना सुनवाया जिसकी नक़ल यह दोनों प्रतिभाशील, होनहार गायक करने लगे। एक बार जब ग्वालियर-नरेश के कहने से यह दोनों बड़े मुहम्मद खां के सामने गाये तो यह भेद खुल गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हद्दू खां हस्सू खां उनके शिष्य हो गये और उन्हें उनसे शिक्षा भी मिली। बाद से इन्हीं बड़े मुहम्मद खां ने शक्कर-मक्खन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कव्वाल बच्चों के घराने की विशेष गायकी को कलात्मक ढंग से भारतवर्ष में प्रचलित किया। इसी गायकी को कव्वाल बच्चों की गायकी कहते हैं और यह ग्वालियर की गायकी से बहुत कुछ अलग हो गई। इस गायकी के धुरंधर गायक आधुनिक युग में उसके सुपुत्र मुबारकअली खां थे।

परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि हद्दू-हस्सू खां के गुरु कोई भी रहे हों, इन दोनों ने ही ग्वालियर घराने की नींव डाली और इस घराने की प्रसिद्ध ख्याल-गायकी का आविष्कार किया। उनके एक भाई और थे जिनका नाम नत्थू खां था। वह भी बहुत कुशल गायक थे। मगर हद्दू-हस्सू खां का नाम साथ लिया जाता है और इन्हीं को लोग ग्वालियर घराने के दो सबसे बड़े गायक मानते हैं। गायकों में इनका कोई सानी नहीं था। उन्होंने शिक्षा से और परिश्रम से अपनी गायकी को बनाया और सजाया और संवारा भी। उनमें प्रतिभा थी जिसके दो सृजनात्मक और रचनात्मक अंग थे। उनकी मौलिकता उनका सबसे बड़ा गुण था। परन्तु इसके साथ-साथ इन दोनों ने मिलकर ग्वालियर की गायकी का निर्माण किया और उसको स्थापित भी किया। इन्हीं दोनों के संगीत-गायन के प्रोत्साहन से ग्वालियर घराना बना और जिसके बहुत से अच्छे-अच्छे शिष्य हुए और जिन्हें बहुत अच्छी ख्याति भी मिले।

हद्दू-हस्सू खां यह दो नाम हमेशा साथ लिए जाते हैं। ख्याल गायकी का यह बेजोड़ जोड़ा ख्याल-गायन के क्षेत्र में हर तरह से अद्वितीय था। विचार करने से ज्ञात होता है कि इनकी बहुमुखी, विलक्षण प्रतिभा ने ख्याल-गायन के क्षेत्र में कितना महान् कार्य किया। उनकी प्रतिभा को हम असाधारण और एक तरह से दिव्य भी कह सकते हैं। ख्याल-गायकों ने इस आधुनिक युग में उनको ग्वालियर की गायकी का आविष्कारक और अन्वेषक माना है। उन्होंने ही इस गायकी का ठीक-ठीक निर्माण किया और उसकी क्रियाशीलता के सिद्धान्त को स्थापित किया। व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में इन दोनों ही ने इस विशेष गायकी को परिमार्जित बनाया और इसका कलात्मक परिष्कार करके और इसके सैद्धान्तिक और कलात्मक सिद्धान्तों को सुन्दर सम्मिश्रण करके इसको विशुद्ध गायकी के रूप में संगीत-संसार के सामने रखा। यह काम केवल विलक्षण, असाधारण प्रतिभा वाले गायक ही कर सकते थे। उनकी कला मौलिक थी और उसका अपना रचनात्मक पक्ष भी था। उन्हें उत्तम शिक्षा मिली और उन्होंने कड़ा परिश्रम भी किया था। परन्तु उन्होंने साथ-साथ संगीत के अनुशासन का भी पालन किया। इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण उन्होंने इस गायकी को सैद्धान्तिक आधार देकर एक परिमार्जित विशुद्ध गायकी के सांचे में ढाला। किसी गायकी की क्रियात्मक और रचनात्मक विशेषताओं का कलात्मक संघटन करने के लिए विलक्षण प्रतिभा चाहिए जिसकी क्रियाशीलता भी ऊँचे दर्जे की हो। व्यावहारिक संगीत में सृजनात्मक निर्माण गायन-कला के क्षेत्र में प्रत्यक्ष ढंग से सामने आता है। किसी गायकी का निर्माण जभी होता है जब उसकी विशेषताओं को कलात्मक रूप दिया जाये और उसका सैद्धान्तिक आधार मज़बूत और सुरक्षित रहे। इस प्रकार की परिमार्जित गायन-शैली के निर्माण का साधन व्यावहारिक, परंपरागत ही है। यदि शैली घरानेदार संगीत की सक्रिय भागी अथवा साझेदार है तो व्यावहारिक संगीत का मौलिक सिद्धान्त सदैव सुरक्षित रहेगा। घराना और गायकी एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। वह वास्तव में अपृथक्करणीय हैं। हम एक की कल्पना दूसरे की सहायता ही से करते हैं।

हद्दू-हस्सू खां की गायकी पर विचार करते हुए हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि उनकी सौन्दर्यात्मक कल्पना ही में उनकी कलात्मक कल्पना का जन्म हुआ और इसी में उनकी रचनात्मक कल्पना और सृजनात्मक कल्पना दोनों का समावेश था। इसका अर्थ केवल यह कि उनकी संगीत की मौलिक कल्पना ही के अन्तर्गत उनकी व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक कल्पना थी। परंपरागत संगीत के मौलिक आविष्कारों में हवाई कल्पना का कोई काम नहीं होता। गायकी के संगीत-निर्माण में परंपरागत संगीत के व्यावहारिक पक्ष पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। इसीलिए परंपरा, घराना और शैली का संश्लेषण हिन्दुस्तानी संगीत में अन्तर्निहित है।

ग्वालियर की ख्याल-गायकी को सर्वश्रेष्ठ मानने के दो विशेष कारण हैं। पहला कारण तो उसकी मुख्य विशेषतायें हैं। दूसरा कारण उसकी बृहत और शानदार शिष्य-परम्परा है। परन्तु इन दोनों कारणों का संक्षिप्त वर्णन करने के पहले हमें एक तीसरा कारण भी दिखाई देता है जिसकी उपेक्षा हम यहां नहीं कर सकते। यह है घराना और गायकी का सम्बन्ध। किसी घराने को सबसे बड़ा प्रोत्साहन उसके अन्वेषक अथवा गुरु से मिलता है। किसी घराने की गायकी आवाज़ के माध्यम ही से पुश्त-दर-पुश्त एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है। इस तरह से एक परिवार अथवा घराने के वंशज गायकी के पैतृक धन के उत्तराधिकारी बनते हैं। परम्परा, घराना और गायकी यह तीन सीढ़ियां और तीन विश्राम-स्थान हैं जिन्हें पार करके ही हम संगीत के पर्वत-शिखर पर पहुंचते हैं जहां से हम हिन्दुस्तानी संगीत के समूचे दृश्य को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देख सकते हैं और जहां से हमें इस संगीत की पूर्ण दृष्टि मिल जाती है। केवल युगों और तिथियों वाला तैथिक इतिहास ही हमको अपने संगीत के बारे में पूरा परिचय नहीं दे सकता। यदि हम परम्परा को छोड़ जायें और उसके साथ घरानों को भी छोड़ जायें तो हमें व्यावहारिक संगीत की शैली के नियमों और सिद्धान्तों का कोई भी ज्ञान नहीं हो सकता। शैली तो व्यावहारिक संगीत की देन है। और व्यावहारिक संगीत घरानों की देन है। तो फिर संगीत में परम्परा का कितना बड़ा महत्व है। इस कारण घरानों का विरोध परम्परा और शैली ही का विरोध होता है। इन्हीं घरानेदार गायकों ने रागों की सजीव मूर्ति को हमारे सामने रखा और शैली का भी निर्माण किया।

हद्दू-हस्सू खां की गायन-शैली को हम ग्वालियर की गायकी कहते हैं। इसका परिमार्जित निर्माण करने में उन्हें परम्परा और घराने के सिद्धान्तों का ही सहारा लेना पड़ा। लखनऊ के गुलाम रसूल के परम्परागत संगीत का अनुकरण करके नत्थन पीरबख्श ने ग्वालियर संगीत-परम्परा को स्थापित किया। बड़े मुहम्मद खां भी इस काम में उनके सहयोगी और साझेदार रहे। मगर उन्होंने क़व्वाल बच्चों का और अलग घराना बनाया। इसलिए हद्दू हस्सू खां की गायन-शैली का निर्माण संश्लेषण के सिद्धान्त से प्रेरित हुआ। यही कारण था कि उनकी गायकी में एक सर्वश्रेष्ठ, आदर्श गायकी के गुणों का समावेश था। सैद्धान्तिक रूप से वह उत्तम और दोष-रहित थी। उसमें ख्याल-गायकी के सबसे उत्तम गुण थे और उनकी स्पष्टता भी थी। एक तरह से इस गायकी को हम परम्परागत संगीत का अभिव्यक्त प्रतिबिम्ब कह सकते थे। और जहां तक ध्रुपद की प्राचीन गायन-परम्परा का सम्बन्ध ख्याल की शैली से था इस गायकी में गाम्भीर्य, संयम, सन्तुलन, कलात्मक उत्तमता और अनुशासन पालन की भावना थी और इन सबका उचित सम्मिश्रण था कल्पना, कला, राग की व्याख्या और बंदिश का रचनात्मक सौंदर्य, यह सब गुण मौजूद थे। परन्तु इसकी घरानेदार प्रामाणिकता ही इसका सबसे बड़ा गुण था।

एक बात और जो ध्यान में रखना चाहिए वह यह है कि गायकी ही में किसी घराने के संगीत के स्वभाव, उसके चरित्र और उसकी मर्यादा और उसके कलात्मक स्तर का भी पता चलता है। गायकी घराने के संगीत की व्याख्या है। जिस घराने का जैसा संगीत होगा वैसी ही उसकी गायकी होगी। गायकी व्यावहारिक संगीत का आवरण है। परन्तु वह उसका क्रियाशील प्रदर्शन भी है। गायकी ही से एक घराने के संगीत की अन्तरात्मा का थोड़ा-बहुत पता चलता है। परन्तु यह भी सच है कि गायकी से गायक के व्यक्तित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भी पता चलता है। यह दोनों बातें हद्दू-हस्सू खां के संगीत पर लागू होती हैं। उनका संगीत प्रामाणिक, परम्परागत, घरानेदार संगीत था। ऐसा न होता तो ग्वालियर घराने की इतनी प्रतिष्ठित शिष्य परम्परा न होती। यह भी जानना चाहिए कि इस गायन-शैली के प्रभाव से और गायन-शैलियों का भी जन्म हुआ। यह एक ऐसा सारगर्भित तत्व है कि इसको हमें ध्यान में रखना चाहिए। ग्वालियर की गायकी ने बहुत से बाहर के लोगों का ध्यान आकर्षित किया जिसमें सबसे अधिक संख्या महाराष्ट्र के गायकों की थी।

हद्दू-हस्सू खां की शिष्य-परम्परा में बहुत से प्रतिष्ठित घरानेदार गायक और सुप्रसिद्ध शिष्य हुए हैं। ग्वालियर घराने के प्रतिष्ठित संगीत और उनकी शानदार गायकी को हम आधुनिक ख्याल-गायन के संगीत का महाकाव्य ही कह सकते हैं। उसके महत्व और उसकी श्रेष्ठता में एक वैभव है और एक शानदार मर्यादा है जिसका अनुमान हम केवल उसके संगीत-प्रदर्शन से कर सकते हैं। परन्तु खेद है कि अब इस गायकी का प्रमाण किसी गायक के गाने से सही-सही नहीं मिलता। अब यह उसका अवनति-काल है। जो कुछ हो, पहले इस गायकी का इतना बड़ा आकर्षण था कि लोग अपनी संगीत-शिक्षा के लिए ग्वालियर जाते थे। इस गायकी का ऐसा आश्चर्यजनक, बहुपक्षी व्यक्तित्व था कि तरह-तरह के शिष्यों को इससे तरह-तरह का संतोष पहुंचता था। यही कारण था कि अच्छे-अच्छे गायकों ने इस गायकी का अनुकरण किया।

इस सुप्रसिद्ध घराने के सबसे प्रसिद्ध गायक हद्दू-हस्सू खां और नत्थू खां माने गये हैं। इनके वंशज निसार हुसैन खां और रहमत खां का इस देश में बहुत नाम था और बहुत से लोगों ने इनसे संगीत शिक्षा प्राप्त की। इस घराने के शिष्यों में बहुत से नामी गायक हुए हैं जिनमें से कुछ के नाम प्रमुख हैं। बाला गुरु जी, शंकर पंडित एकनाथ पंडित और बाबा दीक्षित का नाम किसने नहीं सुना? शंकर पंडित के नाम से ग्वालियर में अब तक "शंकर संगीत विद्यालय" है जिसे उनके सुपुत्र और अनुभवी तथा प्रसिद्ध गायक कृष्णराव पंडित अभी भी चला रहे हैं। शंकर पंडित के एक और नामी शिष्य राजा भैया पूंछ वाले थे जिनका कुछ वर्ष पहले देहान्त हुआ। वह विद्वान् गायक थे और "माधव संगीत विद्यालय" के प्रधान अध्यक्ष थे। निसार हुसैन खां ऐसे विद्वान् और नामी गायक ही ने स्वर्गीय वझे बुआ को संगीत शिक्षा दी थी। रहमत खां भी इसी घराने के वंशज थे और इतने सुरीले गायक थे कि लोग उनकी नक़ल करते थे मगर उनसे नहीं होती थी। अब्दुल करीम ने उनके सुरीले कण्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की नक़ल करने की बहुत कोशिक की। रहमत खां बड़ी स्वतन्त्र प्रकृति के मौजी आदमी थे जो बम्बई और बनारस की तरफ काफ़ी गये। बनारस वह एक सरकस के मालिक के साथ आये थे जो उनका शिष्य हो गया था। जब कभी उनका मन चाहा और वह गाने बैठे तो यह मुमकिन नहीं था कि श्रोता उनके सुरीले गान को सुनकर बेचैन न हो जायें। अब्दुल करीम खां ऐसे सुरीले गायक भी जिनकी नक़ल स्वर्गीय ओंकारनाथ बरसों करते रहे, रहमत खां के गायन के परम भक्त और अनुकरण करने वाले थे। और एक बार जब उनके गाने पर रहमत खां ने सिर्फ "अच्छा" कहा था तो उन्होंने भरी महफिल में खड़े होकर उनको सादर धन्यवाद दिया। रहमत खां सचमुच में गला के सुरीले थे। मगर थे वह मनमौजी कलाकार और किसी प्रकार के अनुशासन का जल्दी पालन नहीं करते थे। उनके बारे में बहुत सी घटनायें मशहूर हैं। उनके बिल्कुल विपरीत निसार हुसैन खां थे जो रिश्ते में उनके भाई लगते थे। निसार हुसैन खां इतने सुरीले नहीं थे परन्तु बड़े अनुभवी और विद्वान् घरानेदार गायक थे जो ग्वालियर की गायकी की बड़ी शानदार व्याख्या करते थे। महाराष्ट्र के बहुत से लोग उनके शिष्य हो गये थे जिनमें वझे बुआ प्रधान थे।

इसके अलावा, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर का नाम किसने नहीं सुना ? यह भी ग्वालियर घराने के बहुत नामी शिष्य थे जिन्होंने महाराष्ट्र में ग्वालियर की ख्याल पद्धति का बहुत ज़बरदस्त प्रचार किया। उनके दो सुविख्यात शिष्य पंडित विष्णु दिगम्बर और अनन्त मनोहर जोशी थे। यह वही सुप्रसिद्ध अनन्त मनोहर जोशी थे जिनके सुपुत्र गजानन राव जोशी हैं जो बाद में बम्बई के स्वर्गीय विलायत हुसैन खां के भी शिष्य हो गये थे और जो कुशल गायक और वाइलिन वादक हैं।

उनके अलावा दो और मशहूर गायकों के नाम भी यहां उल्लेखनीय हैं। पहले थे फैज़ मुहम्मद खां जो बड़ौदा रियासत में बहुत पहले नियुक्त हो गये थे। यह रिश्ते में स्वर्गीय उस्ताद फैयाज के ससुर लगते थे और इन्होंने ही सबसे पहले उनका परिचय महाराजा बड़ौदा से करवाया था। परन्तु एक और बात के लिए हम इस नामी गायक के नाम से परिचित हैं। यही फैज़ मुहम्मद खाँ थे जिनसे महाराष्ट्र के मशहूर पंडित भास्कर राव बखले ने सबसे पहले ख्याल-गायन-सीखा था। और इन्हीं ग्वालियर परम्परा के फैज़ मुहम्मद खां से शिक्षा पाने के बाद वह आगरा घराने के नामी गायक उस्ताद नत्थन खां के शिष्य हुए, जिन्होंने उन्हें गुरु के नाते इस घराने की दीक्षा दी थी। पंडित राव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बखले आगरा घराने के रत्नों में थे और बहुत ही अच्छा गाते थे और उनका अपने जीवन-काल में बहुत नाम हुआ।

दूसरे गायक थे सहसवान (उत्तर प्रदेश) के इनायत हुसैन खाँ जो बहादुर हुसैन खाँ सेनिये के भी शिष्य थे। इनायत हुसैन खाँ भी ग्वालियर घराने के शिष्य थे और इन्हीं के शिष्य बाद में रामपुर के स्वर्गीय मुश्ताक हुसैन हो गये थे। यह मानना पड़ेगा कि मुश्ताक हुसैन खाँ ग्वालियर-गायकी नहीं गाते थे। जो कुछ वह गाते थे वह उन्होंने अपने घर में अपने मामू अतरौली के पुत्तन खाँ महबूब खाँ से सीखा था। बाद में वह रामपुर के वीणा-वादक वज़ीर खाँ के भी शिष्य हो गये थे।

ग्वालियर की गायकी का प्रभाव विस्तृत था और बहुत से गायक इस घराने के अनुयायी हो गये थे। कुछ लोगों का विचार है कि पटियाले के फ़तह अली खाँ भी, जो देहली के तानरस खाँ के शिष्य थे, हद्दू खाँ के शागिर्द हो गये थे। परन्तु ऐसा नहीं है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह एक भूल है। परन्तु यह सच है कि देहली घराने वाले ग्वालियर की गायकी का बहुत आदर करते थे। मगर आगरा घराने की तरह इस घराने का ग्वालियर घराने से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था।

जहाँ तक ग्वालियर घराने की प्रतिष्ठित गायकी की बात है हमें उसकी कुछ विशेषताओं को जान लेना चाहिए। इस घराने की गायकी का पहला गुण उसकी सरलता और स्पष्टता है। प्राचीन साहित्य और कला का प्रधान गुण था उसकी सरलता और उसकी स्पष्टता। ग्रीस और रोम के साहित्य-कला-सम्बन्धी दो गुणों को—सरलता और विश्व-सम्बन्धी व्यापकता को—पाश्चात्य के लेखकों, कवियों और कलाकारों ने प्रथम स्थान दिया था। उत्तम, सर्वश्रेष्ठ साहित्य और कला में दो ही गुण प्रधान होते हैं, सरलता और विश्व व्यापकता। जो कला सरल होती है उसी में विश्व-सम्बन्धी सम्पूर्णता की व्यापकता होती है। ग्वालियर घराने की गायकी ने इसी प्राचीन सिद्धान्तों को प्रमाणित माना था और उसका अनुकरण और पालन किया था। राग की व्याख्या करने में राग के स्वरों का सरल और कलात्मक उच्चारण करना ही सबसे बड़ा गुण है। राग को स्पष्ट करने में स्वरों का नियमानुसार धीरे-धीरे बढ़ना और राग की मर्यादा को सुरक्षित रखना, यही एक कुशल गायक का धर्म है। इस प्रकार का गायन राग और बंदिश दोनों का पोषक होता है। इस प्रकार के राग के कलात्मक और भावात्मक विश्लेषण में बंदिश के चमत्कार का भी कलात्मक प्रदर्शन होता है। परन्तु इस प्रकार के कलायुक्त सरल गायन में मेरखण्ड के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरों की उलट-पुलट नहीं होती। मेरखण्ड तो गायन-शैली का चातुर्य है। उसमें राग-व्याख्या का मौलिक सौंदर्य नहीं होता। इस प्रकार के गाने को हम दिमागी गाना ही कहेंगे। इसमें राग-विश्लेषण का स्वर—चमत्कार ही होता है, उसका स्वाद और उसका आनन्द नहीं होता। स्वरों की उलट-पुलट में स्वरों का रसात्मक और भावात्मक प्रदर्शन नहीं हो पाता। यह एक प्रकार की अचम्भा करने वाली राग की दिमाग़ी कसरत होती है। इसमें रचना अथवा वंदिश के प्रति एक प्रकार की बौद्धिक उदासीनता होती है और शब्दों के मूल्य का तिरस्कार होता है। ग्वालियर की गायकी में यह दोष नहीं पाये जाते।

राग और वंदिश की सीधी-सादी, सरल बढ़त के लिए बड़ा संयम चाहिए। ग्वालियर की गायकी के कलात्मक अनुशासन में संयम प्रधान था। सीधा-सीधा स्वर में गाना मुश्किल होता है। बिडार अंग तो सब फिर सकते हैं जिनका गला आसानी से घूमता है। मेरखण्ड की तानें भी कड़े परिश्रम से गले में आ जाती हैं। मगर राग को सीधे-सीधे गाना और राग को सही ढंग से वढ़ाना दुष्कर हो जाता है। स्वर को सीधे कहना ही सबसे मुश्किल होता है। कुशल गायक इस प्रकार के गायन से वचता है और स्वरों के चमत्कार दिखाने की धुन ही में रहता है। कभी-कभी स्वरों की उलट-पुलट में वह इतना लीन हो जाता है कि वह राग के चरित्र को भूल जाता है और उसके वादी स्वर से भी कोई लाभ नहीं उठाता। जब कोई घरानेदार गायक राग को इसी सरल ढंग से वढ़ाता है तो कुछ लोग कहते हैं कि वह रस्सी बट रहा है। इस प्रकार की मनमानी आलोचना निर्मूल है और उसमें मौलिक गायकी के सिद्धान्तों की मनमानी उपेक्षा भी है। स्वर्गीय बड़े गुलाम अली खाँ भी कभी-कभी इस प्रकार की आलोचना के समर्थक बन जाते थे। वह प्रतिभाशील, कुशल गायक तो अवश्य थे परन्तु उनके गायन का एक ही लक्ष्य था और वह था श्रोताओं का मनोरंजन। उन ऐसे और भी सफल गायक गायकी के इस मौलिक सिद्धान्त को नहीं मानते।

ग्वालियर की गायकी ने इस मौलिक सिद्धान्त का पूर्ण पालन किया और अपने को सर्वश्रेष्ठ और प्रतिष्ठित बनाया। ग्वालियर की गायकी में पेंचदार गायकी का भी कोई लक्षण नहीं था। सरलता के सिद्धान्त को प्रथम, मौलिक सिद्धान्त मानकर इस गायकी ने पेंचदार गायकी का भी बहिष्कार किया। प्रायः पेंचदार गायकी में भाव और रस नहीं होते और न राग की सरल, मौलिक व्याख्या होती है। ग्वालियर की गायन-शैली के इस मौलिक सिद्धान्त में एक असत्याभास, परस्पर विरोधी मत की भावना थी जिसका अर्थ है कि आसान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाना मुश्किल होता है और मुश्किल गाना आसान होता है। यह उल्टा सत्य संगीत-कला का सबसे बड़ा सारगर्भित सत्य है।

ग्वालियर की गायकी में तीनों सप्तक में घूमने वाली मजबूत, मर्दाना और शानदार गमकयुक्त तानें होती थीं। यह तानें इस गायकी के पुरुषत्व को प्रकाशित करती थीं। इस प्रकार के गाने को हम दमदार, जीवट का गाना कहते हैं जिसमें केवल कोमल भावुकता का नारीत्व नहीं होता। रहमत खां की तरह सुरीला होना और बात थी और अब्दुल करीब खाँ की तरह सुरीला होना और बात थी। मर्दाने ढंग के सुरीलेपन में कुछ और बात होती है जिसका कोई सम्बन्ध पतली, सुरीली आवाज से नहीं होता।

इस गायकी में बोल (तान) भी बड़े कलात्मक ढंग से लगाई जाती थी और बंदिश के रचनात्मक चमत्कार का भी पूर्ण प्रदर्शन होता था।

संयम, शोभा, मर्यादा, भारी भरकम पन, मान, प्रतिष्ठा यह भी इस गायकी के गुण थे। श्रोता इसकी लाग-डाँट, इसके (दबदबे) इसके तेवर और इसके आत्मसम्मान के कलात्मक प्रदर्शन से बहुत प्रभावित होते थे। यही कारण था कि यह एक सर्वश्रेष्ठ, गम्भीर, शानदार गायकी मानी जाती थी।

खेद है कि इस गायकी का अब लोप हो गया है और अब यह अप्रचलित और लुप्तप्राय हो गई है। अब तो हमें इसके पदचिन्ह भी दिखाई नहीं देते। परन्तु इसके मौलिक सिद्धान्तों को याद रखना और उनकी जागृति करना हमारे आधुनिक ख्याल-गायन के लिए बहुत लाभदायक होगा। इस मौलिक शैली के प्रोत्साहन से हमारे संगीत में उन्नति होगी।

आगरा घराना

अकबर-युग के हाजी सुजान खाँ ही इस घराने के आरम्भकर्ता अथवा जन्मदाता माने जाते हैं। इस घराने वाले इन्हीं को अपना पूर्वज अथवा आदि पुरुष मानते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत के ध्रुपद युग में हाजी सुजान खाँ धमार शैली के अन्वेषक माने गये हैं। यही कारण है कि इस घराने में ध्रुपद और धमार का भी रिवाज रहा है जिससे इसकी गायकी में एक विशेष प्रकार की गम्भीरता का भाव मिलता है। संगीत के आधुनिक युग में इसी प्राचीन घराने के वंशज घघ्घे खुदाबख्श ने उन्नीसवीं शताब्दी में इस घराने की ख्याल पद्धति का आरम्भ किया। वह इस घराने की ख्याल-शैली के अन्वेषक माने जाते हैं। इस तरह से इस घराने में ध्रुपद-धमार परंपरा और ख्याल परंपरा दोनों का उत्तम सहयोग और मिश्रण रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह तो रही इस घराने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात। परन्तु यह घराना ख्याल-शैली ही का एक प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध घराना माना जाता है। घघ्घे खुदाबख्श ने ग्वालियर में जाकर नत्थन पीरबख्श से शिक्षा ली और उनकी घघ्घी आवाज का दोष अभ्यास से जाता रहा था। जब यह आगरे लौट आये तो लोग इनकी आवाज़ सुनकर दंग हो गये। यह जयपुर और अलवर के प्रसिद्ध ध्रुपद गायक बहराम खाँ के समकालीन थे और उनके गहरे दोस्त भी थे। यह आपस में जिगरी दोस्त थे और कभी-कभी जब एक दूसरे से झगड़ा हो जाता था तो वह एक दूसरे को मना लेता था। इस प्रकार की बहुत सी दिलचस्प घटनायें इन दोनों के बारे में प्रसिद्ध हैं। पुराने गायक बताते हैं कि इन दोनों ने आपस में पगड़ी बदली थी और इन दोनों घरानों में बहुत काल तक बड़ा मेल-जोल रहा। उस काल के प्रसिद्ध संगीतज्ञों में जयपुर के बीनकार रज्जबअली खाँ, गायक मुबारक अली खां और देहली के गायक तानरस खाँ का नाम भी मशहूर था।

घघ्घे खुदाबख्श ग्वालियर की मौलिक ख्याल-शैली के अनुयायी थे और इस कारण आगरा गायकी और ग्वालियर गायकी के बीच में एक प्रकार की बन्धुता की भावना थी जिसका नाश कभी नहीं हुआ। इस प्रकार का सादृश्य और इस प्रकार की सजातीयता अथवा निकटता आगरा घराने की गायकी में साफ-साफ दिखाई देती है। और किसी घराने की गायकी ग्वालियर की गायकी के इतने क़रीब नहीं हैं और न और कोई गायकी उस मौलिक ख्याल गायकी के घराने की मूल भावना से इतनी अधिक सम्बन्धित रही। गायकी के कलात्मक क्षेत्र में भी इस सम्बन्ध का प्रमाण मिलता है। आगरा घराने ने ग्वालियर घराने की विशुद्ध गायकी का सैद्धान्तिक अनुकरण करके उसको अपने व्यक्तित्व के सांचे में ढाला और कला की दृष्टि से उसका नया रचनात्मक निर्माण किया। आगरा गायकी ने ग्वालियर गायकी के लक्षणों और उसकी मुख्य विशेषताओं को अपनाया और उन पर अपने घराने की छाप लगायी। ऐसा करके उसने अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखा और उसका त्याग नहीं किया।

घघ्घे खुदाबख्श के सुपुत्र गुलाम-अब्बास ही इस पिछले युग में आगरा घराने के मार्गदर्शक माने गये हैं और वही इस घराने की प्रचलित शैली के अन्वेषक भी माने जाते हैं। उन्होंने बड़ी उम्र पाई थी और एक सौ बीस वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। आधुनिक युग में गुलाम अब्बास खाँ ही ने आगरा घराने की गायकी की महत्वपूर्ण, सैद्धान्तिक व्याख्या की ओर उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलात्मक संघटन भी किया। जिसको आजकल आगरा गायकी कहते हैं उसके निर्माता यह गुलाम अब्बास ही थे। इन्होंने ही अपने घराने की गायकी को सुरक्षित रखने के लिए घराने के तीन प्रसिद्ध गायकों को पूरी शिक्षा दी और उन्हें तैयार किया। पहले तो इनके अपने सगे छोटे भाई जयपुर के कल्लन खाँ थे जो बड़े विद्वान् और अनुभवी गायक और संगीत-शिक्षक थे। इनके सुपुत्र स्वर्गीय तसद्दुक हुसैन खाँ थे जो संगीत के असाधारण विद्वान् थे और बड़ौदा रियासत में बरसों नियुक्त रहे। बम्बई के स्वर्गीय विलायत हुसैन खां ने भी इन कल्लन खाँ से शिक्षा प्राप्त की थी। इनके और भी कई नामी शिष्य थे। दूसरे गायक जिनको गुलाम अब्बास खाँ ने तैयार किया था वह थे बम्बई के सुप्रसिद्ध ख्यालिये नत्थन खाँ जिनसे भास्कर राव बखले ने शिक्षा ली थी और आगरा गायकी में विलक्षण योग्यता प्राप्त की थी। नत्थन खाँ गुलाम अब्बास खाँ के भतीजे थे और विलायत हुसैन खाँ के पूज्य पिता थे। इन नत्थन खाँ के बड़े लड़के का नाम मुहम्मद खाँ था जो बम्बई के एक विद्वान् और मशहूर गायक माने जाते थे और जिनको सैकड़ों रचनायें याद थीं। नत्थन के एक और लड़के थे जिसका नाम अब्दुल्ला खाँ था और जो बहुत अच्छा गाते थे। महफ़िलों में भास्कर राव और अब्दुल्ला खाँ का गाना अक्सर साथ-साथ होता था।

गुलाम अब्बास खां ने एक और गायक को शिक्षा देकर तैयार किया जो इस जमाने में आगरा घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक और सरताज माने गये हैं। इनका नाम था बड़ौदे के फ़ैयाज खां जिनके यह नाना लगते थे। अपने नाना ही से स्वर्गीय फैयाज खां ने शिक्षा पायी। बरसों वह अपने नाना के साथ रहे और घूमे और रियाज़ किया और गाया। गुलाम अब्बास खां ने फैयाज़ ख़ां को छुटपन से अपने पास रखा और शिक्षा दी और गवैया तैयार किया। फ़ैयाज खां रिश्ते में रंगीले घराने के थे मगर अपनी ननिहाल से वह आगरा घराने में सम्मिलित थे। अपनी गायन-परम्परा और शिक्षा की दृष्टि से वह आगरा घराने ही के थे। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण वह इस पिछले युग में इस घराने के सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय गायक माने जाते थे।

जिस तरह से बहराम खां ने अपने डागुर बानी के ध्रुपद के सुप्रसिद्ध घराने को स्थापित किया था उसी तरह घग्घे खुदाबख्श ने आगरा के ख्याल घराने को स्थापित किया था। यह दोनों अपने-अपने घराने के जन्मदाता और अन्वेषक थे। और जिस तरह बहराम खाँ के वंशज, दोनों भाई जाकिरुद्दीन खाँ और अलाबन्दे खां ने अपने घराने की ध्रुपद-आलाप की शैली की बेजोड़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या की थी उसी तरह गुलाम अब्बास खाँ, नत्थन खाँ और फ़ैयाज खाँ ने आगरा घराने की ख्याल-शैली की सबसे उत्तम व्याख्या की। जैसे बहराम खां के घराने में उनकी शिष्य परम्परा का नाम जियाउद्दीन खाँ और नसीरुद्दीन खाँ ने रोशन किया था उसी तरह फैयाज खाँ ने और उनके बाद विलायत हुसैन खाँ ने आगरा घराने की प्रतिभा को स्थापित किया था। इस समानता और तुलना के उदाहरण से पता चलता है कि इन दोनों घरानों की परम्परा कैसे सुरक्षित रही और व्यावहारिक संगीत के क्षेत्र में इन दो घरानों की शैलियां कैसे परिमार्जित बनी रहीं। दोनों घरानों का अटल विश्वास परम्परावाद में था। जैसा पहले कहा गया है। परम्परा और व्यावहारिक संगीत के मूल सिद्धांत और शैली साथ-साथ चलते हैं। शिष्य-परम्परा इस शैली का क्रियाशील समर्थन करती है ।

आगरा घराने की शिष्य परम्परा में भी अच्छे प्रतिभाशील गायक हुए हैं। आगरा और अतरौली को एक ही सम्मिलित घराना समझा जाये तो मथुरा को भी हम उसके साथ लेंगे। मथुरा के चन्दन चौबे गुलाम अब्बास खाँ के शिष्य थे। मथुरा के काले खाँ 'सरस पिया' भी आगरा घराने के थे। इसी तरह अतरौली के महबूब खाँ "दरस पिया" भी आगरा घराना में सम्मिलित थे। उनके दोनों सुपुत्र अता हुसैन और बड़े हुसैन मथुरा के काले खाँ के सुपुत्र गुलाम रसूल खाँ (फैयाज खां के भांजे) भी इसी घराने के हैं। इसी तरह से आगरे के बशीर खाँ और जावरे के बशीर खाँ भी इसी घराने के थे। शिक्षित वर्ग में उस्ताद फैयाज के शिष्यों में श्रीकृष्ण नारायण रतनजनकर, दिलीप चन्द्र वेदी, अताहुसैन, सुशील कुमार चौबे, स्वर्गीय स्वामी वल्लभदास, रजनीकान्त देसाई और सोहन सिंह इत्यादि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

आगरा घराने की गायन-कला और उसकी गायकी की क्या विशेषता है इस पर विचार करते समय हमें उसका सबसे अच्छा उदाहरण और नमूना स्वर्गीय उस्ताद फ़ैयाज के गायन में मिलता था। उनके गायन में इस घराने की गायन-शैली अपनी पराकाष्ठा के उच्च शिखर पर पहुंची थी। उनको ही इस घराने का आधुनिक युग में सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि मानकर हम इस घराने की गायन-कला पर प्रकाश डाल सकते हैं। उन्हीं की गायन-कला पर विचार करके हमें इस घराने के संगीत की विशेषताओं का पूरा-पूरा पता चल जाता है। हम यह सब बहुत संक्षेप में कहेंगे।

पहली बात जो इस घराने की गायकी में मुख्य है वह है इसके रागों को शास्त्रीय शुद्धता और उनकी परम्परागत सच्ची व्याख्या। आम जबान में हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस बात को इस तरह से कहेंगे कि इस घराने के राग हमेशा सच्चे होते हैं। संगीत शास्त्रों में रागों की जैसी व्याख्या है वैसी ही इस घराने के गायन में भी है।

मगर इसके साथ-साथ इस घराने की गायकी का एक दूसरा गुण भी है। इसकी रागों में केवल एक कोरी शास्त्रीय शुद्धता ही नहीं होती। दूसरा गुण जो इस गायकी में है वह है इसके रागों का भावात्मक और रसात्मक प्रदर्शन। कोरा शास्त्रीय गाना नीरस भी हो सकता है। परन्तु कला की सच्चाई केवल गणित की सच्चाई नहीं होती कि दो और दो चार होते हैं। यह तो एक प्रकार का मौलिक सत्य है जिसमें कला की अनुभूति नहीं है। गायन-कला में किसी राग के स्वरों का मौलिक शास्त्र वाला नीरस वर्णन नहीं होता। स्वरों की व्याख्या भावों और रसों के साथ होती है। आगरा गायकी का बल, सौंदर्य, बोध भाव पर अधिक है। प्रायः एक सुरीली आवाज़ वाला गायक संवेगात्मक भावुकता का सहारा लेकर अपने श्रोताओं को खुश कर लेता है। परन्तु इस प्रकार के आनन्द में कला की सौन्दर्यानुभूति नहीं होती। केवल तत्काल भाव का जन्म ही ऐसे संगीत के प्रदर्शन में होता है और उसकी संगीत-कला में कोई सौन्दर्य-गुण-विवेचन नहीं होता। इस प्रकार के संगीत में हम गायक का सौन्दर्य विभव नहीं पाते और न श्रोता में हम कला के सौन्दर्य-निर्णय की कोई भावना पाते हैं। दोनों ओर से एक सहज भावुकता की लहर उठती है और एक प्रकार की सहज अनुक्रिया का जन्म होता है। यह आनन्द केवल सस्ती भावुकता का प्रतीक होता है और इसमें गायक के भावों का नियंत्रण नहीं होता। इस प्रकार के संगीत में केवल एक नाटकीय भावना होती है।

यह बात आगरा गायकी में नहीं है। इसमें श्रोता आवेग से ही नहीं परन्तु अपनी समझ से भी काम लेता है। गायक के गायन का वह स्वयं भावात्मक अनुभव करता है चाहे वह वात्सल्य हो या अनुराग या करुणा या शृंगार। श्रोता की भावात्मक प्रतिक्रिया में समझ होती है, केवल भावोन्माद नहीं होता। इस प्रकार के श्रोता में इस प्रकार के आनन्द लेने के लिए केवल उथली भावुकता ही नहीं होती परन्तु एक प्रकार की भावात्मक परिपक्वता भी होती है। गायक के संगीत के प्रति ऐसे श्रोता में भावात्मक समंजन करने की क्षमता होती है। उसको अपनी समझ से यह ज्ञात होता है कि उसको गायक के संगीत का पूरा आनन्द आ रहा है। इस कारण आगरा गायकी में गायक और श्रोता के बीच में एक प्रकार का भावात्मक विनिमय होता है। स्वर्गीय उस्ताद फ़ैयाज खाँ कहा करते थे "श्रोता की आँख से आँख मिलाने ही में संगीत का मिजाज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनता है।" जब तक इस प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध दोनों में नहीं होता तब तक संगीत का पूरा आनन्द दोनों में से एक को भी नहीं आता यह बड़ा सारगर्भित तत्व है

तीसरा गुण इस गायकी में यह है कि इस घराने के गायक के गायन में उसके व्यक्तित्व की छाप होती है और उसका व्यक्तित्व होता है। गायक अपने गायन में सक्रिय भाग लेता है अथवा शामिल होता है और उसको अपना खुद का गायन बनाता है। वह केवल संगीत का यंत्र अथवा औज़ार नहीं बन जाता और उसके नियमों का केवल निष्क्रिय पालन ही नहीं करता। वह अपने संगीत का जन्मदाता है और उसका निर्माण करता है। उसके संगीत में उसके व्यक्तित्व की छाप होती है। इसी कारण वह समझ-बूझकर गाता है और अपने गायन को अपने ही ढंग से सजाता है। इस गुण के बग़ैर गायक संगीत के कानूनों तथा नियमों का ग़ुलाम बन जाता है और वह अपनी कल्पना से काम नहीं लेता। आगरा गायकी में यह दोष नहीं है।

परन्तु इसके साथ-साथ इस घराने का गायक अपनी गायकी का तकनीकी विशेषज्ञ भी होता है और उसको उसकी पूरी तकनीकी जानकारी होती है। वह बढ़त और फिरत के मूल सिद्धान्तों से परिचित होता है और ख्याल की रचना के स्थाई और अन्तरे को भरना जानता है। उसके बहलावे, उसका स्वर का लगाव, उसकी संगीतमय भावुकता, उसके गाने की पुकार, उसकी तानें, बोल तानें, उसकी बन्दिश का सजाव और सिंगार, उसकी राग का जीता-जागता चित्र, उसका ताल-चमत्कार और उसकी गायकी के तरह-तरह के आभूषण, यह सब उसके गायन को सजाते हैं। वह इन सब गुणों से अपने गाने को सजाता है और उसमें जान डालता है। जब वह गाता है तो हर श्रोता का सिर हिलने लगता है और उसके शरीर में गति होने लगती है। वह आंखें बन्द कर नहीं गाता परन्तु श्रोताओं की तरफ़ देखकर गाता है। वह अपने गायन में अपने सुनने वालों से मानों बातें करता है और उनकी कल्पनाओं को उत्तेजित करता है। यही कारण है कि श्रोता उसके गाने का पूरा आनन्द लेते हैं, और ऊबते नहीं।

परन्तु ऐसे गायन में एक गुण और होता है। वह है रचना के शब्दों का स्वाभाविक, स्पष्ट और भावुक उच्चारण। गायक की बन्दिश का रचनात्मक चमत्कार भी श्रोता के सामने आ जाता है। न तो वह अपने शब्दों को खाता है और न चबाता है, परन्तु उनका सुन्दर, कलात्मक उच्चारण करता है और अपनी राग और अपनी बंदिश की बढ़त में इस भावुक शब्द उच्चारण से वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत फ़ायदा उठाता है। वह जानता है कि शब्दों को कैसे कहा जाये।

इन सब गुणों के रहते हुए यह गायकी अपने को हर गायकी से निराला बना लेती है। कद्रदान ऐसे गायन के भक्त बन जाते हैं। इस सबका कारण यह है कि इस गायकी में स्वर और ताल दोनों का सुन्दर सहयोग होता है। उस्ताद फैयाज़ के लिए लोग कहा करते थे कि वह ताल के बादशाह थे और लय उनकी गुलाम थी। यह बिल्कुल ठीक था। घराने के अच्छे गायकों में भी कभी-कभी यह गुण दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, इस घराने की बोल तानें बड़ी सुन्दरता से सजाई जाती हैं। शब्दों को इस कलात्मक ढंग से बांटा जाता है कि वह कानों को लय की गति में बड़े सुन्दर लगते हैं। शब्दों को इस कलात्मक और भावुक ढंग से कहा जाता है कि वह ताल की मात्राओं में नपे-तुले चले आते हैं। जब गायक अपनी बोल-तान के साथ सम पर आता है तो उसकी भावुक रचना नाटकीय गीत का रूप धारण कर लेती है और उसमें एक प्रकार का चकित करने वाला नाटकीकरण होता है। यह केवल एक प्रकार का ताल सम्बन्धी अभिनय नहीं होता, परन्तु उसमें लय के सूक्ष्म दर्जों का कलात्मक प्रदर्शन भी होता है।

यही कारण है कि इस गायकी के तिहैये अचानक और स्वाभाविक होते हैं और श्रोता को चकित और आनन्दित करते हैं। सबमें बड़ी बात तो यह है कि स्थाई के शब्दों को इस ढंग से कहा जाता है कि रचना की पहली पंक्ति में प्रतीक्षा का भाव होता है और सम सामने आता दिखाई देता है। परन्तु गायक ताल की मात्राओं को गिनकर ऐसा नहीं करता। ताल उसके चित्त और उसके मन में जम जाती है और वह जहां से चाहता है वहां से सम पर आ जाता है। मगर जब वह सम पर आता है तो खूबसूरती में आता है, घबराकर नहीं आता है। वह अपने श्रोता को अपना सम दूर से दिखाता है। और घराने के गायकों की तरह वह धड़ाम से उस पर गिर नहीं जाता है।

इस प्रकार के गहरे लय-ज्ञान को गायक की दिमाग़ी लय अथवा क़ल्बी लय कहते हैं। गायक के दिमाग़ में लय समा जाती है और वह उसको गिनता नहीं। जिस किसी गायक और वादक में इस तरह की लय होती है वह लय के बहुत से चत्मकार दिखा सकता है। मानना पड़ेगा कि और घरानों के मुक़ाबले में आगरा घराना जैसी उम्दा लय देखता है यह बात कहीं और नहीं मिलती। स्वर और लय का इतना पारस्परिक सम्बन्ध, ऐसा कलात्मक संश्लेषण और ऐसा सम्मिश्रण कहीं और नहीं मिलता। इस तरह गायक और तबला-वादक में इस प्रकार का प्रजातान्त्रिक सहयोग कहीं और नहीं मिलता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस गायकी में तब्लिया केवल ठिकैत अथवा संगत करने वाला दास अथवा गुलाम नहीं होता, परन्तु साथी और सहयोगी होता है। उसे भी बजाने में मज़ा आता है और हर तरह से वह इस पूरे संगीत में भाग लेकर सक्रिय भागी बन जाता है। आगरा घराना की लय न विलंबित और न मध्य लय से तेज होती है। ऐसी ही लय में राग, रचना, भाषा, भाव, तान, लय सबका पूरा आनन्द आता है। इसीलिए इस गायकी को हम बहुमुखी और सर्वांगसम्पन्न गायकी कहते हैं। स्वर और लय इस गायकी के हृदय की धड़कनें हैं।

देहली घराना

लोगों का विचार है कि अचपल अथवा मियां अचपल ने जो शाही गायक थे और जिनकी बहुत सी बंदिशें अब तक मशहूर हैं, इस घराने को सबसे पहले स्थापित किया। आधुनिक युग में तानरस खां ही देहली घराने के अन्वेषक और सर्वश्रेष्ठ गायक माने गये हैं। देहली के अलावा यह बरसों हैदराबाद में भी रहे। बहुत काल तक उनके घराने के बहुत से वंशज भी वहां रहे। इस तरह से तानरस खां का घराना आधुनिक युग देहली का प्रमुख ख्याल घराना माना गया। यह डासना के रहने वाले थे और इनका असली नाम कुतुब बख्श था। बादशाह ही ने इन्हें "तानरस खां" की उपाधि दी थी।

अदारंग और सदारंग के जमाने से देहली गायन का केन्द्र बन चुका था। मुहम्मद शाह रंगीले के काल में ख्याल की शैली को संगीत में विशेष प्रधानता मिली थी। ध्रुपद परम्परा का अन्त नहीं हो गया था परन्तु ख्याल की नई परंपरा के आगे उसकी शैली की अवनति हो रही थी। हिन्दुस्तानी संगीत अठारहवीं सदी के बाद ख्याल का संगीत था और ध्रुपद को लोग कुछ भूलते से जा रहे थे। इधर-उधर सेनिया घराने के गायक और वादक भी मौजूद थे। बासत खां, प्यार खां और जाफ़र खां, बहादुर हुसैन खां और अमीर खां सेनिये थे। रजब अली खां और बन्दे अली खां ऐसे धुरन्धर वादक भी जयपुर में मौजूद थे। परन्तु गायकों में हद्दू-हस्सू खां, तानरस खां, घग्घे खुदाबख्श और मुबारक अली खां ऐसे धुरन्धर कलाकारों के ख्याल-गायन के आगे सेनिया घरानों का ध्रुपद फ़ीका पड़ गया था। देहली बहुत काल से ख्याल-गायन का प्रधान केन्द्र बन चुका था। देहली में संगीतज्ञों का दौर-दौरा था और संगीत की बड़ी चहल-पहल थी। रईसों को भी संगीत का बहुत शौक था। गायकों के तरह-तरह के वर्ग थे और उनकी संख्या भी बहुत बढ़ गई थी। औरतें भी संगीत की पारंगत बन गई थीं। इसी देहली में कुछ समय के बाद हम नूरबाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी महिला कलाकार का नाम सुनते हैं। आम जनता में भी संगीत का प्रचार बहुत बढ़ गया था। जिस शहर में अदारंग और सदारंग के जमाने में ख्याल शैली ने जन्म लिया था वह इस शैली का प्रधान उद्गम स्थान बन गया। शायद इसके बाद ही लखनऊ और ग्वालियर में ख्याल के प्रमुख घरानों का जन्म हुआ था।

देहली कव्वाल बच्चों के घराने से भी संबन्धित था। परन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की चर्चा करते हुए हम तानरस खां को ही देहली का सर्वश्रेष्ठ गायक मानेंगे और उन्हीं के घराना को हम इस प्रसंग में देहली का सबसे प्रथम ख्याल का घराना मानेंगे।

तानरस खां का असली नाम कुतुब बख्श था। यह बताना तो मुश्किल है कि संगीत की शिक्षा इन्होंने अपने पिता क़ादिर बख्श के अलावा और किससे पाई। संभव है वह किसी रूप से मियां अचपल से भी शिष्य की हैसियत से सम्बन्धित रहे। बादशाह ही ने इन्हें "तानरस खां" की उपाधि दी थी। अपने जमाने के कुशल और सुप्रसिद्ध गायकों में इनका नाम था और दूर-दूर तक लोग इन्हें जानते थे। यह अपने युग के प्रमुख ख्याल-गायकों में गिने जाते थे। पटियाले के फ़तेह अली और अलीबख्श इनके शिष्य कैसे बने इसकी चर्चा का पता एक दिलचस्प घटना से चलता है। फ़तह अली और अलीबख्श को पहले मियां कालू ने जो अलीबख्श के पिता से थोड़ी-बहुत तालीम देकर बहराम खां की शिष्य गोकी बाई का शागिर्द बनवा दिया था। मियां कालू गोकी बाई के साथ सारंगी की संगत करते थे। इस तरह फ़तह अली खां और अली बख्श गोकी बाई के शागिर्द बन गये और बहुत अच्छा गाने लगे। परन्तु गायकों में यह एक प्रकार का लांछन अथवा कलंक का धब्बा था कि यह दोनों बड़े उस्ताद को छोड़कर एक महिला गायिका के शिष्य हो गये थे। यह बात मियां कल्लू को खटकती थी। सुनते हैं कि जयपुर के एक जलसे में जहां तानरस खां का गाना था मियां कालू ने अपने इन दोनों को गवाया भी और वह अच्छा गाये भी। मौका पाकर मियां कालू ने उसी जलसे में इन दोनों को तानरस खां का शिष्य बनवाया और वह उस दिन से देहली के सुप्रसिद्ध गायक के शागिर्द हो गये और उससे शिक्षा लेने लगे। इस तरह से वह पहले वाला अनिष्ट दूर हो गया और भाग्य इन दोनों के अनुकूल हो गया। तानरस खां घराने के यह दो अनुगामी और अनुयायी देहली घराने की गायकी का अनुकरण करके कुछ दिनों में बड़े मशहूर गायक बन गये। इस तरह से कहा जा सकता है कि फतह अली खां और अलीबख्श ने जिन्हें "अलिया फत्तू" भी कहते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जरनैल (जनरल) करनैल (करनल) भी कहते थे, पटियाले घराने को स्थापित किया। मगर यह पटियाला घराना देहली घराने की शाखा ही थी। गायन-शैली के हिसाब से यह कोई बहुत नामी घराना नहीं था।

मगर यह दोनों देहली घराने के परम भक्त थे और इस घराने की शिष्य-परम्परा का जीवन भर आदर करते रहे। तानरस खां के सुपुत्र उमराव खां का नाम पिछले पचास वर्षों में बहुत काफ़ी हुआ। वह तानरस खां के बाद इस घराने के संरक्षक समझे जाते थे। वह बड़े विद्वान् और अनुभवी गायक थे और उनसे बहुतों ने शिक्षा पाई। अपने जीवन-काल में उनका बहुत आदर और सम्मान हुआ और वह देहली घराने के कर्णधार माने जाते थे। "अलिया फ़त्तू" बहुत अच्छा गाते थे मगर इनके सामने अपना सिर झुकाते थे। उमराव खां को बहुत अंतरे याद थे। गायकों में भी उनका बहुत आदर और सम्मान था। हैदराबाद और देहली के अलावा वह उत्तर प्रदेश में भी आया करते थे और लखनऊ, बाराबंकी, उन्नाव इत्यादि की सैर किया करते थे। बुढ़ापे में वह थोड़ा झल्ले मिजाज के हो गये थे और गाने बजाने के मामले में वह गायकों की तीव्र आलोचना करने में कभी नहीं चूकते थे। यह स्वाभाविक था क्योंकि वह इतनी बड़ी और विस्तृत शिष्य-परम्परा के नेता और अगुवा थे। तानरस खां के सुपुत्र होने की हैसियत से अपने घराने में उनका प्रभुत्व माना जाता था। वह अपने पिता की तरह विलक्षण और प्रतिभाशील गायक नहीं थे। परन्तु उनका घराने में बहुत आदर था और अधिकार भी था।

उमराव खां के सुपुत्र सरदार खां पाकिस्तान चले गये थे। उन्हें भी अपने पिता से बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी और उनके पास बंदिशों का बड़ा अच्छा संग्रह था। उनका शुमार अनुभवी गायकों में था और पाकिस्तान के संगीत क्षेत्र में उनका बहुत आदर हुआ। उसका कदाचित् यह भी कारण था कि पाकिस्तान में प्रथम श्रेणी के गायकों का पूर्ण अभाव था। आगरा घराना के असदअली खां भी वहाँ जाकर बस गये थे। मगर उनमें सरदार खां का न तो अनुभव था और न वैसी जानकारी।

खुर्जा

देहली घराने की एक शाखा खुर्जा में थी। खुर्जे के जहूर खां, जिनका उपनाम "रामदास" था, देहली घराने के आखिरी चोटी के गायकों में थे और कई अवसरों पर जब देहली घराने के उत्तराधिकार की बात उठाई गई तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहूर खां ने अपने गायन से लोगों को कायल कर दिया कि अभी भी इस घराने के शिष्यों में उन जैसे लोग मौजूद हैं जो घराने के मान पर आंच नहीं आने देंगे। यदि किसी घराने का कोई शिष्य बहुत गवैया बन जाये और दावा करे कि वह घराने की विद्या का उत्तराधिकारी है तो उस परिवार के गायकों का धर्म है कि वह उस अभिमानी शिष्य को पराजित करके उसके दावे को गलत साबित करे और अपने घराने के सम्मान को सुरक्षित रखें और उसकी मर्यादा पर कोई आंच न आने दें। सुना जाता है कि ऐसे कुछ अवसरों पर जहूर खां ने अपने गायन से घराने की इज्ज़त को बचाया। ऐसे मौकों पर इस प्रकार का दंगली गाना-बजाना, जिसमें भीषण प्रतियोगिता की भावना होती है, एक प्रकार का शास्त्रार्थ होता है जिसमें घरानेदार कला के गुण के तराजू पर तौले जाते हैं और संगीत-विद्या की कसौटी पर कसे जाते हैं। सुना जाता है कि एक बार बीमारी की अवस्था में भी ज़हूर खां ने देहली घराने की लाज रखी। वह ऐसे ही कर्मठ गायक थे और देहली घराने के सच्चे प्रतिनिधि थे। उन्होंने अपने उपनाम "रामदास" के नामसे बहुत सी अच्छी बंदिशों की रचना भी की जो अभी भी बहुत से गायकों को याद हैं। उनके सुपुत्र खुर्जे में अलताफ हुसैन खां का काफी उम्र में अभी कुछ वर्ष पहले देहांत हुआ। वह भी बड़े योग्य, प्रतिभाशील और अनुभवी गायक थे जिनका गायक-समाज में बहुत आदर था। उनको बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें याद थीं। जीवन के अन्तिम वर्षों में वह बिहार के बनैली राज में नियुक्त हो गये थे। अलताफ़ हुसैन खां खुर्जा घराने के, जो देहली घराने के अन्तर्गत था, आखिरी गायक थे।

हापुड़

हापुड़ का भी एक घराना था जो देहली घराने ही के अन्दर था। लखनऊ के बाबा नसीर अहमद खां, जो नसीर खां के नाम से मशहूर थे, इसी घराने के थे। उनके पिता का यह घराना देहली घराने की शाखा थी।

देहली के अब्दुल करीम खां भी देहली घराने के प्रसिद्ध गायकों में थे। इन्हें बड़ी अच्छी बंदिशें याद थीं। ललितागौरी की एक बहुत सुन्दर रचना यह बड़े निराले ढंग से गाते थे।

मगर इन सबसे अधिक ख्याति हैदराबाद के उस्ताद शब्बू खां को मिली। वह यथार्थ में बड़े प्रतिभाशील और सुयोग्य गायक थे। जिस राग को वह गाते थे बड़े ही कलात्मक ढंग से गाते थे। एक संगीत-गोष्ठी में वह राग मालकोश बड़े निराले ढंग से गाये। स्वर्गीय भातखण्डे भी उस महफिल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके सामने बैठे थे। गाते समय वह इस राग का गंधार ऐसे कलायुक्त ढंग से लगाते थे कि श्रोता आनन्द से भर कर वाह-वाह करने लगते थे। इस प्रकार से स्वरों पर बड़ा विलक्षण अधिकार दिखाया जा रहा था। स्वर इस सच्चे ढंग से लगाये जा रहे थे कि भातखण्डे जी ने बार-बार खुश होकर उस्ताद शब्बू खां की बड़ी प्रशंसा की। उनकी गायकी में स्वर का लगाव बड़े निराले ढंग का था और अपनी बंदिश को भी उन्होंने बड़े ढंग से खूब सजाया। उनकी संगत में जो साज़ बजा रहा था उसकी अयोग्यता साफ़-साफ़ ज़ाहिर हो रही थी। शब्बू खां बड़े अनुभवी और रियाजी गवैये थे और उनके ख्याल-गायन में विद्वत्ता के अलावा विलक्षण कल्पना-शक्ति भी थी। क्योंकि यह सच है कि गायक किसी घराने का हो जब तक उसमें कल्पना-शक्ति नहीं होती उसका गाना बंधा होता है। उसमें नियमों का पालन होता है और घरानेदार गायकी के कानूनों की पाबन्दी होती है। शब्बू खां के गाने में कला के अलावा उनकी प्रखर बुद्धि, उपज, कल्पना, विद्वता और अनुभव, इन सबका कलात्मक प्रदर्शन होता था। उनके ऐसे गायक देहली घराने में कम थे।

देहली घराना अपनी खुली-डुली, असरदार गायकी के लिए मशहूर है। इस घराने की आवाजें भी बड़ी मंझी और सधी होती थीं। तालीम के साथ-साथ रियाज़ पर भी इस घराने में बहुत-बहुत ज़ोर दिया जाता था। स्वरों का विश्लेषण भी राग की व्याख्या के साथ बहुत कलायुक्त होता था। स्वर के लगाव में भी एक विशेष ढंग की रोचकता होती थी। आगरा घराने की तरह इस घराने में बोल-तान की कोई विशेषता नहीं थी और न तानों में इतना वजन होता था। मगर इस घराने की तानें बड़ी साफ, तैयार और सुरीली होती थीं। पता लगता था कि गायक ने रियाज़ से अपने गले को साधा है। गायन रोचक और प्रभावशाली होता था और उसके प्रदर्शन में भाषा-चमत्कार और शब्द-उच्चारण भी अपने ढंग का होता था। इस प्रसंग में हमें यह याद रखना चाहिए कि इस घराने में क़व्वाली भी गाई गई है। इसलिए इस घराने का उच्चारण स्पष्ट और भावयुक्त रहा है। बसन्त के उत्सव पर तानरस खां अपने शागिर्दों के साथ जुलूस में निकल कर बसन्त की रचनायें गाया करते थे। इनमें से कुछ रचनायें तो बहुत ही सुन्दर थीं और रचनात्मक दृष्टि से अनोखी थीं। देहली के कुछ वृद्ध कलाकारों को यह रचनायें कुछ साल पहले याद थीं।

इस घराने की बंदिशें बहुत सी रागों में थीं और उनकी रचना में कला का लालित्य था। जिस ढंग से उनकी रचना की गई थी वह उत्तम कला का उदाहरण था। देहली के मशहूर सारंगी वादक बुद्धू खां के, जो सुविख्यात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस्ताद मम्मन खां सारंगी नवाज के परम शिष्य थे और जिनका देहान्त पाकिस्तान में हुआ, को बहुत सी ऐसी चीज़ें याद थीं। मम्मन खां के पूर्वज मियां अचपल की परंपरा से परिचित थे और देहली घराने के संगीत से परोक्ष रूप से सम्बन्धित थे। इसी देहली घराने की विस्तृत परम्परा के अन्तर्गत देहली का पन्नालाल गोसाई का सितार का घराना भी था जिसकी ठुमरियां लखनऊ और बनारस की ठुमरियों से अलग थीं। तबला-वादकों में स्वर्गीय नत्थू खां और गामी खां के पूर्वज भी देहली घराने से सम्बन्धित थे।

अभी भी इस घराने के कुछ गायक हैदराबाद, देहली और देहली के आस-पास दिखाई देते हैं और इन्हीं कलाकारों के पास इस घराने की गायकी के कुछ नक्ते मिलते हैं। ख्याल का यह प्रतिष्ठित घराना ग्वालियर घराना और आगरा के बाद इस देश का प्रथम श्रेणी का घराना है। इन तीन ख्याल के घरानों के बाद ही और ख्याल के घरानों का नाम आता है।

किराना घराना

ग्वालियर, आगरा और देहली घरानों के बाद ही हम किराना घराने की बात करते हैं। प्रचलित किराना गायकी का कोई प्राचीन इतिहास नहीं है और इसके जीवन-काल को पचास-साठ वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं। जब कभी हम किराना घराने का नाम लेते हैं तो हम उसके आधुनिक प्रचार ही की बात सोचते हैं। प्राय: लोग स्वर्गीय अब्दुल करीम खां ही को इस घराने की गायकी का जन्मदाता और लोकप्रिय प्रचारक मानते हैं। परन्तु हमें उनकी मशहूर चीजों से—"पिया बिन नाहीं आवत चैन" और "जमना के तीरे" किराना गायकी का पता चलाना मुश्किल हो जाता है। उनका ग्रामफोन का रिकार्ड, "फगवा ब्रिज देखन को चलो री" भी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र राग बसन्त का इस गायकी में पाया गया बहुत अच्छा नमूना नहीं है। कदाचित् जब वह अपने संगीत की लोकप्रियता की बात सोचते थे तो किराना गायकी पर विशेष ज़ोर नहीं देते थे। इस प्रकार के गायन का कुछ भी कारण हो यह मानना पड़ेगा कि लोग अब्दुल करीम खां ही को किराना गायकी का अगुआ और मार्गप्रदर्शक मानते हैं। लोग यह भी कहते हैं कि अब्दुल करीम खां ही ने इस घराने को स्थापित किया। उनके पहले शिष्यों में सुरेश बाबू माने, राम भाऊ, सवाई गंधर्व, गनपत बुआ बेहरे और हीराबाई बडोदकर के नाम प्रमुख माने जाते हैं। दूसरे वर्ग में सवाई गंधर्व के शिष्य भीमसेन जोशी और गंगू बाई हंगल और फ़ीरोज दस्तूर के नाम लिए जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु हिन्दुस्तानी संगीत के कुछ विद्वानों और विचारकों का दृढ़ विश्वास है कि इस युग में किराना गायकी के अन्वेषक और सर्वश्रेष्ठ गायक वहरे वहीद खां थे जो लाहौर में बहुत काल तक रहे। लोगों का कहना है कि हीराबाई और अब्दुल करीम खां का गुरु-शिष्य सम्बन्ध रहा है। मगर अब्दुल वहीद खां ही हीराबाई के असली गुरु थे। उन्होंने ही इस सुविख्यात गायिका को इस गायकी की शिक्षा दी। यह कथन ठीक भी मालूम पड़ता है और हीराबाई बडोदकर स्वयं इस बात की साक्षी हो सकती हैं। अब्दुल वहीद खां, जिन्हें बहरे वहीद खां भी कहते थे, इस घराने की गायकी की सबसे उत्तम व्याख्या करते थे। इसमें तो कोई शंका नहीं कि उन्होंने ही इस गायकी का इतना महत्वपूर्ण प्रचार किया। अपने लाहौर के निवास काल में उन्होंने कुछ और लोगों को भी शिक्षा दी थी जिनमें फीरोज निजामी और उनकी बहिन इनायत ढेरोवाली प्रमुख थे। उनके गायन का प्रभाव और लोगों पर भी पड़ा। उन्नीस सौ अड़तीस में बड़े गुलाम अली खां भी उनके शागिर्द बनना चाहते थे। जब उन्होंने अपनी यह प्रबल इच्छा प्रकट की तो पटियाले के फतहअली खां के सुपुत्र आशिक अली खां ने और अलीबख्श के सुपुत्र अखतर हुसैन दोनों ने जो पटियाला घराने के संरक्षक माने जाते थे, अब्दुल वहीद खां को चुनौती दी कि वह पहले उन दोनों के साथ गा लें और तब बड़े गुलामअली खां को, जो पटियाला घराने के शिष्य थे, अपना शिष्य बनावें। लाहौर के तकिये पर इस सगीत के शास्त्रार्थ का प्रबन्ध किया गया था। परन्तु किसी कारणवश अब्दुल वहीद खां ने इस प्रतियोगिता की चुनौती और निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया और वह वहां नहीं गये। यदि यह घटना न होती तो बहुत सम्भव था कि बड़े गुलाम अली खां अब्दुल खां के शिष्य बन गये होते। सच तो यह है कि उनका ईमान बेहरे वहीद खां की गायकी पर आ गया था और वह उनके गायन से बहुत आकर्षित हो गये थे। यह वह जमाना था जब बड़े गुलाम अली खां को उत्तम घरानेदार गायकी का शौक था और उनकी संगीत की रुचि गंभीर थी। बाद में उनके जीवन का जो दौर आता है इसमें वह संगीत की लोकप्रियता ही की ओर पूरी तरह से झुक पड़े और "का करूँ सजनी आये न बालम" वाली आम जनता के लोकप्रिय गुलाम अली बन गये।

यह कहना, कि अब्दुल वहीद खां इस युग में किराना गायकी के अन्वेषक और प्रमुख प्रचारक थे, गलत नहीं था। उनमें और अब्दुल करीम खां में परिवार के अन्दर रिश्तेदारी भी थी। परन्तु दोनों में बहुत अन्तर था। अब्दुल करीम खां ने सुरीले गायन और सुरीलेपन और भावुकता पर सबसे अधिक जोर दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यही कारण था कि वह इतने प्रसिद्ध लोकप्रिय गायक बन गये। आज भी उनकी ख्याति उनके भावुक ग्रामोफोन गायन ही के कारण है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शास्त्रीय संगीत के बहुत अच्छे गायक नहीं थे। परन्तु लोग उन्हें एक लोकप्रिय कलाकार की हैसियत ही से जानते हैं। अब्दुल वहीद खां इस बात में उनके बिल्कुल विपरीत थे। उनका ध्यान घरानेदार गायकी और शास्त्रीय संगीत की तरफ बहुत ज्यादा था, लोकप्रियता पर नहीं था। वह किराना गायकी के लिए मशहूर हुए और वह अब्दुल करीम खां की तरह जनता के लोकप्रिय गायक नहीं थे। वह मननशील, गम्भीर संगीतज्ञ थे और वह राग-गायन को सबसे ऊंचा स्थान देते थे। उदाहरण के लिए, राग मारवा वह बहुत अच्छा गाते थे। लोगों ने उनके मुंह से शुद्ध सारंग ऐसे राग को भी बहुत अच्छा सुना था। और जहां तक मारुविहाग की स्थाई "रसिया जावो ना" का सम्बन्ध है, उन्होंने ही इस राग का प्रचार इस युग में किया। इस कारण वह राग-संगीत के विद्वान् भक्त थे और लोकप्रिय संगीत के लोकप्रिय प्रचारक नहीं थे।

किराना घराना यथार्थ में सारंगी वादकों का घराना है। अब्दुल करीम खां और अब्दुल वहीद खां के घराने में सारंगी पहले बजी और गाना बाद में गाया गया। किराना घराने का बहुत अधिक घरानेदार सम्बन्ध सारंगी वादन से रहा। इससे इस गायकी को बहुत लाभ भी पहुंचा और वह स्वर की तरफ अधिक झुक गई। जब कभी कोई सारंगी वादकों के घराने का कलाकार किसी और साज़ का शौक करता है तो उसे बहुत अच्छा बजाता है। इसी तरह जब वह गाने की तरफ जाता है तो उसमें भी बहुत कुशलता दिखाता है और कभी-कभी बहुत सुरीला गायक भी बन जाता है। पहले वर्ग के वादकों में सबसे पहले पटियाले के विचित्र बीन-वादक स्वर्गीय अब्दुल अजीज खां का नाम आता है जिन्होंने पैंतीस वर्ष सारंगी बजाने के बाद विचित्र बीन को हाथ में लिया और उसे बेजोड़ बजाया। दूसरे वर्ग के गायकों में सबसे पहले अब्दुल करीम खां हैं। उनके बाद इस युग में बड़े गुलाम अली खां और अमीर खां हैं। अमीर ख़ां के पिता इन्दौर के सुविख्यात सारंगी-वादक शामीर खां थे जिन्होंने अपने होनहार सुपुत्र को गाने की तरफ डाला। अमीर खां ने भी पहले थोड़ा-बहुत सारंगी का शौक किया था जैसे बड़े गुलाम अली ने भी पहले किया था। सारंगी, जिसे सौरंगी भी कहते हैं, कलाकार के मिजाज को रंगीन बना देती है और उसे सुर में भिगो देती हैं। क्या देहली के मशहूर सारंगी-नवाज मम्मन खां के सुपुत्र चांद खां और उसमान खां अच्छे गायक नहीं हैं? क्या देहली रेडियो के सारंगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वादक शकूर खां का होनपार बालक गाने में विशेष रूप से प्रतिभाशील नहीं है। सारंगी बजाने वाला जब कभी कुछ और गायेगा या बजायेगा उसमें भी आम तौर से असाधारण प्रतिभा दिखायेगा। यह एक मानी हुई और जांची हुई बात है।

प्रश्न उठता है कि और सम्मानित और प्रतिष्ठित घरानेदार और कलावन्त मौलिक घरानों की तुलना में इस नये अनुकरणात्मक घराने की गायकी की क्या विशेषता है ? पहली बात तो यह है कि किराना गायकी में मौलिक गायकी दृष्टि से प्रतिक्रिया की भावना है। इसमें प्राचीन ख्याल शैलियों का अनायास और अनैच्छिक अनुकरण होने के अलावा एक प्रकार की विरोधात्मक भावना भी है जिसको हम एक प्रकार का व्याघाती प्रतियोग कहेंगे जो ख्याल-गायन के मूल सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इसके राग-विस्तार को सुनकर ऐसा लगता है जैसे कोई कुशल सारंगी वादक अपनी सारंगी पर किसी राग का सोच-सोच कर अद्भुत विश्लेषण कर रहा है। राग के इस प्रकार के विस्तार अथवा विश्लेषण में किसी विशेष संश्लेषण की भावना नहीं होती। इस प्रकार की राग-व्याख्या राग की शास्त्रीय व्याख्या से बहुत कुछ अलग होती है और उसमें मस्तिष्क की प्रखरता का अंश अधिक होता है। यह एक प्रकार की चकित करने वाली दिमागी कसरत होती है। इस गायन में ताल बहुत विलम्बित लय में होती है जिसमें इस प्रकार का रागालाप बहुत आसान हो जाता है। स्थाई और अन्तरे के शब्द पूरे नहीं कहे जाते और न सुनाई पड़ते हैं। इसके अलावा शब्दों को मात्राओं में नहीं बिठाया जाता। दो या तीन ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है और गायक आसानी से सम पर आ जाता है। इसकी रचना का तालसहित गायन आधुनिक स्वतन्त्र अतुकान्त कविता से मिलता-जुलता है। ख्याल-गायन की इस प्रकार की अतुकान्त शैली में ख्याल-शैली के मूल सिद्धान्तों का निराला परित्याग है। यह गायकी ख्याल-गायन के अनुशासन का विरोध करती है और एक प्रकार की अनुशासनहीन अराजकता का प्रचार करती है। इस प्रकार के राग विश्लेषण में बंदिश के भराव अथवा सजाव की भी कोई गुंजाइश नहीं होती। द्रुत और तैयार तानों के अलावा इस गायकी में कला के और कोई आभूषण नहीं होते। ताल और लय का भी कोई विशेष आनन्द इस गायकी में नहीं आता। इस गायकी में स्वरों की चतुर उलट-पुलट होती है परन्तु उनकी भावात्मक व्याख्या नहीं होती।

इस गायकी के अन्वेषक ने मेरखण्ड ही पर पूरा ज़ोर दिया जिसमें स्वरों की विचित्र उलट-पुलट होती है। कुछ स्वरों की विचित्र उलट-पुलट में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गणित का क्रमचय होता है और जिससे गायक की बुद्धि की प्रखरता का ही अनुमान होता है। इस प्रकार के स्वरों की उलट-पुलट से और उनके गणितीय विश्लेषण से श्रोता चकित अवश्य होता है परन्तु इस प्रकार के गायन में किसी प्रकार का रसात्मक अथवा भावात्मक आनन्द नहीं होता। इस दिमाग़ी कसरत से पसीना ज़रूर बहता है परन्तु रोंगटे नहीं खड़े होते। इसमें दिमाग की प्रशंसा है परन्तु दिल पर लगने वाली चोट नहीं है। स्वरों की उलट-पुलट कभी-कभी अस्वाभाविक अतिशयोक्ति बनकर रह जाती है। तिलका मस्सा बन जाता है।

किराना गायकी के गाने वाले ज्यादा तो किराना घराने ही के हैं जैसे हीराबाई बडोदकर, गंगूबाई हंगल और भीमसेन जोशी। इन सबकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं जिन पर प्रकाश यहां नहीं डाला जा सकता। इनके अलावा इन्दौर के अमीर खां भी किराना गायकी ही गाते हैं। मगर वह किराने घराने के नहीं हैं। वह किसी कारण अब्दुल वहीद खां के शागिर्द बड़े गुलाम अली खां की तरह नहीं हो पाये। परन्तु वह अब्दुल वहीद खां को इस गायकी का सबसे बड़ा विशेषज्ञ मानते थे और शागिर्द न होते हुए भी उनकी गायकी के शागिर्द हैं और उसका पूरा अनुकरण भी करते हैं। वहीद खां ने अमीर खां का गाना सुनकर एक बार कहा था कि 'तुम्हारे गाने में मेरा गाना जिन्दा रहेगा।' वहीद खां ऐसे आत्म-सम्मान वाले गायक के मुंह से ऐसी प्रशंसा निकलना कोई मामूली बात नहीं थी। अमीर खां ऐसे प्रसिद्ध और प्रतिभाशील गायक को इस प्रशंसा पर गर्व करना चाहिए। अब्दुल वहीद खां की किराना गायकी का अनुकरण करके अमीर खां ने उसको और अच्छा बना दिया है। यह भी कोई मामूली बात नहीं है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि वह इन्दौर घराने के हैं। इन्दौर में कोई ख्याल का घराना नहीं हुआ। यह हो सकता है कि उन्होंने अमान अली खां ऐसे गायकों की, जो बम्बई के भेंडीबाजार में जाकर बस गये थे, मेरखन्ड की गायकी की नकल की। मगर असल में उनकी पूरी गायकी अब्दुल वहीद खां की किराना गायकी पर ही आधारित है। अमीर खां को इन्दौर के कल्पित ख्याल घराने का अनुयायी अथवा प्रतिनिधि कहना इतना ही निरर्थक है जितना यह कहना कि बड़े गुलाम अली पटियाला घराने की गायकी गाते थे। न वह सच था और न यह सच है। इतना सब कहने के बाद हम यही कहेंगे कि अमीर खां किराना गायकी के कुशल विशेषज्ञ हैं और प्रथम श्रेणी के प्रतिभाशील गायक होने के नाते उन्होंने इस गायकी को चार चांद लगाये हैं। जिस तरह से उनको किराना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायकी पर नाज़ होना चाहिए उसी तरह किराना घराने वालों को उन्हें अपना ही समझकर उन पर नाज़ करना चाहिए।

अल्लादिया खां घराना

और नये घरानों की चर्चा करते हुए हमें कहना पड़ता है कि आधुनिक युग में एक घराना अल्लादिया खां का भी है और जिसके वह मार्गदर्शक और प्रथम अन्वेषक थे। उनके पूर्वज अतरौली के रहने वाले थे। बाद में इस घराने के लोग जयपुर के पास एक जगह उनियारा है वहां जाकर बस गये। उनके घराने को वह न हम अतरौली का घराना कह सकते हैं और न जयपुर का घराना। यह घराना अब अल्लादिया खां घराना के नाम ही से मशहूर हो गया है। सबसे पहली बात जो हमें ध्यान में रखना चाहिए वह यह है कि अल्लादिया खां पहले ध्रुपद पद्धति के अनुयायी थे और बाद में उन्होंने ख्याल की शैली को अपनाया। इस कारण उन्होंने एक नई गायकी का निर्माण किया जो अब उन्हीं के नाम से मशहूर हो गई है।

अल्लादिया खां के पिता का नाम ख्वाजा अहमद खां था और उनके चचा का नाम जहाँगीर था। उनके चचाजात भाई का नाम दौलत खां था। यह सब बड़े कुशल गायक थे। इन्होंने अपने चचा जहांगीर खां से ही संगीत शिक्षा पाई। इनके दो भाई और थे, हैदर खां और नत्थन खां। बड़ौदा की लक्ष्मी बाई इन्हीं हैदर खाँ की शिष्या थीं। मोगूबाई कुरडीकर भी इस घराने की शिष्या हैं परन्तु नत्थन खां ही से उनको अधिक शिक्षा पहुंची। अल्लादिया खां के प्रमुख शिष्यों में केसर बाई केरकर का नाम सबसे पहले है। जिस प्रेम और परिश्रम से इन्होंने केसरबाई को शिक्षा दी उस तरह और किसी शिष्य को नहीं दी। केसर बाई उनकी सर्वश्रेष्ठ शिष्या हैं। उसके बाद उनके सुपुत्र मंजी खां और भूरजी खां का नाम आता है।

अल्लादिया खां के भाई हैदर खां की मृत्यु 1936 में हुई। उनके बड़े लड़के मंजी खां का, जो बहुत अच्छा गाते थे, 1937 में देहान्त हुआ और उनके छोटे भाई नत्थन खां की मृत्यु 1946 में हुई। अल्लादिया खां का निधन 1946 में हुआ और उनके दूसरे लड़के भूरजी खां का देहान्त 1950 में हुआ। घराने के सब लोगों के चले जाने के बाद अब केसर बाई ही इस घराने की सबसे प्रमुख शिष्या हैं। यह कहा नहीं जा सकता कि इस घराने का भविष्य क्या है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि इस घराने की गायकी का इतना बड़ा आकर्षण रहा है कि इस गायकी के नक्शे बहुत से लोगों के पास रहेंगे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी बहुत समय तक यह गायकी जीवित रहेगी।

इस गायकी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें स्वर और लय का बड़ा ही सुन्दर सहयोग और मिलन है। तीन-तीन, चार-चार स्वरों के समूह का कलात्मक उच्चारण और उनकी छोटी-छोटी सुन्दर गठी हुई तानें-इन्हीं से राग की बढ़त की जाती है। इस गायकी को हम जटिल, संश्लिष्ट, भावग्रन्थि और पेचीदा ही कहेंगे। इसका एक विशेष कारण है। ग्वालियर के बड़े मुहम्मद खां के लड़के मुबारक अली खां की गायकी का बड़ा गहरा प्रभाव अल्लादिया खां के गायन पर पड़ा। उनकी गायकी का उद्‌गम स्रोत मुबारक अली खां का गायन था। उन्होंने उनसे सीखा नहीं परन्तु वह उनके गायन से बहुत ही प्रभावित हुए और उस गायकी के भक्त थे। उस पेचीदा गायकी का जो कुछ अनुकरण उन्होंने किया वह सुन-सुनकर ही किया था।

अल्लादिया खां ने स्वयं इस बात को एक अवसर पर बताया था कि लोग जो उनकी पेचीदा गायकी और उनकी जटिल तानों की प्रशंसा करते हैं वह यह नहीं जानते कि मुबारक अली खां के गायन के कला-चमत्कार के आगे यह कुछ नहीं है ओर यह उसकी अधूरी नकल ही है। अल्लादिया खां ने जो कुछ सुना था उसी को याद कर करके उन्होंने अपनी गायकी का निर्माण किया था। वह इस बात की सबके सामने घोषणा करते थे कि वह केवल मुबारक अली खां की गायकी की अधूरी नकल करने की कोशिश करते थे।

इस गायकी में एक प्रकार का मानसिक अनुशासन अथवा मानसिक संयम है। इस गायकी का निर्माण एक विशेष मानसिक उपकरण के सहारे ही हुआ है और उसकी सम्पूर्ण मानसिक क्रिया में एक प्रकार की मानसिक चुस्ती है। इस गायकी में बौद्धिक भावना की प्रबलता अथवा प्रधानता है। एक प्रकार के बौद्धिक कुतूहल ही से यह गायकी प्रोत्साहित होती है। इसकी बढ़त और इसके राग-विस्तार में भी एक प्रकार का बौद्धिक विकास है। इस लिए इस गायकी का अपना बौद्धिक मूल्य है। गायक की प्रखर बुद्धि ही इसमें काम करती है। इस गायकी का आनन्द इसकी जटिलता और इसके पेचीदेपन में हैं। यह गायकी एक प्रकार की तकनीकी विलक्षणता से प्रेरित है। भाव, भावुकता और रस से इस गायकी का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। राग की भावात्मक अथवा रसात्मक व्याख्या का भी कोई विशेष स्थान इस गायकी में नहीं है। पेचीदापन, जटिलता, स्वर-लय, प्रसारण का चमत्कार-यही इस गायकी के प्रधान गुण हैं। इसे गायकी को सुनकर हम चकित हो जाते हैं और इसके कलाचमत्कार पर हमें बड़ा आश्चर्य होता है। परन्तु इस गायकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से हमारे भाव नहीं उमड़ते और न इसकी भावुकता में हमारे दिल बेचैन हो जाते हैं। इसको सुनकर हमारी आंखें नहीं डबडबातीं। परन्तु इस गायकी के विद्वान् आविष्कारक और प्रथम अन्वेषक उस्ताद अल्लादिया खां जिनका देहान्त नव्वे वर्ष की अवस्था में हुआ था, बड़े भावुक और कोमल हृदय और सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति थे। उनकी गायकी में भावों की भावुकता और स्वरों के रसात्मक आनन्द की प्रधानता न रही हो परन्तु वह स्वयं बड़े भावुक और कोमलहृदय श्रोता थे। एक बार कोमल आसावरी की रचना 'आली री सुन सुन पिया की वात' को एक प्रसिद्ध गायक के मुंह से सुनकर बम्बई की एक सुवह उनकी आंखों में आंसू आ गये थे। यह कैसे हो सकता था कि इतने महान् गायक भावुक न होते ? वह एक चोटी के विद्वान् थे और विलक्षण प्रतिभा के गायक थे। यही कारण था कि इन्होंने अपनी अलग गायकी का आविष्कार करके अपना एक अलग घराना भी बनाया।

हिन्दुस्तानी संगीत का भविष्य

हिन्दुस्तानी संगीत की इस रोचक कहानी के अन्त में हम उसके भविष्य की केवल कल्पना ही कर सकते हैं। जो कुछ हमने अब तक कहा है उसी के आधार पर हम अपने संगीत के भविष्य के बारे में कुछ सोच सकते हैं। इस कारण यह संक्षेप वर्णन कल्पनात्मक अवश्य है परन्तु काल्पनिक नहीं है। यह बताना असंभव है कि इस शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हमारे संगीत का क्या वास्तविक रूप होगा। परन्तु वास्तविकता के सिद्धान्त को सामने रखकर हम कल्पना कर सकते हैं कि वह क्या होगा। परन्तु यह भी सच है कि इस प्रकार के अनुमान में हमारी शुभ कामना का भी अंश है जिससे हमारा यथार्थवाद वंचित नहीं रह सकता। आदर्शवाद ही यथार्थवाद को उसकी भयभीत करने वाली वास्तविकता से मुक्त कर सकता है।

अन्तिम अध्याय में जो कुछ हमने घरानों के बारे में कहा है उसका सम्बन्ध हमारे परिमार्जित तथा परम्परागत संगीत से है जो इन पृष्ठों का मुख्य विषय है। भविष्य में घराने सुरक्षित रहेंगे कि नहीं उसका निर्णय केवल एक सिद्धान्त करेगा और वह है, प्राणि-विज्ञान का मूल सिद्धान्त—योग्यतम की अतिजीविता। यदि घरानों में प्राण रहेगा तो वह जियेंगे और मरेंगे नहीं। परन्तु घरानों को जिन्दा रखने वाले और उनके घरानेदार संगीत को जीवित और सुरक्षित रखने वाले घराने के गायक हैं और उनके प्रतिभाशाली शिष्य हैं। इनकी गायन-कला की शक्ति ही इनकी घरानेदार गायकी को सुरक्षित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रख सकती है। परन्तु यह जभी हो सकता है जब एक उत्तम घरानेदार गायकी बिगड़ने अथवा कुरूप होने न पाये। घराने के शिष्य ही घराने की गायकी के मूल सिद्धान्तों के विध्वंसक होते हैं। विप्लव घर के अन्दर ही से होता है। जिनके पास विशेषाधिकार होता है वही लोग उसका सबसे अधिक दुरुपयोग करते हैं। यदि उनमें क्रियाशील क्षमता नहीं होती तो वह अपने घरानेदार संगीत को अराजकता की प्रबल भावना से बचा नहीं सकते। किसी भी घराने की गायकी उसके असाधारण प्रतिभा वाले गायकों पर निर्भर होती है। यदि उस गायकी में अनुशासन का अभाव होता है तो वह विकृत हो जाती है। इसलिए घरानों के भविष्य का पूरा उत्तरदायित्व घराने के प्रमुख शिष्यों पर निर्भर हैं। यदि वह स्वयं पथभ्रष्ट नहीं हो जाते तो वह अपने घरानों के मार्ग-प्रदर्शक बने रहते हैं। यदि ऐसा न हुआ तो घराने अराजकता के शिकार बन जाते हैं। इसीलिए घरानों का भविष्य अनिश्चित है और उसका निर्माण वह खुद करेंगे। घरानों को अपनी ज़िम्मेदारी का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

परन्तु, परम्परागत, प्रामाणिक संगीत के विरोध में जो प्रतिक्रिया हो रही है उसकी विनाशकारी शक्तियां इतनी प्रबल और शक्तिशाली हो गयी हैं कि यदि हम प्राचीन हिन्दुस्तानी संगीत की रक्षा करने के उचित उपाय न करेंगे तो संगीत के क्षेत्र में निरंकुश शासन का राज्य होगा और हमारे सांस्कृतिक जीवन को इससे बहुत धक्का पहुंचेगा। हमें शीघ्र ही इसके लिए कुछ संघटन करना चाहिए और इस महान् कार्य में हमें राज्य सरकार, समाज, संगीत शिक्षकों, शिक्षा मंत्री, संगीतज्ञों, संगीत प्रेमियों, समाज-सेवकों, राजनीतिज्ञों, नेताओं और कर्मयोगी मार्गदर्शकों इन सबके सच्चे, और स्वार्थहीन सहयोगी की पूर्ण आवश्यकता है। यदि हम नहीं चाहते कि संगीत को इस अवनति से हमारे सांस्कृतिक जीवन का स्तर गिर जाये तो हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए और इस काम में जुट जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों के सांस्कृतिक जीवन से हमारे संगीत और हमारी ललित कलाओं का सम्बन्ध गहरा है और इस कारण उससे सम्बन्धित लोग इस विषय में अपने उत्तरदायित्व को नहीं भूल सकते। आधुनिक शिक्षित समाज संगीत-प्रचार और संगीत-शिक्षा से लाभ उठाता है। संगीत में इस प्रकार की व्यापक रुचि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सांस्कृतिक क्षेत्र में हम उन्नति कर रहे हैं। परन्तु इस तरह के सामूहिक उत्साह से प्रेरित होकर हम अपने प्राचीन संगीत की मर्यादा को नहीं भूल सकते। हमें ज्ञात रहना चाहिए कि प्राचीन युगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में हमारा संगीत उन्नति की उच्च शिखर पर विराजमान था और हमारे देश की शानदार संस्कृति का प्रतीक था। तो यह हमारा कर्त्तव्य है कि ऐसे वैभवशाली, प्राचीन संगीत की जागृति और उसके प्रचार से हम उसकी कलात्मक श्रेष्ठता का पुनरुत्थान करें और उसका उत्तम प्रदर्शन लोगों के सामने करें। ऐसा करने से हम संगीत की परम्परा और उसके इतिहास का परित्याग कभी नहीं कर सकते। अतीत के अलौकिक प्रोत्साहन से हम अपने को वंचित नहीं रख सकते। संगीत की गंगा जिस पर्वत से निकल कर बहती है उसे हम अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते। इस कारण हम अपने प्राचीन संगीत के मार्गदर्शकों, विद्वानों और प्रतिष्ठित कलाकारों की परम्परा को भी भूल नहीं सकते। इसी तरह हम आधुनिक संगीत-शिक्षा को प्राचीन संगीत-शिक्षा से बिल्कुल विभाजित नहीं कर सकते। इस विषय में जहां कहीं से हमको लाभ पहुंच सकता है, हमें बिना किसी संकोच के उठाना चाहिए।

सबसे बड़ी समस्या जो आज हमारे सामने है वह यह है कि हम अपने तरुण समाज की संगीत की रुचि को कैसे ऊंचे स्तर पर ले जायें। हमारा तरुण समाज ही आगे चलकर प्राचीन शास्त्रीय संगीत की उत्तम रक्षा और सेवा करेगा। यह शिक्षित वर्ग ही आगे चलकर संगीत की उन्नति की बागडोर अपने हाथ में लेगा। और इसी तरुण वर्ग के वह उत्साही सदस्य, जो संगीत की साधना करके उसे ठीक ढंग से सीखेंगे, इस संगीत के प्रति अपनी ऊंची कर्त्तव्य-परायणता का सुबूत देंगे। यही लोग सिनेमा के सस्ते, बाज़ारू संगीत का विरोध करेंगे और रेडियो के संगीत-कार्यक्रम के स्तर को ऊंचा करेंगे। इनमें से जो संगीत के क्षेत्र में कलाकार बनेंगे वह प्राचीन परम्परागत संगीत के समर्थक और प्रचारक बनेंगे। हमारी आशायें इन्हीं पर केन्द्रित रहेंगी।

यह प्रत्येक समझदार और उत्साही वर्ग का सहयोग इस प्राचीन परम्परागत संगीत के प्रचार, प्रसारण और प्रदर्शन में संगीत-संसार को मिलेगा तो हमारे हिन्दुस्तानी संगीत का भविष्य अवश्य उज्ज्वल होगा। आधुनिक काल के इस सामूहिक संगीत प्रचार को देखकर तो यही प्रतीत होता है कि भविष्य में हमारे संगीत की अधिक से अधिक उन्नति होगी और गायक, वादक, और श्रोता सब मिलकर व्यावहारिक संगीत के स्तर को और ऊंचा करते चले जायेंगे। साहसी आशावादी ही यह नारा पुकारते हैं "हिन्दुस्तानी संगीत अमर–ज़िन्दाबाद"।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आग्र
भरतनिधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi